उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

वेदाध्ययन-३४५

पुस्तक-२

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन एक स्वायत्त संस्थान)

ए-२४-२५, संस्थागत क्षेत्र, विभाग-६२, नोएडा-२०१३०९ (उत्तरप्रदेश)

वेबसाइट - www.nios.ac.in, टोल फ्री नंबर-१८००१८०९३९३

© राष्ट्रीय-मुक्त-विद्यालयी-शिक्षा-संस्थान National Institute of Open Schooling

प्रथम संस्करण २०२१ First Edition 2021 (Copies)

ISBN (Book 1)

ISBN (Book 2)

सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, ए-२४-२५, संस्थागत क्षेत्र, विभाग - ६२, नोएडा - २०१ ३०९ (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित। ..... द्वारा मुद्रित।

उच्चतर माध्यमिक
वेदाध्ययन (३४५)

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश-२०१३०९

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश-२०१३०९

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

समिति अध्यक्ष
डॉ. के. इ. देवनाथन्
कुलपति
श्रीवेङ्कटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय
चन्द्रगिरिपरिमार्ग, अलिपिरि
तिरुपति-५१७ ५०२ (आन्ध्रप्रदेश)

डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ला
आचार्य, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डॉ. रामनाथ झा
आचार्य, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

समिति उपाध्यक्ष
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर, कलकता-७०००३५
(पश्चिम बंगाल)

आचार्य फूलचन्द
वैदिक गुरुकुल, पतञ्जलि योगपीठ
हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आचार्य प्रद्युम्न
वैदिकगुरुकुल
पतञ्जलि योगपीठ
हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय-इटाचुना
मण्डल-हुगली-७१२१४७ (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड-मठ
मण्डल-हावडा-७११२०२ (प. बंगाल)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश-२०१३०९

संपादक मण्डल

डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर
कलकता-७०००३५ (पश्चिम बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ
मण्डल-हावडा-७११२०२ (पश्चिम बंगाल)

पाठ लेखक

(पाठ १, ३, ५, ७, ८, ९, २५)
श्री राहुल गाजी
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
कलकता-७०००३२ (पश्चिम बंगाल)

(पाठ २, ४, ६, १०-१४, १७)
श्री विष्णु पाद पाल
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययनविभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल-हावडा-७११२०२ (पश्चिम बंगाल)

(पाठ १५, १६, १८, २०, २३, २६)
स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
बेलुड मठ
मण्डल-हावडा-७११२०२ (पश्चिम बंगाल)

(पाठ १९, २४)
श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण-महाविद्यालय
पत्रालय-इटाचुना
मण्डल-हुगली-७१२१४७ (पश्चिम बंगाल)

(पाठ २१, २२)
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर
कलकता-७०००३५ (पश्चिम बंगाल)

अनुवादक मंडल

डॉ. विजेन्द्र सिंह
सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

श्री नरेन्द्र विश्नोई
अनुसन्धाता
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-२०१३०९

श्री पुनीत त्रिपाठी
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-२०१३०९

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-२०१३०९

रेखा चित्रांकन, मुखपृष्ठ चित्रण तथा संगणकीय विन्यास

मुखपृष्ठ चित्रण
स्वामी हररूपानन्द
रामकृष्ण मिशन
बेलुड मठ
मण्डल-हावडा-७११२०२ (प. बंगाल)

संगणकीय विन्यास
श्री कृष्णा ग्राफिक्स
दिल्ली

आपसे दो बातें...

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय विद्यार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है।

भारत अति प्राचीन और अति विशाल है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशसनीय और महान है। सृष्टिकर्ता भगवान् ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक है, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के अच्छे विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों का प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम सस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना, भाव कितने गभीर, मूल्य कितना अधिक इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या क्या पढ़ते थे, वो एक श्लोक के माध्यम से प्रकट होता है -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् ६१.७८)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी है। चार वेद (और चार उपवेद) छः वेदाङ्, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांस) न्याय (आन्वीक्षिकी) पुराण (अठाहर मुख्य पुराण और उपपुराण) धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। अनेक काव्य और बहुत शास्त्र हैं इन सभी विद्याओं का प्रवाह जल के समान ज्ञान प्रदान करने वाला प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला लम्बे समय से चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत के विद्या दान परम्परा में गुरुकुलो में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्यशास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्र पढ़ते-पढ़ाते थे।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे और इन विद्याओं में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ पारंगत लोग है। प्राकृतिक परिवर्तन के कारण, विदेशी आक्रमण के कारण, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसा अध्ययन-अध्यापन की परम्परा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की परीक्षा प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन, परीक्षण, और प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित किया गया और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा सभी यहाँ पर सुखी हो, सभी निरोगी हो, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों। किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दे, इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस नाम से इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है, कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान का पोषण करता है। विज्ञान साधनस्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। लोग कला को छोड़कर विज्ञान से सुख नहीं प्राप्त कर सकते हैं परन्तु विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

यह वेदाध्ययन का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्यसाधक और पुरुषार्थ साधक है ऐसा मेरा मानना है।

इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वांन, उपदेष्टा, पाठलेखक, त्रुटिसंशोधक और मुद्रणकर्ता ने साक्षात् या परोक्षरूप से सहायता की, उनको संस्थान पक्ष से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञपित करते हैं। रामकृष्ण मिशन-विवेकानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान् स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेषरूप से धन्यवाद जिनकी आनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी।

इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, सफल हो, विद्वांन हो, सज्जन हो, देशभक्त हो, समाज सेवक हो ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आपसे दो बातें...

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करते है। अत्यधिक हर्ष का विषय है, की गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु जैन बौद्धों के धर्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्मय प्रायः संस्कृत में लिखा हुआ है। मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर में कुछ विषय पाठ के माध्यम से सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल, हिंदी, आदि भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए उच्च माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढ़ने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत को नहीं जानते तो इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के जानकार छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी है, ऐसा जानना चाहिए।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौवीं, दशवीं कक्षा और ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद् इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए विषय परिमाण निर्धारण में विषय प्रकट करने का भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

वेदाध्ययन की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त सुबोध रुचिकर आनन्दरस को देने वाली, सौभाग्य देने वाली धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, उपयोगी रहेगी ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। वह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते है की इस अध्ययन सामग्री में पाठ के सार में जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्तावों का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर है।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन-

किं बाहुना विस्तरेण। अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामि॥

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्य हैतुकी॥

निदेशक

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आपसे दो बातें...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासुओं

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वि हो। द्वेष भावना का नाश हो। विद्यालाभ के द्वारा सभी कष्टों की शान्ति हो।

भारतीय ज्ञान परम्परा इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। जो सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जानता है, वह इस अध्ययन में समर्थ है।

वेदाध्ययन का अध्ययन स्तर के अनुसार होता है। इस लिए स्तरों के प्रत्येक पर्व का आरोहण क्रम के अनुसार ही होना चाहिए। अतः पाणिनीय अष्टाध्यायी का विद्वानों ने भिन्न क्रमानुसार व्याख्या किया है। यहाँ भी उसी प्रक्रिया का क्रम है। उसी क्रम को स्वीकार कर यह अध्ययन सामग्री सोपान, पर्व आदि के क्रम में निर्मित है। एक भाग माध्यमिक और अन्य भाग उच्चतर माध्यमिक कक्षा में है। इससे पाणिनीय तंत्र में प्रवेश के लिए छात्र की योग्यता बढ़ती है।

उच्चतर माध्यमिक कक्षा में दिया हुआ वेदाध्ययन विषय भी अत्यन्त उपकारक है। यह सामग्री वेदाध्ययन के श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस ग्रन्थ के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए अपितु गम्भीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक दो भागों में विभक्त है। इसके अध्ययन से छात्र वेदाध्ययन के मूलभूत ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

पाठक पाठों को अच्छी तरह से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएं। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणी करना चाहिए। पाठ के अन्त में दिये प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ। अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर के समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ। या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्रद्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्य विषय आपके ज्ञान को बढ़ाए, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, रुचि बढाए, मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करते हैं।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं में हार्दिकी प्रार्थना.
ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी

पाठ्यक्रम समन्वयक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

अपने पाठ कैसे पढ़ें !

बधाई! आपने स्व-शिक्षण की चुनौती स्वीकार की है। एनआईओएस हर कदम पर आपके साथ है और विशेषज्ञों के दल के साथ मिलकर आपको ध्यान में रखते हुए ''वेदाध्ययन'' की यह सामग्री तैयार की गई है। इसमें अपनाया गया प्रारूप स्वतंत्र शिक्षण के अनुकूल है। यदि आप इसमें दिए अनुदेशों का पालन करेंगे तो आप इस सामग्री से अधिकाधिक लाभ ले सकेंगे। इस सामग्री में प्रयुक्त प्रासंगिक आइकॉन आपका मार्गदर्शन करेंगे। इन आइकॉन को आपकी सुविधा के लिए नीचे स्पष्ट किया गया है।

शीर्षक : आपको अंदर की पाठ्य सामग्री का स्पष्ट संकेत देगा।

परिचय : यह आपको पूर्ववर्ती पाठ से जोड़ते हुए पाठ का परिचय कराएगा।

उद्देश्य : ये ऐसे कथन हैं, जिनसे आपको पता चलेगा कि आप इस पाठ से क्या सीखने जा रहे हैं। उद्देश्य आपको यह जांचने में भी सहायता करेंगे कि आपने इस पाठ को पढ़ने के बाद क्या सीखा है। इन्हें अवश्य पढ़ें।

नोट्स : प्रत्येक पृष्ठ पर किनारे के हाशियों में खाली स्थान है, जिसमें आप महत्वपूर्ण बिंदु लिख सकते हैं या नोट्स बना सकते हैं।

पाठगत प्रश्न : प्रत्येक खंड के बाद स्वयं जांच हेतु बहुत छोटे उत्तरों वाले प्रश्न हैं, जिनके उत्तर पाठ के अंत में दिए गए हैं। इनसे आपको अपनी प्रगति जांचने में सहायता मिलेगी। इन्हें अवश्य हल करें। इनको सफलतापूर्वक पूरा करने पर आप जान सकेंगे कि आपको आगे बढ़ना चाहिए या इसी पाठ को दोबारा पढ़ना चाहिए।

आपने क्या सीखा : यह पाठ के मुख्य बिंदुओं का सारांश है। इससे आपको संक्षिप्त में दोहराने में सहायता मिलेगी। इसमें आप अपने बिंदु भी जोड़ सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : यह लंबे व छोटे उत्तरों वाले प्रश्न हैं जो आपको पूरे विषय की स्पष्ट समझ प्राप्त करने के लिए अभ्यास करने का अवसर प्रदान करते हैं।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर : इससे आपको यह जानने में मदद मिलेगी कि आपने प्रश्नों के उत्तर ठीक दिए हैं या नहीं।

पुस्तक-१

वैदिक साहित्य का इतिहास

1. वैदिक वाङ्मय की विलक्षणता और वेद प्रमाण विचार
2. ऋक्संहिता साहित्य
3. यजुर्वेद और सामवेद संहिता साहित्य
4. अथर्ववेद संहिता साहित्य
5. ब्राह्मण साहित्य
6. आरण्यक और उपनिषद्
7. वेदाङ्ग साहित्य

वैदिक स्वर प्रक्रिया

8. साधारण स्वर-१
9. साधारण स्वर-२
10. धातु स्वर और प्रातिपदिक स्वर
11. फिट् स्वर
12. प्रत्यय स्वर
13. समास स्वर
14. तिङन्त स्वर

पुस्तक-2

वैदिक सूक्तों का अध्ययन

15. अग्निसूक्त
16. इन्द्रसूक्त
17. हिरण्यगर्भ सूक्त
18. पुरुषसूक्त
19. देवीसूक्त और श्रद्धासूक्त
20. विष्णुसूक्त और मित्रावरुणसूक्त
21. अक्षसूक्त
22. पर्जन्यसूक्त और मनुमत्स्य कथा
23. शिवसङ्कल्पसूक्त और प्रजापतिसूक्त
24. रुद्र अध्याय
25. पृथ्वी सूक्त
26. सरमा पणि संवाद सूक्त

विषय सूची

पुस्तक-२

(वैदिक सूक्तों का अध्ययन)

१५.	अग्निसूक्त	१
१६.	इन्द्रसूक्त	२०
१७.	हिरण्यगर्भ सूक्त	४२
१८.	पुरुषसूक्त	५८
१९.	देवीसूक्त और श्रद्धासूक्त	८६
२०.	विष्णुसूक्त और मित्रावरुणसूक्त	१०७
२१.	अक्षसूक्त	१३४
२२.	पर्जन्यसूक्त और मनुमत्स्य कथा	१५३
२३.	शिवसङ्कल्पसूक्त और प्रजापतिसूक्त	१७४
२४.	रुद्र अध्याय	१९२
२५.	पृथ्वी सूक्त	२१०
२६.	सरमा पणि संवाद सूक्त	२२९
	पाठ्यक्रम का विवरण	२४५
	प्रश्नपत्र का प्रारूप	२५१
	आदर्श प्रश्नपत्र	२५२
	आदर्श प्रश्नपत्र की उत्तरमाला	२५६

वैदिक सूक्त

भूमिका

इस जगत में छोटे-छोटे कीट से लेकर मनुष्यों तक प्राणियो को सुखप्राप्त करने के लिए और दु:ख छोड़ने के लिए उनकी यह प्रवृत्ति हम दिन रात देखते हैं। यह अच्छी प्रकार से प्रसिद्ध ही है, और सभी को ज्ञात ही है की सुख सुन्दर कर्म अनुष्ठान आदि से किया जाता है। दु:ख बुरे कर्मो के अनुष्ठान से होता है। और उस अनुष्ठान के द्वारा अन्तर कर्मस्वरूप ज्ञान नही होता है। अत: सुख को चाहने वाले दु:ख को छोड़ने वाले पुरुष के द्वारा अवश्य प्रथम कर्म का स्वरूप शोभनीय और अशोभनीय को जानना चाहिए। उसके ज्ञान के बिना वेद के अर्थ का ज्ञान करना कठिन है। अत: वेद को पढ़कर और विचार करके उसके अनुसार आचरण करना चाहिए। और वह वेद ऋक्, यजु, साम, और अथर्व के भेद से चार प्रकार का है। कहीं पर तीन प्रकार का दिखाया गया है। प्रत्येक भेद भी अनेक शाखा से युक्त हैं। उन शाखाओ के प्रत्येक के अपने मन्त्र ब्राह्मण भेद विभिन्न रूप के हैं। वहाँ पर मन्त्र वैदिक तत्त्व के रूप में प्रसिद्ध हैं। कर्म सहित अर्थ स्मरण का फल प्रदान करने वाले हैं। और विधिबोधक वाक्य की ब्राह्मणसंज्ञा है। विधि कर्म का इष्टसाधन बोध कराने में इष्टसाधन पुरुष को प्रवृत करता है। निषेध तो अनिष्टसाधनबोध से अनिष्टसाधन से हटाता है। और ब्राह्मण कर्मब्राह्मण, उपसनाब्राह्मण, ज्ञानब्राह्मण ये तीन भाग में विभक्त है। कर्मकाण्ड में नित्यनैमित्तिककाम्य भेद से तीन प्रकार के कर्मवेद में कहे गए है। वे इन कर्मो की ज्ञानसंपत्ति के लिए वेदार्थज्ञान को सरल करने की अपेक्षा करते है।

भारत वर्ष में वेद के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद आदि का महत्व विशिष्ट है। संस्कृत पाठशालाओं में और महाविद्यालयों में वेद का अध्ययन अध्यापन होता है। इस पाठ के अंश में मन्त्रों का पदपाठ का और व्याख्यान का अच्छी प्रकार से समावेश किया गया है। ऋग्वेद के सारसंग्रह का परिचय भी यहाँ पर प्राप्त होता है। इन सूक्तों के अध्ययन से पाठकों का महान् उपकार होता है। अनेक प्रयत्नों से सरलतया से इसका अध्ययन छात्रो के लिए करना चाहिए। वेद का व्याकरण लौकिकव्याकरण से भिन्न है। अधिकांश शब्द भी बाहुल्य से भिन्न होते है। स्वरभेद से अर्थभेद होता है। प्रकरणभेद के होने पर भी अर्थभेद होता है। काव्यात्मकशैली अनेक स्थानों पर वेद में प्राप्त होती है। अत मन्त्रो का विद्वानों द्वारा जो अर्थ किया गया है उससे भिन्न भी अर्थ हो सकता है। व्याख्यानभेद के द्वारा भी अर्थ में भेद होता है। तात्पर्यभेद से अर्थ भेद होता है। अत मन्त्रो का यह ही अर्थ है ऐसा निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। फिर भी प्रमाणभूत आचार्यो का श्रीमान सायण आचार्य का भाष्य ही कुछ समझाने के लिए परिवर्तन करके छात्रो के उपयोगी समास आदि यहाँ पर दिया गया है। मन्त्रो का अन्वय, मन्त्रो की व्याख्या, मन्त्र का सरलार्थ, कुछ शब्दो का व्याकरण इन रूप से मन्त्रो की व्याख्या की गई है।

15

अग्निसूक्त

वेदोऽखिलधर्ममूलम्। सभी धर्मो का मूल वेद ही है। संसार में चार वेद है। वे वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद है। उन चारो वेदों में ऋग्वेद प्राचीनतम है। ऋग्वेद का प्रथम सूक्त अग्निसूक्त है। संसार में प्राप्त साहित्य का यह प्राचीनतम सूक्त है। यहाँ पर अग्नि की स्तुति की गई है। वेद में अग्नि बहुत प्रसिद्ध देवता है। ऋग्वेद में लगभग २०० सूक्तो में अग्नि की स्तुति प्राप्त होती है। ऋग्वेद का प्रथम पद भी 'अग्निम्' यह है। इस पाठ में अग्निसूक्त के नौ मन्त्र है। और वहाँ सायणाचार्य ने भाष्य लिखा है। इस पाठ में उसी भाष्य का अनुसरण करके व्याख्या दिया गया है। इस अग्निसूक्त के मधुच्छन्दा ऋषि, गायत्री छन्द, और अग्नि देवता हैं। अग्नि शब्द का अर्थ होता है - जो देव यज्ञ में दी गई हवि देवताओं के लिए लेकर के जाता है वह अग्नि है। ऋग्वेद में तीन प्रमुख देवों में अग्नि का दूसरा स्थान है। अग्नि का मानव जीवन के साथ दृढता से सम्बद्ध है। सम्पूर्ण घर के कार्यों में अग्नि की अत्यन्त आवश्यकता होती है। प्रत्येक घर में इसका निवास है। अग्नि हि ऐसा देव है जो जन्म से आरम्भ करके मृत्युपर्यन्त मनुष्य के साथ ही रहता है। अग्नि के द्वारा ही सम्पूर्ण संसार का प्रकाश हुआ। अग्नि ही प्राचीन ऋषियों का प्रधान था। क्योंकि अग्नि से ही यज्ञ भोजन आदि और शीतनिवारण होता था।

इस पाठ में कुछ अन्य आचार्यो के मत का भी संग्रह किया गया है। टिप्पणी रूप से उसको प्रकट किया गया है। टिप्पणी में सूक्त का ज्ञान कराने के लिए उपयोगी विषय दिया हुआ है। टिप्पणी में स्थित मत अधिक जिज्ञासु के लिए विशेष रूप से दिया हुआ है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहिता पाठ कर पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों के पदपाठ को समझ पाने में;

टिप्पणियाँ

- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय करने में समर्थ हो पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों की व्याख्या करने में समर्थ होंगे;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों का सरलार्थ जानने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जानने में समर्थ होंगे;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक एवं लौकिक के मध्य में भेद को समझ पाने में;
- सूक्त का अर्थ जान करके सूक्त के महत्व को समझेंगे;
- वैदिक शब्द रूपों को जान पाने में;
- सूक्त तात्पर्य और सूक्त तत्त्व को जान पाने में;
- अग्निसूक्त में अग्नि का वर्णन जैसा है वैसा समझ पाने में;
- अग्नि क्या-क्या करती है यह भी जान पाने में;
- किस प्रकार की अग्नि स्तुत्य होती है यह जान पाने में।

15.1 मूलपाठ - अग्निसूक्त (ऋग्वेद का १.१)

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥१॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति॥२॥

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्॥३॥

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति॥४॥

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥५॥

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥६॥

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥७॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे॥८॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥९॥

15.1.1 मूलपाठ की व्याख्या

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥१॥

पदपाठ-अग्निम्। ईळे। पुरःऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्। होतारम्। रत्नऽधातमम्॥१॥

अन्वय - यज्ञस्य पुरोहितं देवं होतारम् ऋत्विजं रत्नधातमम् अग्निम् ईळे।

व्याख्या - अग्नि देव की स्तुति करता हूँ। 'ईड् स्तुतौ' यह धातु है। डकार के स्थान पर ळकार बह्वृचाध्येतृसम्प्रदाय में प्राप्त होता है। और भी पढ़ा गया है अज्मध्यस्थडकार को ळकार बह्वृचा में जानना चाहिए। अज्मध्यस्थढकार को ळ्हकार यथा क्रम से होता है। मन्त्र का होता के प्रयोज्य होने से मैं होता स्तुति करता हूँ, यह अर्थ प्राप्त होता है। किस प्रकार की अग्नि? यज्ञ का पुरोहित। जैसे राजा का पुरोहित उसके अभीष्ट को पूर्ण करता है, वैसे अग्नि भी यज्ञ का अपेक्षित होम को पूर्ण करता है। अथवा यज्ञ का सम्बन्धि पूर्वभाग में आवहनीय रूप से अवस्थित पुनः किस प्रकार का है? होता ऋत्विज है। देवों का यज्ञ में होतृनाम का ऋत्विग् अग्नि ही है। और सुना भी जाता है - 'अग्निर्वै देवानां होता' (ऐ० ब्रा० ३. १४) इति। पुनः वह अग्नि किस प्रकार की है? रत्न को धारण करने वाली यागफल रूपों के रत्नों को विशेष रूप से धारण अथवा पोषण करने वाली।

टिप्पणी - अग्निमीळे अग्नि से याचना करता हूँ। यज्ञ का देव दान देने से, प्रकाश करने से, प्रकाशित होने से अथवा द्युस्थान में रहने से होता है। उस यज्ञ का दाता, प्रकाश देने वाला अथवा प्रकाशित करने वाला यह अग्नि है ऐसा कहा गया है। द्युस्थानीय कैसे हुआ - यद्यपि अग्नि पृथिवी स्थानीय है फिर भी देवों के प्रति हवि ले जाने से द्युस्थानी होता है। जो दे, वह ही देवता। अर्थात देव ही देवता है। मन्त्र द्वारा आह्वान करने के कारण होता कहलाता है। रमणीय धन का दाता और धारण करने वाला। (स्कन्दस्वामी) - शान्तिपौष्टिक कर्मों के द्वारा जो राजा को विपत्ति से रक्षा करता है वह पुरोहित कहलाता है। यज्ञ की आपदाओं को हटाने वाला यह अर्थ है। पूर्वदिशा में निहित आवहनीय स्थापित पुरोहित यह भी अर्थ है। रत्न धन का नाम है। धन का विशेष रूप से दाता अग्नि है। उस अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ।

सरलार्थ - यज्ञ का प्रकाशयुक्त पुरोहित अग्नि है। अथवा यजमान के सम्मुख अग्नि स्थित है। वह देवों का यज्ञ में आह्वान करती है। सर्वाधिक रत्नों को वह धारण करती है। इस प्रकार की जो अग्नि है उसकी मैं स्तुति करता हूँ।

व्याकरण

यज्ञस्य – यज्-धातु से नङ करने पर षष्ठी एकवचन में यज्ञस्य यह रूप बनता है।

देवम् – दिव्-धातु से अच्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में देवम् यह रूप बनता है।

होतारम् – हूधातु से तृन्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में होतारम् यह रूप बनता है।

रत्नधातमम् – रत्नों को धारण करने वाली रत्नधा कहलाती है, रत्नधाशब्द से क्विप्प्रत्यय करने पर और तमप्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में रत्नधातमम् यह रूप बनता है।

इळे – स्तुति अर्थ में ईड्-धातु से लट उत्तमपुरुष एकवचन में इळे यह रूप बनता है।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति॥२॥

पदपाठ – अग्निः। पूर्वेभिः। ऋषिऽभिः। ईड्यः। नूतनैः। उत। सः। देवान्। आ। इह। वक्षति॥२॥

अन्वय – अग्निः पूर्वेभिः उत नूतनैः ऋषिभिः ईड्यः सः देवान् इह आ वक्षति।

व्याख्या – यह अग्नि पूर्व पुरातन भृग्वङ्गिर आदि ऋषियों के द्वारा स्तुति की गई है, नूतन उत अभी हमारे द्वारा इसकी स्तुति की जाती है। वह अग्नि होती हुई इस यज्ञ में देवों को हवि भक्षण करने के लिये कहती है।

टिप्पणी – उत शब्द का विकल्प अर्थ है। फिर भी यहाँ पर च अर्थ अर्थात् समुच्चय अर्थ निपातन से है। अतः पूर्वतन और नूतन यह अर्थ प्राप्त होता है।। प्रथम मन्त्र में कहा गया है की मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ। यहाँ पर स्तुति का क्या कारण है। अतः उस विषय के लिए यह दूसरा मन्त्र है। क्योंकि यह अग्नि पूर्वतन ऋत्विगों के द्वारा स्तुत्य है, नूतन के द्वारा भी स्तुत्य है। कुछ ऋषि, उसके रूप की स्तुति करते हैं। यह ही हेतु है की मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ। इस सम्पूर्ण जगत में वह ही अग्नि देवों का यज्ञ में आवाहन कर सकती है, अन्य कोई भी नहीं।

सरलार्थ – अग्नि की प्राचीन और नूतन ऋषियों के द्वारा स्तुति की जाती है। इस प्रकार की जो अग्नि है वह देवों का यज्ञ में आवाहन करे।

व्याकरण

- **पूर्वेभिः** – पूर्वैः इसका वैदिक रूप है।
- **ईड्यः** – ईड्-धातु से ण्यत्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में ईड्यः यह रूप बनता है।
- **देवाँ** – देव शब्द का द्वितीया बहुवचन में यह रूप बनता है। पदान्त में स्थित नकार से पूर्व आकार किन्तु परे जो कोई भी स्वर रहता है तो नकार का लोप होता है। अपितु पूर्ववर्ण को अनुनासिक आदेश होता है।

- **वक्षति** – वह्–धातु से लृट स्यप्रत्यय करने पर यकार का छन्द में लोप होने पर वक्षति यह रूप बनता है। लेट् लकार में भी इस प्रकार का रूप सम्भव है।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्॥३॥

पदपाठ – अग्निना। रयिम्। अश्नवत्। पोषम्। एव। दिवेऽदिवे। यशसम्। वीरवत्ऽतमम्॥३॥

अन्वय – अग्निना दिवेदिवे पोषम् एव यशसं वीरवत्तमं रयिम् अश्नवत्।

व्याख्या – जो यह होता अग्नि की स्तुति करता है। उस अग्नि के द्वारा निमित्तभूत यजमान धन–धान्य को विशेष रूप से प्राप्त करता है। किस प्रकार का धन। प्रत्येक दिन जो पोषण करता हुआ उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त कराता है, कभी भी विनष्ट नहीं होता है। दान आदि के द्वारा यश से युक्त होकर वीर के समान विशेष रूप से पुत्र सेवक आदि द्वारा वीर पुरुष के समान सुख को प्राप्त करो। धन के होने पर ही पुरुष सम्पन्न होता है।

टिप्पणी – इस प्रकार की अग्नि की स्तुति करो। जो स्तुति करता है वह स्तोता है, स्तुति करने से अग्नि से वह रत्न धन को प्राप्त करता है। केवल धन को ही नहीं। तो और क्या? पुष्टि को भी प्राप्त करता है। कब प्राप्त करता है? प्रत्येक दिन और प्रत्येक काल में और प्रत्येक क्षण में। सभी काल में यह अर्थ प्राप्त होता है। और क्या प्राप्त करता है? यश को। अर्थात् यश कीर्ति को प्राप्त करता है। किस प्रकार का यश? जिसके वीर पुत्र हो उसके समान। विशेष रूप से वीर के समान, वीरो में भी श्रेष्ठ वीर। अर्थात् अनेक वीरपुत्रों के साथ यश को प्राप्त होता है। इस प्रकार की अग्नि की जो स्तुति करता है, वह स्तुति का फल अग्नि से प्राप्त करता है। फलस्वरूप धन पुष्टि वीर पुत्र सहित और कीर्ति को प्राप्त करता है।

सरलार्थ – यजमान अग्नि के द्वारा धन को प्राप्त करता है। वह धन प्रतिदिन बढ़ता है, और यजमान धन का दान आदिकर्म करने से उसका व्यय होने से यश कीर्ति को प्राप्त होता है। और वह यश पुत्र आदिवीरपुरुष सहित प्राप्त होता है। अर्थात् बहुत पुत्र वीर हो। उस स्तुति से कीर्ति को प्राप्त हो।

व्याकरण

- **दिवेदिवे** – दिव शब्द का सप्तमी एकवचन में दिवेदिवे यह रूप बनता है।
- **पोषम्** – पुष्–धातु से घञ्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में पोषम् यह रूप बनता है।
- **यशसम्** – यश शब्द का अच्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यशसम् यह रूप बनता है। लोक में यशस् शब्द सकारन्त नपुंसकलिङ्ग में है।
- **वीरवत्तमम्** – वीर शब्द का मतुप्प्रत्यय करने पर और तमप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में वीरवत्तमम् यह रूप बनता है।
- **अश्नवत्** – अश्–धातु से लेट् प्रथमपुरुष एकवचन में अश्नवत् यह रूप बनता है।

टिप्पणियाँ

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति॥४॥

पदपाठ - अग्ने। यम्। यज्ञम्। अध्वरम्। विश्वतः। परिऽभूः। असि। सः। इत्। देवेषु। गच्छति॥४॥

अन्वय - अग्ने! यम् अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि सः इत् देवेषु गच्छति।

व्याख्या - हे अग्नि तुम जो यज्ञ को विश्व की सभी दिशाओं के चारों ओर से व्याप्त हो, वह ही यज्ञ में देवों की तृप्ति के लिए स्वर्ग में जाती है। प्राच्य आदि चारों दिशाओं में आहवनीयमार्जालीयगार्हपत्य आग्नीध्रीय स्थानों में अग्नि है। परिशब्द से होता आदि की व्याप्ति की विवक्षा है। किस प्रकार का यज्ञ? अध्वर हिंसारहित। अग्नि के द्वारा सभी ओर से पालित यज्ञ को राक्षस आदि उसको हिंसित नहीं कर सकते।

टिप्पणी - विद्यमान नहीं है हिंसा जिसमे उसको अध्वर कहते है। हिंसा जिसमें नहीं है, वह अध्वर है। कहाँ हिंसा नहीं होती है? यज्ञ में सभी का अनुग्रह होता है हिंसा नहीं होती है। परन्तु ओषधियों का, पशूओं का, वृक्षों का और पक्षियों की हिंसा देखी जाती है। फिर भी हिंसारहित है, ऐसा किस लिये कहा जाता है? वहाँ पर विद्वानों का मत है -

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तीर्यञ्चः पक्षिणस्तथा।
यज्ञार्थं मिथुनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युच्छ्रितीः पुनः॥ इति

अर्थात् वनस्पति पशु, वृक्ष और तिर्यक योनि में स्थित पक्षी यदि यज्ञ में हिंसित है, फिर भी उनकी सद्गति होती है। हीनलोक की प्राप्ति नहीं होती है। वे उच्च श्रेणी को प्राप्त होते हैं। इत् शब्द का ही अर्थ है। 'स इद् देवेषु गच्छति' - वह ही देवों में जाता है यह अर्थ है। अर्थात् अग्नि के द्वारा सभी ओर से रक्षित यज्ञ ही देवों में जाता है। देव उस यज्ञ को ही स्वीकार करते है अन्य को नहीं। अग्नि के द्वारा सभी रक्षित यज्ञ को ही देव ग्रहण करते हैं यह अर्थ है।

सरलार्थ- इस मन्त्र में अग्नि के प्रति कहते है की हे अग्नि तुम जैसे हिंसा रहित यज्ञ के चारों ओर व्याप्त होकर रहते हो वह यज्ञ अवश्य देवों की ओर जाता है।

व्याकरण

- **विश्वतः** - विश्व शब्द का तसिल् प्रत्यय करने पर विश्वतः यह रूप बनता है।
- **परिभूः** - परिपूर्वक भूधातु से क्विप् प्रत्यय करने पर परिभूः यह रूप बनता है।
- **असि** - अस्-धातु लट् मध्यमपुरुषैकवचने असि यह रूप बनता है।
- **गच्छति** - गम्-धातोः लटि प्रथमपुरुष एकवचन में गच्छति यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 15.1

1. अग्नि किसके द्वारा स्तुति करने के योग्य है?
2. डकार के स्थान में ळकार कब होता है?
3. पूर्वेभिः यह रूप कहाँ पर सही है?
4. किस प्रकार अग्नि की होता स्तुति करता है?
5. वक्षति यह रूप किस-किस लकार में सम्भव है?
6. दिव शब्द का सप्तमी एकवचन में क्या रूप होता है?
7. यजमान किस प्रकार का धन प्राप्त करता है?
8. अश्नवत् यह रूप किस धातु और किस लकार में है?
9. देवाँ यह रूप कैसे होता है?
10. धन के होने पर क्या होता है?
11. वीरवत्तमम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
12. पोषम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
13. परिभूः यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
14. ईड्यः इसका क्या अर्थ है?
15. अश्नवत् इसका क्या अर्थ है?
16. यशसम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
17. ईडे यहाँ पर क्या धातु है?

15.1.2 मूलपाठ की व्याख्या

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥५॥

पदपाठ – अग्निः। होता। कविऽक्रतुः। सत्यः। चित्रश्रवःऽतमः। देवः। देवेभिः। आ। गमत्॥५॥

अन्वय – होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः अग्निः देवः देवेभिः आ गमत्।

टिप्पणियाँ

व्याख्या – यह अग्नि देव अन्य देवों के साथ हविभोज के लिये इस यज्ञ में आयें। किस प्रकार की अग्नि? होता होम को पूर्ण करने वाला। कविक्रतु। कविशब्द यहाँ पर क्रान्त के अर्थ में न होकर के मेधाविनाम के अर्थ में है। क्रतु प्रज्ञान का अथवा कर्म का नाम है। वहाँ पर क्रान्तप्रज्ञ अथवा क्रान्तकर्मा है। सत्यझूठ से रहित फल को अवश्य देता है यह अर्थ है। चित्रश्रवस्तम। सुना जाता है यह श्रव कीर्ति है। विशेष रूप से अनेक कीर्ति से युक्त है।

टिप्पणी – यह अग्नि देवों का होता है। कविक्रतुः – इस अग्नि का कर्म सभी और गया होने से यह कविक्रतु है। अभिलषित फल को देने वाला सत्य है। चायृ पूजानिशामनयोः इस धातु से चित्र शब्द बनता है ऐसा स्कन्द स्वामी कहते है। चित्र चित्रीकरणे यह अन्य धातु है। उससे भी चित्रशब्द होता है। यह ही चित्रशब्द लोक में प्रचलित है। उसका अर्थ विचित्र है। अर्थात् विविध, बहुत प्रकार का यह है। श्रवः यह अन्न का नाम है, धन का नाम भी है। उसका कीर्ति यह भी अर्थ है। तमप्-प्रत्यय अतिशय अर्थ में जाना जाता है। अतः चित्रश्रवस्तम इसका एक से अधिक अर्थ होता है। वैसे ही विशेष रूप से पूज्य विचित्र अथवा विविध अन्न है जिसका वह चित्रश्रवस्तम है। विशेष रूप से पूज्य विचित्र अथवा विविध धन है जिसका वह चित्रश्रवस्तम कहलाता है। विशेष रूप से पूज्य विचित्र अथवा विविध कीर्ति है जिसकी वह चित्रश्रवस्तम है। ये इसके अर्थ हो सकते है।

सरलार्थ – अग्नि यज्ञ में देवता का आह्वान करता है। और वह उत्कृष्टबुद्धिसम्पन्न सत्यशील और कीर्तिमान् है। इस प्रकार का जो यह अग्नि है वह देवता के साथ यज्ञ में आये।

व्याकरण

- **कविक्रतुः** – कविः क्रतुः यस्य सः, बहुव्रीहिसमास है। प्रथमा एकवचन में यह रूप बनता है।
- **चित्रश्रवस्तमः** – चित्रं श्रवः यस्य सः चित्रश्रवाः अतिशायी चित्रश्रवाः इति चित्रश्रवस्तमः, बहुव्रीहिसमास है। चित्रश्रवस् – शब्द से तमप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में चित्रश्रवस्तमः यह रूप बनता है।
- **देवेभिः** – देवशब्द का तृतीयाबहुवचन में यह वैदिक रूप है। लौकिक में तो देवैः यह रूप बनता है।
- **गमत्** – गम्-धातु से लेट् प्रथमपुरुष एकवचन में गमत् यह रूप बनता है। सायणाचार्य के अनुसार से गम् – धातु लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥६॥

पदपाठ – यत्। अङ्ग। दाशुषे। त्वम्। अग्ने। भद्रम्। करिष्यसि। तव। इत्। तत्। सत्यम्। अङ्गिरः॥६॥

अन्वय – अङ्ग अग्ने! त्वं दाशुषे यत् भद्रं करिष्यसि, अङ्गिरः! तत् तव इत् सत्यम्।

व्याख्या – अङ्ग यह दुसरे को अपनी और अभिमुखी करने अर्थ में निपात है। हे अग्नि! तुम हवि का दान करने वाले यजमान के लिए कल्याण करते हो और अन्त में वह कल्याण तुम्हारे लिए ही है। सुख हेतु के लिए है यह अर्थ है। हे अङ्गिर! अग्नि और यह भी सत्य है और इसमें यहाँ पर भी किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं है। यजमान को धन आदि संपत्ति मिलाने के बाद वह याग के द्वारा तुम्हे ही सुख पहुँचाता है।

टिप्पणी – अङ्ग यह निपात पादपूरण अर्थ में प्रयोग होता है। शीघ्र अर्थ में भी प्रयोग होता है। तब क्षिप्रं शीघ्रं दाशुषे यह अन्वय होगा। दाशृ दाने इस धातु से क्वसुप्रत्यय के योग से दाश्वस् शब्द होता है। उसका चतुर्थी में दाशुषे यह रूप बनता है। देना यह अर्थ है। यहाँ प्रकरण से हवि दान करने का यह अर्थ होता है। भद् कल्याणे सुखे च धातु से रक्-प्रत्यय के योग से भद्रशब्द बनता है। कल्याणम् यह उसका सामान्य अर्थ है। कौन, कब अपने कल्याण के लिए चिन्तन करता है यह देश काल पात्र भेद से अलग अलग है। अतः यहाँ पर प्रकरण में यजमान पशु-गृह-प्रजा-धन आदि को कल्याण मानता है तो पशु आदि यहाँ पर कल्याण हैं। वह ही उसको चाहिए। अतः सायाणाचार्य ने उसी प्रकार की व्याख्या की है। वस्तुतः हम सुख को ही चाहते हैं। अतः सुख ही कल्याण है। फिर भी सुखसाधन भी कल्याणकारी कहलाते है। अतः जिसके लाभ से मनुष्य सुख का अनुभव करता है वह कल्याण भद्र कहलाता है। और वह प्रसङ्ग भेद से भिन्न हो सकता है। यास्काचार्य ने कहा है – भजनीय। भूतों के लिए। अपने से अन्य को रमाये। भजन सुनाने वाला जैसा श्रोता को मन्त्र मुग्ध कर देता है उसी प्रकार जो अन्य को प्रसन्न कर दे। इत्यादि अर्थ कहते है। इत् शब्द ही अर्थ में है। तवेत्तत् इसका तेरा ही यह अर्थ प्राप्त होता है। हे अग्नि तुम भद्र करोगे यहाँ पर कृधातु दान अर्थ में ग्रहण की गई है। उससे हे अग्नि तुम भद्र करोगी यह अर्थ प्राप्त होता है। अङ्गिरस् शब्द सकारान्त पुल्लिंग है। अङ्गिराः नाम ऋषि का है। उसका उत्पत्ति कारण अग्नि है ऐसा स्कन्द स्वामी मानते हैं। कैसे तो फिर हे अग्ने यह और अङ्गिरः यह सम्बोधन में है। अभेद के बोध होने से और वहाँ कहते है कार्यशब्द से कारण का अभिधान है। अर्थात् अङ्गिरः इससे अङ्गरस कारण अग्नि का बोध कराता है। शरीर का अवयव अङ्ग कहलाता है। शरीर अङ्गि कहलाता है। अङ्गि शरीर का स्थितिहेतु शरीर में खाए पिये रस से हुआ। खाये अथवा पिये पदार्थ से शरीर में रससृष्टि का निर्माण अग्निवश से होता है। अतः शरीर में रस का कर्ता अग्नि अङ्गिरस् कहलाता है। इस प्रकार जठराग्नि अङ्गिरा होती है। और रस लोहित-मांस-स्नायु- अस्थि-मज्जा-शुक्र। खाये हुए का इन रसरूप से परिवर्तन अग्नि करता है।

सरलार्थ – यहाँ मन्त्र में अग्नि के प्रति कहते है की हे अग्नि अथवा अङ्गिर तुम हविदान करने वाले यजमान के लिए जो कल्याण करोगे वह वस्तुतः आप का ही सुख साधन है।

व्याकरण

- **अङ्ग** – आकर्षित करने अर्थ में सम्बोधनात्मक निपात है।
- **दाशुषे** – दाशृ-धातु से क्वसुप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में दाशुषे यह रूप बनता है।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥७॥

पदपाठ - उप। त्वा। अग्ने। दिवेऽदिवे। दोषाऽवस्तः। धिया। वयम्। नमः। भरन्तः। आ। इमसि॥७॥

अन्वय - दोषावस्तः अग्ने वयं दिवेदिवे धिया नमः भरन्तः त्वा उप आ इमसि।

व्याख्या - हे अग्नि हम अनुष्ठाता प्रत्येक दिन रात और प्रत्येक समय में बुद्धि से तुम्हें नमस्कार करते हुए तुम्हारे समीप आते है।

टिप्पणी - लौकिक संस्कृत में धातु से पूर्व व्यवधान रहित उपसर्ग का प्रयोग किया जाता है। वेद में धातु उपसर्ग के मध्य में व्यवधान सम्भव है। कहीं-कहीं पर तो धातु से उत्तर भी उपसर्ग का प्रयोग होता है। उनकी (गत्ति उपसर्गसंज्ञा) प्राग् धातोः। छन्दसि परेऽपि। व्यवहिताश्च। इन तीन सूत्रों के द्वारा पाणिनीय प्रतिपादित अष्टाध्यायी में किया है। अतः इस मन्त्र में उप इस उपसर्ग का एमसि इस क्रियापद के साथ अन्वय होता है। समीप आओ यह उसका अर्थ है। दोषावस्तः - वस आच्छादने यह धातु है। दोषा इसका रात्रि यह अर्थ है। रात अपने प्रभाव से प्रकाश को ढक लेता है वह दोषावस्ता, ऋकारान्त शब्द है। उसका सम्बोधन में यह रूप दोषावस्तः है। नम्-धातु से असुन्-प्रत्यय के योग से नमस् यह अव्यय बनता है। वह नपुंसकलिङ्ग में गिना जाता है। स्तुति अथवा नमस्कार यह उसका अर्थ है। भृधातु से शतृप्रत्यय के योग से भरत् यह प्रातिपदिक प्राप्त होता है। उसका पुल्लिंग प्रथमाबहुवचन में भरन्तः यह रूप बनता है। नमः भरन्तः यह अन्वय है। यहाँ पर नमः कर्मरूप से ग्रहण किया गया है। अर्थात् नमस्कार को पूर्ण करते हुए यह अर्थ है। हे अग्नि प्रतिदिन जैसी हमारी बुद्धि है वैसा ही नमस्कार अथवा स्तुति करते हुए हम तेरे समीप आते हैं।

सरलार्थ - इस मन्त्र में यज्ञकार अग्नि के प्रति कहते है की हम दिन और रात बुद्धि से युक्त आप को नमस्कार करते हुए और हम तेरे समीप आते हैं।

व्याकरण

- **भरन्तः** - भृधातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में भरन्तः यह रूप बनता है।
- **इमसि** - इधातु से लट् उत्तमपुरुष बहुवचन में इमसि यह रूप बनता है। वेद में कभी इदन्तो मसि इस सूत्र से मकार के स्थान में मसि यह आदेश होता है।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे॥८॥

पदपाठ - राजन्तम्। अध्वराणाम्। गोपाम्। ऋतस्य। दीदिविम्। वर्धमानम्। स्वे। दमे ॥८॥

अन्वय - राजन्तम् अध्वराणां गोपाम् ऋतस्य दीदिविं स्वे दमे वर्धमानम्।

व्याख्या – पूर्वमन्त्र में त्वाम् उपैम इससे अग्नि को उद्दिश्य करके कहा है। तुम किस प्रकार की हो। हिंसा रहित यज्ञों का प्रकाशक, सत्य का रक्षक स्वयं प्रकाशमान अपने स्थान से बढ़ने वाले (अग्नि के पास हम प्रतिदिन आते है)। अध्वरों का राक्षसों द्वारा किया गया हिंसारहित यज्ञों का गायों का रक्षक, सृष्टि का अपरिवर्तनशील विधान सत्य का अवश्य कर्मफल बार-बार प्रकाशित होता है। आहुति को धारण करने वाली अग्नि को देखकर शास्त्र प्रसिद्ध कर्मफल को स्मरण किया। अपने घर में यज्ञशाला में हवि के द्वारा बढ़ता है।

टिप्पणी – पूर्वमन्त्र कहा गया है की तुम अग्नि हमारे समीप आओ। वह अग्नि किस प्रकार की है। अपने आप प्रकाशित होता है। राजृ दीप्तौ इस धातु से शतृप्रत्यय के योग से राजत् यह प्रातिपदिक प्राप्त होता है। उसका द्वितीया एकवचन में रूप राजन्तम् यह प्राप्त होता है। प्रकाशमान यह अर्थ है। राजृ ऐश्वर्यकर्मा यह स्कन्दस्वामी मानते हैं। तब राजत् इसका ईशान का शासनकर्ता यह अर्थ है। किसका शासन अध्वर यज्ञों का यह है। गोपाम् – गायों की रक्षा करने वाला गोपा कहलाता है। उसको। ऋतम् – ऋ गतौ इस धातु से क्तप्रत्यय के योग से ऋतशब्द बनता है। ऋतशब्द के अनेक अर्थ वेद में ही प्राप्त होता है। सायणाचार्य के अनुसार कर्मफल को यह उसका अर्थ होता है। स्कन्दस्वामी के अनुसार उसका अर्थ ही यज्ञ प्रकृतमन्त्र में है। वेङ्कटमाधव के अनुसार उसका अर्थसत्य है। वेद में इसके अनेक अर्थ है। वहाँ प्रथम अर्थ है -ऋग्वेद में ऋत शब्द का अर्थ प्रकृति यह भी अधिकाशं रूप से प्राप्त होता है। द्वितीय अर्थ यह है की- जगत में सूर्य-चन्द्र-पृथिवी-नक्षत्र- ऋतु-दिन-रात इत्यादि सभी विशिष्ट नियम के अनुसार प्रवृत करता है। यह शाश्वत नियम है। इस नियम का उल्लङ्घन कोई नहीं करता है। यह नियम ही ऋत् है। अतः ऋत जगत का शासन करता है। जगत का पालक ऋत् है। जगत को चलाने के लिए कोई शाश्वत नियम ऋत है। तृतीय अर्थ है -यज्ञों के अनुष्ठान में देवों का आह्वान हविदान देवपूजा इत्यादि का कुछ स्थिर क्रम दिखाई देता है। यह ही एक नियम है। यह नियम ही ऋत है। यज्ञकर्म का नियमित ऋत है। चौथा अर्थ-यज्ञो का चालन ऋत से होता है कहा गया है। क्रमश ऋतशब्द यज्ञ अर्थ में भी प्रयोग किया गया है। ऋत यज्ञ को कहता है। पाँचवां अर्थ-यज्ञानुष्ठान में यजमान का और ऋत्विजों का आचरण नियम ही व्रत कहलाता है। ऋत शब्द इस प्रकार नैतिकव्रत अर्थ में भी दिखाई देता है।

सरलार्थ – किस प्रकार की अग्नि के समीप यज्ञ करने वाले ऋत्विग जाते हैं। उसका ही वर्णन इस मन्त्र में कहा गया है की यह अग्निप्रकाश से युक्त, यज्ञों का रक्षक, कर्मफल का बार-बार स्मरण कराने वाला, यज्ञ से अपने स्थान में और यज्ञगृह में वृद्धि को प्राप्त करता है। इस प्रकार के अग्नि के समीप यज्ञकर्ता जाते हैं।

व्याकरण

- **राजन्तम्** – राज्-धातु से शतृप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में राजन्तम् यह रूप बनता है।
- **दीदिविम्** – दिव्-धातु से क्विन्प्रत्यय करने पर और द्वित्व करने पर द्वितीया एकवचन में दीदिविम् यह रूप बनता है।
- **वर्धमानम्** – वृध्-धातु से शानच्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में वर्धमानम् यह रूप बनता है।

टिप्पणियाँ

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥९॥

पदपाठ – **सः। नः। पिताऽइव। सूनवे। अग्ने। सुऽउपायनः। भव। सचस्व। नः। स्वस्तये ॥९॥**

अन्वय – अग्ने ! सः (त्वं) सूनवे पिता इव नः सूपायनः भव। स्वस्तये नः सचस्व।

व्याख्या – हे अग्नि वह तुम हमारे लिए अच्छी प्रकार से अर्थात आसानी से पहुँचने योग्य हो। वैसे ही हमारे लिये कल्याणकारी विनाश रहित हो साथ रहना इस प्रकार किया गया है। वहाँ पर यह दोनों दृष्टान्त हैं। जैसे पुत्र के कल्याण के लिये पिता समीप ही रहता है उसी प्रकार आप भी हमारे कल्याण के लिए उनके समीप रहते हैं।

टिप्पणी – सूपायनः – सु+उप+इण् गतौ इस धातु से ल्युट्-प्रत्यय के योग से सूपायन शब्द निष्पन्न होता है। शुभागमन वाला, अच्छी प्रउपहार की वस्तु, सुलभ उपाय वाला सूपायनः कहलाता है। उपैति इसका अर्थ समीप जाता है। सुख से समीपगमन किया जा सके उस प्रकार की आप अग्नि हमारे लिए हो। सूपगमः सुख को प्राप्त हो। सु+अस् भुवि इस धातु से क्तिन्-प्रत्यय के योग से स्वस्ति यह शब्द बनता है। इसके अनेक अर्थ है, कुल परम्पपरा विनाश से रहित हो इस प्रकार एक अर्थ देखा जाता है। विनाश से रहित यह सायण का अर्थ है। सच् समवाये इस धातु से आत्मनेपद में लोट् थास होने पर सचस्व यह रूप बनता है। कल्याणकारी हो, हमारी रक्षा करो। अर्थात् हमको विनाश से हटा दीजिये अर्थात हमारी रक्षा करो।

सरलार्थ – इस मन्त्र में अग्नि को अनायास से प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है।यहाँ अग्नि के प्रति कहते हैं, हे अग्नि पिता जैसे पुत्र के कल्याण के लिए उसके समीप में रहता है, अनायास से ही उनकी प्राप्ति का विषय है जैसे तुम भी हमारे कल्याण के लिये अनायास प्राप्ति का विषय हो।

व्याकरण

- **सूपायनः** – सुपूर्वक और उपपूर्वक से इ-धातु से युच्प्रत्यय करने पर सूपायनः यह रूप बनता है। सुख से उपाय है जिसका वह सूपायनः कहलाता है।
- **भव** – भू-धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में भव यह रूप बनता है।
- **स्वस्तये** – सुपूर्वक अस्-धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में स्वस्तये यह रूप है। लौकिक में तो स्वस्ति यह अव्ययपद है।
- **सचस्व** – सच्-धातु से आत्मनेपद में लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में सचस्व यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 15.2

1. कविक्रतु: इसका क्या अर्थ है?
2. किस प्रकार की अग्नि देवों के साथ आओ?
3. गमत् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
4. अङ्ग- यह किस प्रकार का निपात है?
5. अङ्गिर: यह कह करके किसका सम्बोधन किया जाता है?
6. इमसि यहाँ पर क्या धातु है?
7. चित्रश्रवस्तम: इसका विग्रह और समास लिखो।
8. दाशुषे इसकी प्रकृति और प्रत्यय लिखो।
9. सूपायन: यहाँ पर धातु क्या है?
10. दोषावस्त: इसका क्या अर्थ है?
11. सचस्व यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
12. दीदिविम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
13. अध्वराणाम् इसका क्या अर्थ है?
14. भरन्त: यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
15. श्रव: इसका क्या अर्थ है?

15.2 अग्नि का स्वरूप

सभी वैदिक देवताओं में अग्नि ही पवित्रतम देवता है। ऋग्वेद में केवल अग्नि की दो सूक्तों में स्तुति देखी जाती है। इनको छोड़कर अन्य सूक्तों में भी देवताओं के साथ अग्नि की भी स्तुति की गई है। यद्यपि गुरुत्व की दृष्टि से इन्द्र से बाद में ही अग्नि का स्थान वैसे भी यज्ञप्रधान वेद का प्रत्येक मण्डल के आरम्भ में वह सम्बोधन के विषय को प्राप्त करता है।

वेद में द्यावा पृथिवी यह एक बहुत चर्चित देवता युगल है। इन दोनों के पुत्र होने की परिकल्पना से अग्नि पृथिवी पर रहती है। यह ही वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति प्रदर्शन करने में प्रवृत्त निरुक्तकार ने सबसे पहले अग्नि की व्याख्या करने की इच्छा से कहा - ''अग्नि पृथिवी स्थानीय देव की प्रथम व्याख्या करेंगे। इससे पृथिवी स्थित यह देवता देवताओं का प्रथम देवता है यह अच्छी प्रकार

टिप्पणियाँ

से विदित ही है। वेद संहिताओं में सबसे प्रचानी होने से और ऐतिहासिकों के द्वारा समर्थित अग्निसूक्त का ही आरम्भ किया जाता है। वैसे भी वेद में कहा गया है – ''अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।'' इति। गीतिप्रधान सामवेद का भी अग्न आयाहि वीतये इति अग्नि के आह्वान से ही आरम्भ प्राप्त होता है।''अग्निर्वै प्रथमो देवतानाम्'',''अग्निर्वै देवानामवमः", इत्यादि ब्राह्मणवाक्य देवताओं में अग्नि की प्रधानता को निःसन्देह प्रकट करते हैं।

वैदिक दृष्टि से यज्ञ ही श्रेष्ठतम वैदिक कर्म है। यद्यपि परवर्तन काल में यज्ञ शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग दिखाया जाता है, फिर भी यज्ञ ऐसा कहने पर अग्निहोत्र रूप अर्थ शीघ्र जाना जाता है। यह ही अग्नि होम को पूर्ण करती है, क्रान्तप्रज्ञा वाली झूठ से रहित विविधकीर्ति से युक्त ऐसी कीर्ति है। वैसे वेद में कहा गया है – ''अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः" इति। इससे अग्नि के सहयोग से यजमान सभी इच्छाओं को प्राप्त करता है। सबसे ऊपर वह यजमान के पिता भाई और सखा होता है। वैसा ही वेद के ऋक्संहिता में कहा गया है – ''अग्निं मन्ये पितरमग्निमपिमग्निं भ्रातरं सदमित् सस्वायम् ...." इति।

निरुक्तकार यास्क के अनुसार वेदो में अग्नि ही एक देव हैं। वह ही इन्द्रवरुण आदिनाम से अनेक रूपों में उसका वर्णन किया गया है। वैसे वेद में कहा गया है – ''त्वमग्न इन्द्रो वृषभः ... त्वं विष्णुः ... त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि'' इति। ऐतरेयब्राह्मण में अग्निः सर्वाः देवताः इस मन्त्रांश से अग्नि को सभी प्रकार के देवों से युक्त प्रतिपादित किया गया है।

अग्नि के सर्वज्ञ होने की भी कीर्ति है, क्योंकि वह यज्ञविषयक सभी कुछ जानती है। उससे ही उसका जातवेदा यह नाम रखा गया। वह अपने उपासकों में वररूप से पुत्र धन आदि की वर्षा करती है। वेद में कहा गया है – ''अग्निना रयिमश्नवत् .." इति। इस प्रसङ्ग में ''आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्" इस पौराणिकआख्यायिका का भी अनुसन्धान करना चाहिए। अग्नि ने दैत्यों का विनाश किया इस प्रकार की कीर्ति का भी कुछ लोग वर्णन करते हैं। मैक्डोनल्ड महोदय के अनुसार इन्द्र – इराणीय मनुष्यों के मध्य में बहुत समय पूर्व अग्निपूजा का प्रचलन था। उनके मत में इतालीय और ग्रीसदेश के निवासी अग्नि को ही विविध देवों को उद्दिश्य करके होम करते थे।

15.3 वेद में अग्नि का चरित्र चित्रण

याग ही आर्यों का इस लोक का और परलोक का साधन दोनों की उन्नति करने का एक ही धर्मसाधन के रूप में गणना की जाती है। याग में हि अभीष्टदेव को उद्दिश्य करके हवि के त्याग के द्वारा उसके अनुकूल से यजमान अपनी इच्छाओं की प्राप्ति करते हैं। और वह याग अग्नि के द्वारा ही सिद्ध होता है। अग्नि यदि यजमान के द्वारा दी गई हवी को उस देवता को प्राप्त नहीं कराता तो उस यजमान को अभीष्ट कहाँ से प्राप्त होता? अतएव वैदिक मन्त्र में इन्द्र से बाद में ही अग्नि को महत्व दिया गया है, उसके महत्व को प्रकट करने के लिए अग्नि देवता के दो सौ से अधिक सूक्तों में उसका वर्णन किया गया है।

अग्नि के केश से ही उसकी ज्वाला है। उसके दांत स्वर्ण से युक्त है। उसकी जिह्वा का आश्रय लेकर के ही देवहवि का भक्षण करते हैं। और कहा गया है 'अग्निर्वै देवानां मुखम्' 'अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानामि' इस प्रकार। अग्नि की अनेक पशुओं के साथ तुलना की गई है। कहीं पर उसकी नुकीले सींग धारण किये हुए बैल के समान तुलना की गई है। उत्पत्ति समय में वह गाय के बछड़े के समान ही होता है। जब वह लकड़ी के घर्षण से उत्पन्न तब वह देवों का वाहक है, देवों के प्रति दी गई हवि का वाहक घोड़े के समान ही यागरूप से रथ के साथ यजमान के द्वारा जोड़ा जाता है इस प्रकार का भी कहीं पर वर्णन प्राप्त होता है। वह ही दिव्य पक्षी है। और वह आकाश का बाज है। लकड़ी और घी उसका भोजन है। पिघला हुआ घी उसका प्रिय भोजन है। उसकी दिन में तीन हवि के द्वारा उपासना की जाती है। वह उस ज्वाला रूप से चमच के द्वारा देवों को हवि का वितरण करती है।

वह सूर्य के समान तेज है। जीमूतगर्भ की दामिनि के समान उसका प्रकाश है। वह केवल दिन में ही नहीं रात में भी अन्धकार को हटाकर सभी और प्रकाश फैलती है। जब वह अन्धकार रूपी तामस का अनुसरण करती है तो वह सम्पूर्ण जंगल को जलाती है, तब वह नाई के समान ब्लेड से पृथ्वी की दाड़ी को काटती है। उसकी ज्वालामदमस्त हाथी के समान भंयकर गर्जना करती है उसकी गर्जना बिजली के समान प्रतीत होती है। उसका लाल धुआँ गोल रूप से आकाश को स्पर्श करता हुआ नभ को छु लेता है। धूमकेतु जिस प्रकार स्थित है उसी प्रकार यह धुआँ भी द्युलोक में व्याप्त रहता है। वह दीप्ति से युक्त रक्त धुए को घोड़े ले जाते हैं। वह सारथी के समान यागरथ को चलाकर के अभीष्ट देवों को यागस्थान पर लेकर के आता है। 'आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैः' इति और 'स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्' इति प्रमाण है (मण्डलादि में अग्नि इन्द्र से)। वह द्यावापृथिवी के पुत्र हैं। कहीं पर जल से युक्त है ऐसी भी कीर्ति कही जाती है। देव आर्यो का मनुष्यों के मध्य में उनका दीपक से अग्नि की स्थापना की जाती है। इन्द्र अग्नि का भाई कहलाता है। अतः अग्नि के साथ उसका सम्बन्ध अन्य देवों की अपेक्षा से अधिक दृढ़ है।

उसकी उत्पत्ति के विषय में विविध पौराणिक तथ्य प्राप्त होता है। लकड़ी के घर्षण से उत्पन्न होने के कारण अग्नि के माता पिता दो लकड़ी हैं। कहा जाता है की जन्म होने मात्र से ही शिशु अग्नि अपने माता पिता का भक्षण करता है। अग्निप्रज्वलक पुरुष के हाथ की दश अङ्गुली से ही अग्नि को धारण करने वाली ये दश धारण करने वाली धायीमाता है। जिनके बल से ही उत्पन्न होने से वह उससे भी अधिक शक्तिशाली बनने में कुछ समय लगता है 'सहसः सूनुं बलपुत्रः' यह उसका अभिधान्तर है। प्रतिदिन प्रातः काल जब अग्नि प्रज्वलित होती है, तब वह युवा के समान होती है। कोई भी यजमान अग्नि रूपी होता के बिना उस यज्ञ को पूर्ण नहीं कर सकता है।

'न हि देवों न मर्त्यो / महस्तव क्रतुं परः।' उपाख्यान के अन्तर से अग्नि की उत्पत्तिविषय के अन्य यह तथ्य समर्थन करता है की अग्नि बैल के समान जल से उत्पन्न होता है। इसलिए ही अग्नि को अपांनपात इत्यादि आख्या को धारण करता है, वह वैदिकवाङ्मय में पृथग् देवता के रूप में स्तुति को प्राप्त करता है। एक अन्य मत है की अग्नि प्रकाश से युक्त है। कोई मातरिश्वान् इस आख्या से भी अग्नि की उत्पति मानता है, कोई देव स्वर्ग से अग्नि को मर्त्यलोक में लेकर

टिप्पणियाँ

के आया। सूर्य भी अग्नि का अन्य मूर्ति रूप में कीर्ति है। इस प्रकार अग्नि की तीन रूपों से कल्पना की गई है। उसका तीन द्यु तीन शिर और तीन देहस्थान है।

'अग्ने त्री ते वाजिना त्री यधस्था / तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः
तिस्र उ ते तन्वो देववाता / स्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन्॥'

क्योंकि यह विश्व दो भागो में विभक्त है द्यावा और पृथिवी उन दोनों से जो उत्पन्न होने से वह अग्नि द्विजन्मा कहलाता है।

देवों की अपेक्षा अग्नि अधिक रूप से मनुष्यजीवन से सम्बन्धित है। अग्नि ही केवल एक देवता है जो स्थूल नेत्रों से प्रत्यक्ष होता है मनुष्यों को। अतः वह पृथिवी स्थानी देवों में मुख्य मानी जाती है। वह ही केवल गृहपति कहलाती है, क्योंकि कहा जाता है की, वह अतिथिरूप से यजमानों के एक घर से दूसरे घर की तरफ जाती है। वह स्वय अमर होती हुई मरणधर्म घरों में आश्रय को स्वीकार करती है। वह कुछ उपासकों की पिता है, कुछ का भाई और कुछ के पुत्र रूप में उसका वर्णन प्राप्त होता है। और कहा गया है –

'अग्नि मन्ये पितरमग्निमापिमग्नि / भ्रतरं सदमित् सखायम्' इति। और भी कहा गया है – 'स नः पितेव सूनवे / ऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।' वह मनुष्यों के द्वारा दी गई हवि देवों को प्राप्त कराती है। और देवों का भी यज्ञस्थल में आह्वान करती है। अतः वह देवों के द्वारा दूतरूप में लगाई गई और मनुष्यों के द्वारा दी हवि को लेकर के जाना है। क्योंकि अग्नि ही याग को पूर्ण करती है, उससे वह यज्ञ का ऋत्विग्, विप्र पुरोहित इन नामों से भी जानी जाती है। इसी प्रकार कुछ अन्यत्र स्थान पर होता, अध्वर्यु, ब्रह्मण इत्यादि नामों से भी जानी जाती है। यहाँ प्रसङ्ग से इस मन्त्र का यहाँ उल्लेख किया गया है –

'अग्निमीळे पुरोहितं /यज्ञस्य देवमृत्विजम्। / होतारं रत्नधातमम्॥' इति

अग्नि सर्वज्ञ है उसकी कीर्त्ति है क्योंकि वह यज्ञ विषयक सब कुछ जानता है। उससे जातवेदा यह उसकी संज्ञा है। वह अपने उपासको को वर रूप से पुत्रवित्तादि की वर्षा करती है। वेद में कहा गया है –

'अग्निना रयिमश्नवत्/ पोषमेव दिवेदिवे। / यशसं वीरवत्तमम्॥' इति।

इस प्रसङ्ग में 'आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनादि' ति पौराणिक आख्या का भी अनुसन्धान करना चाहिए। अग्नि दैत्य का विनाश करती है ऐसा भी कहीं पर वर्णन प्राप्त होता है। मैक्डोनाल्ड महोदय के अनुसार इन्द्र-इराणी मनुष्यों के मध्य में बहुत काल पूर्व से अग्निपूजा का प्रचलन था। उनके मत में इतालीय और ग्रीसदेश अग्नि के समान ही विविध देवों को उद्दिश्य करके होम करते थे।

प्राच्य विद्वानों के अनुसार अग्निरङ्गतेरिति विग्रह के अनुसारअग्-धातु से निप्रत्यय करने पर अग्नि शब्द बनता है। अग्नि अपने को विस्तृत करती हुई हवी स्थल को अपने आप ही लकड़ी जलाने

और हवि पकाने के लिए प्रेरित करती है यह अर्थ है। मैक्डोनाल्ड के मत में तो अग्नि यह शब्द 'एजा इल ..' इस ग्रीक्देवता के नाम से इसका भाषाविज्ञान समर्थित और उसी रूप में दिखाई देता है।

इग्निस् यह लातिनशब्द से संस्कृत का अग्निशब्द का ध्वनिगत और अर्थगत समानता पर विस्मय किया जाता है। निरुक्त के अनुसार तो एतिधातु से निष्पन्न होने से अयन शब्द से आकार को, अनक्ति-धातु से ककार को, और नयते से नी को लेकर के ककार के स्थान में गकार आदेश करने पर नी इसके ईकार को ह्रस्वादेश विधान करके अग्निशब्द निष्पन्न होता है, प्रत्यक्षवृत्ति परोक्षवृत्ति और अतिपरोक्षवृत्ति को आधार मान करके।

पाठ का सार

इस पाठ में अग्निसूक्त के नौ मन्त्र हैं। वहाँ आदि में अग्निमीळे पुरोहितम्... इति मन्त्र अग्निसूक्त का आदि मन्त्र विद्यमान है। वहाँ पर कहा गया है की अग्नि ही यज्ञ में सभी देवों का आवाह्न करती है। वह ही यज्ञ का पुरोहित है। वहाँ द्वितीय मन्त्र में कहा गया की अग्नि की किनके द्वारा स्तुति करनी चाहिए। कौन उसकी स्तुति करती है। कहा गया है की प्राचीन और पुरातन ऋषियों के द्वारा उसकी स्तुत्ति की जाती है। तृतीय मन्त्र में यजमान अग्नि से क्या प्राप्त करता है। कहा गया -धन को प्राप्त हो। और वह प्रत्येक दिन वृद्धि को प्राप्त हो। इसी प्रकार दान आदिकर्म से यजमान यश को प्राप्त होता है। चतुर्थ मन्त्र में अग्नि के प्रति कहा गया है की तुम जैसे तुम हिंसारहित यज्ञ के चारो और व्याप्त हो उससे वह यज्ञ अवश्य देवों की और जाता है। पञ्चम मन्त्र में कहा गया है की किस प्रकार की अग्नि देवता के साथ आती है। कहते है की वह अग्नि उत्कृष्ट बुद्धि सम्पन्न सत्यशील कीर्तिमान् है। षष्ठ मन्त्र में अग्नि के प्रति कहते है की तुम जो कल्याण करती हो वह वस्तुत: आपके कल्याण के लिए ही होता है। सप्तम मन्त्र में अग्नि के प्रति यजमान होता को जाने के लिए कहा गया है। वे अग्नि के प्रति जाना चाहते है। अब प्रश्न हो सकता है की किस प्रकार की अग्नि है। इसका उत्तर उसके अगले मन्त्र में ही कहा गया है की वह प्रकाश से युक्त, यज्ञ का रक्षक, कर्मफल को प्रकाशित करने वाला, यज्ञ में अपने स्थान को बढ़ाने वाला है। नौवें मन्त्र में अग्नि से अच्छी प्रकार से प्राप्ति के लिए कहा गया है। वहाँ उपमा से कहते है की पिता जैसे पुत्र के समीप में अनायास से ही प्राप्ति का विषय होता है, वैसे ही हे अग्नि तुम भी हमारे लिये हो। इस प्रकार से अग्नि के स्वरूप और महात्म्य को कहा गया है।

पाठांत प्रश्न

(अग्निसूक्त में)

1. अग्निस्वरूप का वर्णन करो।

अग्निमीळे पुरोहितम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

अग्नः पूर्वेभि ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

अग्निना रयि ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

अग्ने यं यज्ञ ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

2. अग्निसूक्त का सार लिखो।

अग्निर्होता कविक्रतुः ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

यदङ्गदाशुषे ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

उप त्वाग्ने ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

राजन्तमध्वराणाम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

स नः पितेव ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

1. प्राचीन और नूतन ऋषियों के द्वारा।
2. अज्मध्यस्थ डकार के स्थान पर।
3. वेद में।
4. यज्ञ का पुरोहित, ऋत्विज, रत्न को धारण करने वाला।
5. लृट और लेट् में।
6. सभी समय में।
7. पुष्टि यश और वीर के समान।
8. अश्-धातु।
9. देवशब्द का द्वितीयाबहुवचन में यह रूप बनता है। पदान्त में स्थित नकार से पूर्व आकार किन्तु बाद में कोई भी स्वर रहता है, तो नकार का लोप होता है। अपितु पूर्ववर्ण को अनुनासिक आदेश होता है।
10. पुरुष।
11. वीरशब्द से मतुप्प्रत्ययऔर तमप्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।
12. पुष्-धातु से घञ्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।

13. परिपूर्वक भू-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर।

14. स्तुति करके।

15. प्राप्त करता है।

16. यश शब्द से अच्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।

17. ईड् धातु।

15.2

1. क्रान्तप्रज्ञा वाला अथवा क्रान्तकर्मा अर्थात अतीव अनामत यज्ञादि कर्मो को जानने वाला।

2. होता कविक्रतु सत्यअतिशयेण विविध कीर्ति से युक्त।

3. गम्-धातु से लेट् प्रथमपुरुष एकवचन में गमत् यह रूप बनता है। सायणाचार्य के अनुसार से गम्-धातु लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।

4. सम्मुख करने अर्थ में प्रयुक्त निपात है।

5. अग्नि का।

6. इधातु है।

7. चित्रं श्रवः यस्य सः चित्रश्रवाः अतिशायी चित्रश्रवाः इति चित्रश्रवस्तमः, बहुव्रीहिसमास है।

8. दाशृ-धातु से क्वसुप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में दाशुषे यह रूप बनता है।

9. इधातु है।

10. रात और दिन।

11. सच्-धातु से आत्मनेपद लोट मध्यमपुरुष एकवचन में।

12. दिव्-धातु से क्विन्प्रत्यय करने पर द्वित्व द्वितीया एकवचन में।

13. राक्षसो द्वारा की गई हिंसा से रहित यज्ञो का।

14. भृ-धातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।

15. कीर्ति।

॥ पन्द्रहवां पाठ समाप्त ॥

16

इन्द्रसूक्त

शब्दराशि और ज्ञान का खजाना वेद है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चार प्रकार से विभक्त वेद है। प्रत्यक्ष प्रमाण से अथवा अनुमान से जो विषय नहीं जाना जाता है उसका ज्ञान वेद से होता है। अर्थात् वेद शब्द प्रमाण है। मनुष्यों का सुख किस अलौकिक उपाय से हो सकता है इसका ज्ञान वेद कराता है। वेद में अनेक देवताओं की स्तुति की गई है। उनमे इन्द्र देव का प्रधान रूप से यजन किया गया है। इन्द्र की स्तुति जिस सूक्त में वह यह इन्द्रसूक्त है।

इन्द्रसूक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जैसे अग्निसूक्त में अग्नि की स्तुति की गई वैसे ही इन्द्रसूक्त में भी इन्द्र के महत्व का वर्णन किया गया है। इन्द्रसूक्त में विद्यमान मन्त्रोरध में इन्द्र का पराक्रम देखा जाता है। इस सूक्त का ऋषि हिरण्यस्तूप, त्रिष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता हैं। इन्द्र ऋग्वेद में सबसे अधिक लोग प्रिय महत्त्वपूर्ण देवता है। ऋग्वेद में २५० सूक्तों में इन्द्र का स्तुति स्वतन्त्ररूप से किया गया है। और ५० सूक्तों में अन्य देवताओं के साथ भी स्तुति की गई है। इसी प्रकार ऋग्वेद में प्राय: चतुर्थ अंश इन्द्र का ही गुण वर्णन किया गया है। जैसा अग्नि और सूर्य यथाक्रम पृथिवीलोक में और द्युलोक में स्वामी हैं, वैसे ही इन्द्र भी अन्तरिक्षलोक में स्वामी है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- इन्द्रसूक्त को जान पाने में;
- इन्द्र के महत्व को जान पाने में;
- इन्द्र की कीर्ति को जान पाने में;
- मनुष्यों की रक्षा के लिये इन्द्र के विषय में जान पाने में;

- इन्द्रसूक्त में विद्यमान वैदिक शब्दों का प्रयोग जान पाने में;
- लौकिक वैदिक प्रयोग के मध्य में भेद कर पाने में;
- वेद में विविध स्वरों के प्रयोग में जान पाने में।

16.1 अब मूलपाठ को पढेंगे

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम्॥१॥

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः॥२॥

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३॥

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४॥

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः॥५॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुज्जानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः॥६॥

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः॥७॥

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव॥८॥

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीदानुः शये सहवत्सा न धेनुः॥९॥

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥१०॥

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११॥

टिप्पणियाँ

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रध्यहन्देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून्॥१२॥

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥

16.1.1 मूलपाठ की व्याख्या

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम्॥१॥

पदपाठ- इन्द्रस्य। नु। वीर्याणि। प्र। वोचम्। यानि। चकार। प्रथमानि। वज्री॥अहन्। अहिम्। अनु। अपः। ततर्द। प्र। वक्षणाः। अभिनत्। पर्वतानाम्॥१॥

अन्वय - नु इन्द्रस्य वीर्याणि प्रवोचं यानि वज्री प्रथमानि चकार। अहिम् अहन्, अनु अपः ततर्द। पर्वतानां वक्षणा अभिनत्।

व्याख्या - हे विद्वान मनुष्यों तुम लोग जैसे सूर्य के उन प्रसिद्ध पराक्रम को कहते हो उनको मैं भी शीघ्र कहुं। बिजली जैसे स्वर्ण युक्त शस्त्र को इंद्र ने धारण किया। सबसे पहले इन्द्र ने ही विष्णु के समान पराक्रमों युक्त कर्म किये। उस इन्द्र के पराक्रमों को विशेष रूप से बताते हैं। वह सूर्यरूपी इन्द्र दिन में नागरुपी बादलों को मारता है। वह ही एक पराक्रमी इन्द्र है। और उसी ने जल रूपी बादलों को मारा वह इन्द्र का दूसरा कार्य है। पर्वतों के द्वारा पुष्ट करने वाली प्रवहणशील नदियों को बहाता है अर्थात नदियों के किनारे को बहाने वाला यह सूर्य रूपी इन्द्र का तीसरा कार्य है। इसी प्रकार आगे भी देखना चाहिए।

सरलार्थ - इस मन्त्र में इन्द्र के पराक्रम युक्त कार्यों का वर्णन किया गया है। प्रथम उस इन्द्र ने मेघ को मारा। दूसरा जल को भूमि पर गिराना। और तीसरा वर्षा द्वारा पर्वतों को खण्डित किया। इस प्रकार नदियों के जाने के लिए मार्ग की रचना की। उस मार्ग से नदियाँ प्रवाहित होती है।

व्याकरण

- **वीर्याणि** - वीर्-धातु से यति प्रत्यय करने पर वीर्यम् यह रूप बनता है। उसका प्रथमा बहुवचन में वीर्याणि यह रूप है।
- **वोचम्** - वच्-धातु से लुङ्मूल लेट् उत्तमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

- **अहन्** – हन्-धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **चकार** – कृ-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **ततर्द** – तृद्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **अभिनत्** – भिद्-धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः॥२॥

पदपाठ- अहन्। अहिम्। पर्वते। शिश्रियाणम्। त्वष्टा। अस्मै। वज्रम्। स्वर्यम्। ततक्ष॥ वाश्राःइव। धेनवः। स्यन्दमानाः। अञ्जः। समुद्रम्। अव। जग्मुः। आपः॥२॥

अन्वय – (इन्द्रः) पर्वते शिश्रियाणम् अहिम् अहन्। त्वष्टा अस्मै स्वर्यं वज्रं ततक्ष। वाश्राः धेनवः इव स्यन्दमाना आपः अञ्जः समुद्रम् अव जग्मुः।

व्याख्या – पर्वत में रहने योग्य आश्रित अहि मेघ को मरता है। इस इन्द्र के लिए गर्जनशील प्रेरणा के योग्य जब शब्दों से स्तुति करके त्वष्टा विश्वकर्मा वज्र को छोड़ते हैं। उस वज्र के द्वारा मेघ के भिन्न होने पर चलते हुए प्रस्रव युक्त जल समुद्र को अच्छी प्रकार से प्राप्त करता है। वहाँ दृष्टान्त है। गाय जिस प्रकार बछड़े की ओर रम्भाती हुई भागती है वैसे ही नदियाँ कोलाहल करती हुई समुद्र को प्राप्त होती है।

सरलार्थ – पर्वत में रहने योग्य आश्रित मेघों को इन्द्र ने मारा। उससे विश्वकर्मा ने गर्जना करने वाले वज्र का निर्माण किया। उस वज्र से मेघ के भिन्न होने पर शब्द करती हुई गाय के समान जल शीघ्र समुद्र की और जाता है।

व्याकरण

- **शिश्रियाणम्** – श्रि-धातु से लिड्र्थ में कानच इयङ आदेश होने पर नकार को णत्व करने पर शिश्रियाणम् यह रूप बनता है।
- **स्वर्यम्** – सुपूर्वक ऋ-धातु से ण्यत करने पर स्वर्यम् यह रूप बनता है। अथवा स्वृ (शब्दोपनापयोः) इससे ण्यत करने पर स्वर्यम् यह रूप बनता है।
- **ततक्ष** – तक्ष्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में ततक्ष यह रूप बनता है।
- **स्यन्दमानाः** – स्यन्द्-धातु से शानच करने पर स्यन्दमाना यह रूप बनता है।
- **जग्मुः** – गम्-धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३॥

टिप्पणियाँ

पदपाठ- वृषऽयमाणः। अवृणीत। सोमम्। त्रिऽकद्रुकेषु। अपिबत्। सुतस्य।।आ। सायकम्। मघऽवा। अदत्त। वज्रम्। अहन्। एनम्। प्रथमऽजाम्। अहीनाम् ।।३।।

अन्वय – वृषायमाणः सोमम् अवृणीत। त्रिकद्रुकेषु सुतस्य अपिबत्। मघवा सायकं वज्रम् आ अदत्त, अहीनां प्रथमजाम् एनम् अहन् ।।३।।

व्याख्या – वीर्य्य वृद्धि का आचरण करते हुए इन्द्र ने सोम को स्वीकार करता है। त्रिकद्रुक याग में ज्योति, गाय, आयु इन तीनों नाम का याग त्रिकद्रुक कहलाता है। इससे उत्पन्न हुए जगत का जिसकी उत्पति स्थिति और प्रलय तीनों को बताने वाले इन्द्र ने सोमरस का अंश पिया। यह बहुत सा धन दिलवाने वाला इन्द्र ने शास्त्र रूपी सूर्य किरणों से मेघ को मारा।

सरलार्थ – बलवान बैल के समान आचरण करते हुए इन्द्र ने अपने प्रिय आहार के लिए सोम को ग्रहण किया। और ज्योति आदि तीन यज्ञों में स्नानीय सोम को पिया। धनवान इन्द्र ने वज्र को स्वीकार किया। और उस वज्र से मेघों में प्रथम प्रकट हुए मेघ को मारा।

व्याकरण

- **वृषायमाणः** – वृष इव आचरन् इस अर्थ में क्यङ, दीर्घ शानचऔर मुगाग करने पर वृषायमाणः यह रूप बनता है।
- **सायकम्** – षिञ्-धातु से ण्वुल अक आदेश करने पर वृद्धि ऐकार होने पर और उसको आया आदेश होने पर नकार को णकार करने पर सायकम यह रूप है।
- **मघवा** – मघः अस्य अस्तीति वतुप करने पर मघवत् इसका प्रथमा एकवचन में मघवा यह रूप है।

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ।।४।।

पदपाठ- यत्। इन्द्र। अहन्। प्रथमऽजाम्। अहीनाम्। आत्। मायिनाम्। अमिनाः। प्र। उत। मायाः।।आत्। सूर्यम्। जनयन्। द्याम्। उषसम्। तादीत्ना। शत्रुम्। न। किल। विवित्से ।।४।।

अन्वय – उत इन्द्र! यत् अहीनां प्रथमजाम् अहन्, आत् मायिनां मायाः प्र अमिनाः, आत् सूर्यम् उषसं द्यां जनयन् तादीत्ना किल शत्रुं न विवित्से ।।४।।

व्याख्या – तब भी और जब इन्द्र ने अवश्य वध करने योग्य शत्रुओं में मेघों के मध्य में प्रथम उत्पन्न मेघ को मारा, और उसके बाद मायावी निशाचरों को उनकी सम्पूर्ण माया के साथ अच्छी प्रकार से नाश किया। और उसके बाद सूर्य, उषा, द्यौ और आकाश को उत्पन्न करके अन्धकार और मेघ को हटा करके प्रकाश किया। तभी तुम अपने राष्ट्र में निश्चय रूप से शत्रुओं को भी नहीं प्राप्त कर सकेंगे।

सरलार्थ – इस मन्त्र में इन्द्र को प्रति का गया है की हे इन्द्र तुम मेघों में प्रथम उत्पन्न को मारा, उसके बाद मायावी राक्षसों को मारा। और उसके बाद सूर्य को, उषःकाल को, और आकाश निर्माण किया। इस प्रकार निश्चय के द्वारा किसी के भी शत्रु नहीं रहते हैं।

व्याकरण

- **मायिनाम्** – मायाशब्द से तदस्यास्ती इस अर्थ में इनिप्रत्यय करने पर मायिन् यह हुआ उसका षष्ठीबहुवचन में मायिनाम्।
- **अहन्** – हन्–धातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन में अहन् यह रूप बनता है।
- **अमिनाः** – मी–धातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन में अमिनाः यह रूप बनता है।
- **जनयन्** – जन्–धातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में जनयन् यह रूप है।
- **विवित्से** – विद्–धातु से आत्मनेपद लिट् मध्यमपुरुष एकवचन में विवित्से यह रूप है।

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः।।५।।

पदपाठ- अहन्। वृत्रम्। वृत्रऽतरम्। विऽअंसम्। इन्द्रः। वज्रेण। महता। वधेन ।।स्कन्धांसिऽइव। कुलिशेन। विऽवृक्णा। अहिः। शयते। उपऽपृक्। पृथिव्याः।।५।।

अन्वय – इन्द्रः महता वधेन वज्रेण वृत्रम् अहन् वृत्रतरं व्यंसम् (अहन्)। कुलिशेन स्कन्धांसि विवृक्णा इव अहिः पृथिव्याः उपपृक् शयते ।।५।।

व्याख्या – यह इन्द्र वज्र से सम्पादित जो महान् वज्र है उससे वज्र से आकाश को घेर लेने वाले बादलो को बड़े भरी वज्र से प्रहार करता है। अथवा वृत्र के द्वारा आवरण जो सभी शत्रु की रक्षा करता है उस वृत्र इस नाम वाले को शत्रु हन्ता इन्द्र ने विविध सेनाओं से युक्त अधिक शक्तिशाली वृत्र का नाश किया। यहाँ पर यह दृष्टान्त है। कुल्हाड़ी से जिस प्रकार वृक्ष काट दिया जाता है उसी प्रकार इन्द्र ने मेघ को मारा। और अहि, वृत्रपृथ्वी के ऊपर सदा के लिए सोये अथवा कटी हुई लकड़ी के समान भूमि पर गिरे।

सरलार्थ – इन्द्र ने बड़े वज्र से वृत्र को मारा। उसे बाद भी वृत्र से भयंकर व्यंसनाम के राक्षस को मारा। जैसे कुल्हाड़ी से काटी गई वृक्ष की शाखा भूमि पर गिरती है, वैसे ही राक्षस पृथिवी के समीप अथवा उसकी गोद में हमेशा के लिए सोये।

व्याकरण

- **वृत्रतरम्** – अतिशयने वृत्रम् इस अर्थ में तरप करने पर वृत्रतरम् यह रूप है। अथवा वृत्रैः तरति इससे वृत्रतरम् बनता है।

टिप्पणियाँ

- **व्यंसम्** - विगतौ अंसौ यस्य तम् यहाँ बहुव्रीहि समास है।
- **वधेन** - वधः येन स वधः, उससे यहाँ पर तृतीया तत्पुरुष समास है।
- **विवृक्णा** -विपूर्वकव्रश्च् धातु से क्तप्रत्यय करने पर विवृक्ण यह रुप बनता है। उसका प्रथमाबहुवचन में वैदिकरूप विवृक्णा है।

पाठगत प्रश्न 16.1

1. इन्द्रसूक्त का ऋषि कौन, छन्द क्या, और देवता कौन है?
2. इन्द्र का प्रथमपराक्रम क्या था?
3. इन्द्र का तृतीयपराक्रम क्या था?
4. वाश्राः इसका क्या अर्थ है?
5. शिश्रियाणम् इसका क्या अर्थ है?
6. वृषायमाणः इसक क्या अर्थ है?
7. प्र अमिनाः इसका क्या अर्थ है?
8. विवृक्णा इस रूप को सिद्ध करो?
9. महता वधेन इस मन्त्र अंश में वध शब्द का क्या अर्थ है?
10. विवृक्णा इसका क्या अर्थ है?

16.1.2 अब मूलपाठ को जानेंगे

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुज्जानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः॥६॥

पदपाठ - अयोद्धाऽइव। दुःऽमदः। आ। हि। जुह्वे। महाऽवीरम्। तुविऽबाधम्। ऋजीषम् ।न। अतारीत्। अस्य। सम्ऽऋतिम्। वधानाम्। सम्। रुजानाः। पिपिषे। इन्द्रःऽशत्रुः॥६॥

अन्वय - दुर्मदः महावीरं तुविबाधम् ऋजीषम् अयोद्धा इव हि आ जुह्वे। अस्य बधानां समृतिं न अतारीत्। इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपिषे।

व्याख्या - बुरे, पापमय मद, भोग, विलास से तृप्त रहने वाला वृत्र बिना युद्ध की इच्छा वाले इन्द्र को लड़ना न जानने वाले अकुशल के समान युद्ध में ललकारा। किस प्रकार के इन्द्र को? महावीर गुण के द्वारा महान होकर शौर्य से युक्त अनेक शत्रुओं को पीटने में समर्थ, उत्तम गुण

उत ऐश्वर्य युक्त धर्मात्मा नीतिमान को। इस प्रकार के इन्द्र के संबन्धि जो शत्रुवध शस्त्र है उन शस्त्र-अस्त्र के एक साथ आने वाले प्रहार को पार कोई नहीं कर सकता। इन्द्र शत्रु जिस वृत्र का उस प्रकार का वृत्र इन्द्र के हाथों से मरकर नदियों में गिरता हुआ उन नदियों को पूर्ण रूप से भर देता है। वृत्रदेह के गिरने से नदियाँ विक्षुब्ध हो जाती है और उससे तट पर स्थित पत्थर आदि का चूर्ण हो जाता है।

सरलार्थ - मद से युक्त वृत्र ने अनेक गुणों से सम्पन्न वीर अनेक शत्रुओं को मारने वाले इन्द्र को अकुशल योद्धा के समान ललकारा। परन्तु वृत्र उसको शस्त्र से मारने में असमर्थ और इन्द्र के ही वज्र से मारा गया। और उसने नदियों को पूर्ण किया।

व्याकरण

- **अयोद्धा** - न योद्धा इति अयोद्धा यहाँ पर नञ्तत्पुरुष समास। अथवा न विद्यते योद्धा अस्य सः अयोद्धा यहाँ पर बहुव्रीहिसमास है।
- **दुर्मदः** - दुष्टः मदः यस्य सः यहाँ पर बहुव्रीहि समास है।
- **तुविबाधम्** - तुवीन् बाधते इस अर्थ में अच्प्रत्यय करने पर तुविबाध यह रूप है। उसका द्वितीया एकवचन में तुविबाध या रूप है।
- **समृतिम्** - सम्पूर्वक ध्-धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर।
- **रुजानाः** - रुज्-धातु से शानच्प्रत्यय करने पर रुजान यह है। रुजानि कूलानिइति रूजानाः नद्यः।
- **पिपिषे** - आत्मनेपद पिष्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **अतारीत्** - तृ-धातु से लुङ् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **इन्द्रशत्रुः** - इन्द्रः शत्रुः यस्य सः यहाँ बहुव्रीहिसमास है।

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः॥७॥

पदपाठ- अपात्। अहस्तः। अपृतन्यत्। इन्द्रम्। आ। अस्य। वज्रम्। अधि। सानौ। जघान ॥ वृष्णः। वध्रिः। प्रतिऽमानम्। बुभूषन्। पुरुऽत्रा। वृत्रः। अशयत्। विऽअस्तः॥७॥

अन्वय - अपात् अहस्तः इन्द्रम् अपृतन्यत्। अस्य सानौ अधि वज्रम् आ जघान। वृष्णः प्रतिमानं बुभूषन् वध्रिः वृत्रः पुरुत्रा व्यस्तः अशयत् ॥७॥

व्याख्या - वज्र से पैर के छिन्न होने से और हाथ के छिन्न होने से हाथ रहित वृत्र ने इन्द्र को उद्दिश्य करके सेना सहित युद्ध करने की इच्छा की। द्वेष की अधिक होने से अनेक प्रकार से भंग होने पर भी युद्ध को नहीं छोड़ता यह अर्थ है। इस हाथ पैर रहित वृत्र के पर्वत के समान

टिप्पणियाँ

उसके भारी कंधो पर वज्र को विशेष रूप से मारा इन्द्र ने समुख होकर के फैंका। बिना शक्ति के भी युद्ध की इच्छा करता है। बधिया बैल के समान निर्बल पुरुष भी सांढ के समान बलवान पुरुष से मुकाबला करना चाहता है, अनेक स्थानों पर पछाड़ खाकर के परास्त होकर के भूमि पर गिर जाता है उसी प्रकार यह है। वह वृत्र अनेक भागों से पीटता हुआ भूमि पर गिरा।

सरलार्थ-पादरहित और हाथ रहित वृत्र ने इन्द्र के प्रति युद्ध के लिए इच्छा की। तब इन्द्र ने पर्वत शिखर के तुल्य कन्धो पर वज्र से प्रहार किया। पुनः बैल के समान जाने की इच्छा करता हुआ निर्बल बंधिया बैल के समान अथवा निर्बल मनुष्य के समान वृत्र भूमि पर गिरा।

व्याकरण

- **अपात्** - न पादौ यस्य सः (बहुव्रीहि)।
- **अहस्तः** - न हस्तौ यस्य सः (बहुव्रीहि)।
- **अपृतन्यत्** -पृतना शब्द से क्यच्प्रत्यय करने पर पृतन्य यह होता है, उसी का लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **प्रतिमानम्** -प्रतिपूर्वक मा-धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर प्रतिमानम् यह रूप है।
- **बुभूषन्** - भवितुम् इच्छति इस अर्थ में सन करने पर प्रथमा एकवचन में यह रूप है।
- **पुरुत्रा** - पुरु इससे सप्तमी अर्थ में त्रा प्रत्यय करने पर पुरुत्रा यह रूप बनता है।

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिदवृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव॥८॥

पदपाठ- नदम्। न। भिन्नम्। अमुया। शयानम्। मनः। रुहाणाः। अति। यन्ति। आपः ।याः। चित्। वृत्रः। महिना। परिऽअतिष्ठत्। तासाम्। अहिः। पत्सुतःऽशीः। बभूव॥८॥

अन्वय - मनः रुहाणाः आपः भिन्नं नदं न अमुया शयानम् अति यन्ति। वृत्रः महिना याश्चित् पर्यतिष्ठत्, अहिः तासां पत्सुतःशीः बभूव।

व्याख्या - जल धाराएं जिस प्रकार प्रजाओं के चित पर चढ़ी, अत्ति चिताकर्षक होकर इस पृथ्वी के साथ सोये हुए प्रशांत महासागर को जा मिलती है उसी प्रकार सेनाएं भी मनोरथ पर चढ़ी हुई इस पृथ्वी के ऊपर सोते हुए टूटे फूटे देह को प्राप्त होती है। वहाँ पर दृष्टान्त है। अनेक भिन्न भिन्न तटों वाली नदियां सिन्धु के समान नहीं होती हैं। जैसे वृष्टिकाल में बहुत जल नदी के तटों को तोड़कर अतिक्रमण करके जाता है उसी प्रकार। किस प्रकार का जल। मन को चिताकार्षक होकर रहता है। पहले वृत्र के जीवित होने पर उसके द्वारा रुका हुआ मेघ स्थित जल भूमि पर वर्षा नहीं करता है, उस समय लोगों का मन दुखी होता है। वृत्र के मरने पर विरोधरहित जल वृत्र शरीर का उल्लङ्घन करके बहता है। तब वृष्टिलाभ से मनुष्य संतुष्ट होते है। उसका स्पष्ट रूप से उल्लेख करते हैं। वृत्र ने अपने जीवन काल में अपनी महिमा से जो मेघ में आया हुआ

जल था उसको वही पर रोक दिया, अहि वृत्र मेघ उस जल का स्वामी युद्ध में पछाड़ खाकर गिरा। यद्यपि जल के पैर नहीं है, फिर भी वृत्र को लाघने से पैरों तले रोंधा यह आशय है।

सरलार्थ- मनुष्यों के मनोहारि वर्षा जैसे वृष्टिकाल में कभी नदी का अतिक्रमण करके जाती है वैसे ही पृथिवी पर जल वृत्र के शरीर को अतिक्रमण करके गिरता है। वृत्र ने अपनी महिमा से जो जल अवरुद्ध किया अब वह ही जल उसके शरीर का उल्लङ्घन करके जाता है यह अर्थ है।

व्याकरण

- **भिन्नम्** - भिद्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर उसको न आदेश होने पर भिन्नम् यह रूप है।
- **अमुया** - अमुष्याम् इस अर्थ में याच्प्रत्यय करने पर अमुया यह रूप है।
- **रुहाणाः** - रुह-धातु से शानच्प्रत्यय करने पर यह रूप है।
- **महिना** - मह-धातु से इन्प्रत्यय करने पर महिन् यह हुआ उसी का तृतीया एकवचन में वैदिकरूप है।
- **पत्सुतःशीः** - पादेषु इस अर्थ में पाद शब्द को पद आदेश होने पर पत्सु यह हुआ सप्तमी अर्थ में तसिल्प्रत्यय करने पर विभक्ति लोप अभाव में पत्सुतः यह रूप है। पत्सुतः शेते इस अर्थ में क्विप करने पर पत्सुतःशीः यह रूप हुआ।
- **बभूव** - भूधातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **पर्यतिष्ठत्** - परि उपसर्ग पूर्वक स्था-धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः॥९॥

पदपाठ- नीचाऽवयाः। अभवत्। वृत्रऽपुत्रा। इन्द्रः। अस्याः। अव। वधः। जभार ॥ उत्ऽतरा। सूः। अधरः। पुत्रः। आसीत्। दानुः। शये। सहऽवत्सा। न। धेनुः॥९॥

अन्वय - वृत्रपुत्रा नीचावया अभवत्। इन्द्रः अस्या अव बधः जभार। सूः उत्तरा पुत्र अधर आसीत्। दानुः सहवत्सा धेनुः न शये ॥९॥

व्याख्या - वृत्र पुत्र है जिस माता का वह माता वृत्र पुत्रा कहलाती है, अन्तरिक्ष को ढ़ंक लेने वाले मेघ को पुत्र के समान उत्पन्न करने वाली अन्तरिक्ष भूमि भी जल को नीचें गिरा देती है मानो स्वयं मरती जाती है तब ऊपर की अन्तरिक्ष माता ऊपर ही रहती है और उसका पुत्र मेघ नीचे गिरता है तब बछड़े सहित गाय के समान वह खण्डित वृत्र माता के नीचे ही गिरा रहता है। उस समय इस इन्द्र ने इस माता के नीचे वाले भाग में वृत्र के ऊपर मारने की इच्छा से प्रहार किया। उस समय माता ऊपर थी। पुत्र तो नीचें था। और वह सेना खण्डित बल होकर नीचे गिर

टिप्पणियाँ

पड़ी। वहाँ दृष्टान्त है। धेनु लोक प्रसिद्ध गाय बछड़े के बिना नहीं रहती है बछड़े के साथ ही सोती है वैसे ही यह वृत्रमाता है।

सरलार्थ – अपमानित वृत्रमाता अपने पुत्र की रक्षा के लिए अपने हाथ को फैलाया। तब इन्द्र ने अपने अस्त्र से प्रहार किया। उसी समय वृत्रमाता मृत्यु को प्राप्त हुई। यहाँ उदाहरण दिया जाता है की जैसे बछड़े सहित गाय सोती है वैसे ही मृत वृत्र भी अपनी माता सहित सोया था।

व्याकरण

- **नीचावयाः** – वेति खादति इस अर्थ में वे-धातु से असिप्रत्यय करने पर वयस् यह हुआ, उसके बाद नीचौ वयसौ यस्याः सा नीचवयाः यहाँ पर बहुव्रीहिसमास है, छन्द में दीर्घ है।
- **वृत्रपुत्रा** – वृत्रः पुत्रः यस्याः सा यहाँ पर बहुव्रीहिसमास है।
- **वधः** – जिससे मारा जाता है उसे वध कहते है। हन को वध आदेश।
- **सूः** – षूङ् प्राणिगर्भविमोचने इस धातु से क्विप करने पर सूः यह रूप बनता है।
- **दानुः** – दो अवखण्डने इस धातु से नुप्रत्यय करने पर दानुः यह रूप बनता है।
- **जभार** – भृधातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥१०॥

पदपाठ – अतिष्ठन्तीनाम्। अनिऽवेशनानाम्। काष्ठानाम्। मध्ये। निऽहितम्। शरीरम् ॥ वृत्रस्य। निण्यम्। वि। चरन्ति। आपः। दीर्घम्। तमः। आ। अशयत्। इन्द्रऽशत्रुः॥१०॥

अन्वयः – अतिष्ठन्तीनाम् अनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं वृत्रस्य निण्यं शरीरम् आपःविचरन्ति। इन्द्रऽशत्रुः दीर्घ तम आ अशयत्।

व्याख्या – वृत्र का जल रूपी शरीर विचरण करता रहता है जल धाराएं विविध रूप होकर बहती है। किस प्रकार का शरीर मृत रूप से बेनाम निशान होकर। जल में मग्न होने से उसका कोई नाम नहीं जानता है। यह ही स्पष्ट करते हैं। वाष्प रूप जल के मध्य में गुप्त रूप से रहता है। किस प्रकार का वाष्प जल। जो स्थिर नहीं रहता कहीं पर भी आसन रूप से स्थिर नहीं होने वाला बहने के स्वभाव से इनकी घुमने फिरने वाले मनुष्य के समान कोई भी स्थिर स्थिति सम्भव नहीं है। इन्द्र का शत्रु वृत्र जल के मध्य में अपने शरीर को लम्बे समय के लिए फैंक देता है, दीर्घअन्धकार के समान, दीर्घ निद्रात्मक मरण जैसा होता है, वैसे ही अपने शरीर को गिरा देता है।

सरलार्थ – किसी निश्चित स्थान के रहित जल के मध्य में गिरे हुए नामरहित वृत्र के शरीर को जल अतिक्रमण करता है। इन्द्र के द्वारा मारा गया वृत्र अनन्त होकर के गिरता है।

व्याकरण

- **अतिष्ठन्तीनाम्** – स्थाधातु से शतृप्रत्यय करने पर ङीप् होकर तिष्ठन्ति यह रूप बनता है। वहाँ पर न तिष्ठन्तीति नञ्तत्पुरुषसमास में षष्ठीबहुवचन में अतिष्ठन्ति नाम यह रूप है।
- **अनिवेशनानाम्** – निपूर्वक विश्–धातु से ल्युट् अन् आदेश होने पर निवेशनम यह हुआ उसके बाद न निवेशनम यहाँ पर नञ् तत्पुरुष समास में षष्ठीबहुवचन में अनिवेशनानाम् यह रूप बनता है।
- **निहितम्** – निपूर्वक धा–धातु से क्तप्रत्यय करने पर निहितम् यह रूप बनता है।
- **काष्ठानाम्** – क्रान्त्वा स्थिता इस अर्थ में क्रम पूर्वक स्था–धातु से क्विप करने पर काष्ठा हुआ षष्ठीबहुवचन में काष्ठानाम यह रूप हुआ।

पाठगत प्रश्न 16.2

1. इन्द्रशत्रु: इसका विग्रह क्या है?
2. रुजाना: इसका क्या अर्थ है?
3. वध्रि: इसका क्या अर्थ है?
4. किस प्रकार के वृत्र ने इन्द्र को युद्ध के लिए ललकारा?
5. पत्सुत:शी इस रूप कोसिद्ध करो?
6. नीचावया: इसका क्या अर्थ है?
7. दानु: इसका क्या अर्थ है?
8. सू: यहाँ पर धातु क्या है?
9. निवेशनम् यहाँ पर किस अर्थ में ल्युट् हुआ?
10. महिना इसका लौकिकरूप क्या है?

16.1.3 अब इन्द्रसूक्त के मूलपाठ को जानेंगे

दासपत्नीरहिंगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार॥११॥

पदपाठ – दासऽपत्नीः। अहिंऽगोपाः। अतिष्ठन्। निऽरुद्धाः। आपः। पणिनाऽइव। गावः ॥ अपाम्। बिलम्। अपिऽहितम्। यत्। आसीत्। वृत्रम्। जघन्वान्। अप। तत्। ववार॥११॥

टिप्पणियाँ

अन्वय – दासपत्नीः अहिगोपा आपः पणिना गावः इव निरुद्धाः अतिष्ठन्, वृत्रं जघन्वान्। अपां यत् बिलम् अपिहितम् आसीत्, तत् अपववार ।।११।।

व्याख्या – जिस प्रकार पणी नामक असुर ने गायों को गुफा में बंद कर दिया था, उसी प्रकार वृत्र द्वारा रक्षित उसकी जल रूपी पत्नियां भी निरुद्ध थी जल बहने का मार्ग भी रुका हुआ था, इन्द्र ने वृत्र को मारकर वह द्वार खोला। जल को स्वच्छन्द रूप से बहने नहीं दिया अर्थात उसका निरोध किया। यहाँ पर यह ही स्पष्ट किया गया है की जल निरुद्ध था।जल को भी मेघ ने रोक दिया तब इन्द्र ने वृत्र को मारकर उसे मुक्त किया।

सरलार्थ – स्वामी मेघ के द्वारा रक्षित जल वृत्र के द्वारा रोका गया जैसे पणिनाम के राक्षसगण ने गायों को छुपाया था। इन्द्र ने वृत्र को मारकर जलप्रवाह के बन्द दरवाजों को खोल दिया।

व्याकरण

- **दासपत्नीः** – दासः पतिः यासां ताः दासपत्नीः यहाँ बहुव्रीहिसमास है। दासयति इस अर्थ में घञ् करने पर दास शब्द बनता है।
- **अहिगोपाः** – अहिः गोपाः यासां ताः अहिगोपाः यहाँ पर बहुव्रीहि समास है।
- **निरुद्धाः** – निपूर्वकरुध्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में निरुद्धाः बना।
- **अपिहितम्** – अपिपूर्वक धा धातु से क्तप्रत्यय करने पर अपिहितिम् बना।
- **जघन्वान्** – हन्-धातु से लिट् अर्थ में क्वसुन्प्रत्यय करने पर प्रथमपुरुष एकवचन में जघन्वान् यह रूप है।
- **आसीत्** – अस्-धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में आसीत् यह रूप है।
- **अतिष्ठन्** – स्था धातु से लङ् प्रथमपुरुष बहुवचन में अतिष्ठन् यह रूप है।
- **अपववार** – अपपूर्वक वृ-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून्॥१२॥

पदपाठ – अश्व्यः। वारः। अभवः। तत्। इन्द्र। सृके। यत्। त्वा। प्रतिऽअहन्। देवः। एकः ।।अजयः। गाः। अजयः। शूर। सोमम्। अव। असृजः। सर्तवे। सप्त। सिन्धून् ।।१२।।

अन्वय – देवः एकः यत् त्वा सृके प्रत्यहन् तत् इन्द्र, अश्व्यः वारः अभवः। शूर, गाः अजयः सोमम् अजयः। सर्तवे सप्त सिन्धून् अवासृजः।

व्याख्या – हे इन्द्र सभी आयुध में कुशल एक अद्वितीय वृत्र ने जब तुम्हारे ऊपर प्रहार किया था, उस समय तुम घोड़े की पूंछ के समान घूमकर उस प्रहार से बच गए थे। जैसे घोड़े की पूंछ

के बाल मक्खी आदि को हटाने के लिए इधर उधर होती है, वैसे ही तुम ने भी वृत्रगण का निराकरण किया यह अर्थ है। और हे शूर गायों का हरण करने वाले पणिनाम के राक्षसों को जीत लिया। हे शूर शौर्य युक्त इन्द्र ने अजय सोम को जीत लिया। और तैत्तिरीय में कहा गया 'त्वष्टा हतपुत्रः' इस उपाख्यान में कहा गया है – 'स यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत्' (तैः – २.४.१२.१) इति। सप्त सिन्धून् 'इमं मे गङ्गे' (ऋ – सं – १०.७५.१) इन ऋचाओं में गङ्गा आदि सात नदियों का प्रवाह बाधाहीन कर दिया। वृत्र के द्वारा किये गये प्रवाहनिरोध का निराकरण किया यह अर्थ है।

सरलार्थ – इस मन्त्र में इन्द्र के प्रति कहा गया है की हे इन्द्र जब अद्वितीय प्रकाशमान वृत्र ने प्रहार किया तब तुम घोडे की पूंछ के समान हो गये। हे शौर्य सम्पन्न इन्द्र! यौम ने गायों को चुराने वालों को जीता, सोम को जीता, और सात नदियों को बंधन से मुक्त किया।

व्याकरण

- **अश्व्यः** – अश्वे भवः इस अर्थ में भवेच्छन्दसि इस सूत्र से यत् करने पर प्रथमा एकवचन में अश्व्यः यह रूप है।
- **वारः** – वारयति इस अर्थ में वृ–धातु से णिच् अच् करने पर प्रथमा एकवचन में वारः रूप है।
- **सर्तवे** – सृ–धातु से तुमर्थ में तवेन्प्रत्यय करने पर सर्तवे यह रूप है।
- **अभवः** – भूधातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन में अभवः यह रूप है।
- **प्रत्यह्न** – प्रतिपूर्वक ह्न–धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **असृजः** – सृज्–धातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **अजयः** – जी–धातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन में रूप है।

नास्मै विद्युन्न तंन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥

पदपाठ- न। अस्मै। विऽद्युत्। न। तन्यतुः। सिषेध। न। याम्। मिहम्। अकिरत्। ह्रादुनिम्। च ।इन्द्रः। च। यत्। युयुधाते इति। अहिः। च। उत। अपरीभ्यः। मघवा। वि। जिग्ये ॥१३॥

अन्वय – यत् इन्द्रः अहिः च युयुधाते अस्मै विद्युत् न सिषेध, न तन्यतुः, यां मिहं ह्रादुनिं च न अकिरत्। उत मघवा अपरीभ्यः विजिग्ये।

व्याख्या – इन्द्र को रोकने के लिये वृत्र ने जिस माया से विद्युत आदि का निर्माण किया वे भी इन्द्र को रोक नहीं सके। यह ही अर्थ इस मन्त्र के द्वारा कहते हैं। इस इन्द्र के लिए निर्मित विद्युत् इन्द्र को पाश में बाँधने में असमर्थ हुई। तथा भंयकर गर्जना करने वाले मेघ को वृत्र ने इन्द्र पर

टिप्पणियाँ

छोड़ दिया वह भी इन्द्र को नहीं रोक सका। जल वर्षा और अशनि का प्रयोग किया वह भी इन्द्र को नहीं रोक सके। इन्द्र और अहि ने इन्द्र और वृत्र दोनों ने जब युद्ध किया। उस समय विद्युत आदि प्राप्त नहीं हुए। और भी शक्तिशाली धनवान इन्द्र ने वृत्र के साथ उसके द्वारा अन्यनिर्मित माया को भी विशेष रूप से जीत लिया।

सरलार्थ - इन्द्र को मारने के लिए जब शक्ति का वृत्र के द्वारा प्रयोग की गई वह सभी विफल हुई। उसका ही वर्णन इस मन्त्र में किया गया है। जब इन्द्रवृत्र के मध्य में युद्धचल रहा था, तब वृत्र के द्वारा माया से जो विद्युत् प्रयुक्त की गई वह इन्द्र की ओर नहीं गई, गर्जना उसकी ओर नहीं गई, वृत्र के द्वारा प्रेरित वर्षा और वज्र भी इन्द्र की ओर नहीं गया। परन्तु ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने भिन्न माया से वृत्र को जीत लिया।

व्याकरण

- **विद्युत्** - विशेषेण द्योत्यते इस अर्थ में विपूर्वक द्युद्-धातु से क्विप करने पर विद्युत् यह रूप है।
- **सिषेध** - षिध्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में सिषेध यह रूप है।
- **मिहम्** - मिह्-धातु से क्विप् करने पर द्वितीया एकवचन में मिहम् यह रूप है।
- **अकिरत्** - कृ-धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में अकिरत् यह रूप है।
- **युयुधाते** - युध्-धातु से आत्मनेपद में क्विप लिट् प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।
- **विजिग्ये** - विपूर्वक जि-धातु से आत्मनेपद लिट् प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।
नवं च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

पदपाठ - अहेः। यातारम्। कम्। अपश्यः। इन्द्र। हृदि। यत्। ते। जघ्नुषः। भीः। अगच्छत्॥ नवं। च। यत्। नवतिम्। च। स्रवन्तीः। श्येनः। न। भीतः। अतरः। रजांसि ॥१४॥

अन्वय - इन्द्र! अहेः कम् यातारम् अपश्यः, यत् जघ्नुषः ते हृदि भीः अगच्छत्, यत् श्येनः न नव च नवतिं च स्रवन्तीः रजांसि अतरः ॥१४॥

व्याख्या - हे इन्द्र जब तुमने वृत्र को मारा उस समय तुम्हारे हृदय चित्त में कोई भी भय नहीं था उस समय तुमने सहायक के रूप में किसी भी वृत्रहन्ता को नहीं देखा तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी पुरुष ऐसा करने में असमर्थ था। उस प्रकार के पुरुष को मारने में तुम्हे कोई भय नहीं था यह अर्थ है। तुम निडर बाज के समान निन्यानवें नदियों को पार करके चले गए। वहाँ दृष्टान्त है। बाज़ नाम का बलवान पक्षी अत्यन्त दूर जाने के लिए भयभीत नहीं होता है। उसी प्रकार तुमने वृत्र को मारकर बिना भय के चले गए। और ब्राह्मण ग्रंथो में कहा गया है - 'इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा

नास्तृषीति मन्यमानः पराः परावतोऽगच्छत्' (ऐतरेयब्राह्मणे - ३.१५) इति। और तैत्तिरीय में भी कहा गया है - 'इन्द्रो वृत्रं हत्वा परां परावतमगच्छदपाराधमिति मन्यमानः' (तै - सं - २.५.३.६) इति।

सरलार्थ - यहाँ पर इन्द्र के प्रति कहते है की हे इन्द्र वृत्र का कोई सहायक नहीं देखा गया जिससे तुम्हारा हृदयवृत्र को मारने से भयभीत हो जाए। जिस प्रकार बाज पक्षी भय से रहित होकर दूर तक जाता है उसी प्रकार तुमने वृत्र को मारकर निडर होकर के निन्यानवें नदियों के पार चले गये।

व्याकरण

- **यातारम्** -या धातु तृच् करने पर द्वितीया एकवचन में रूप है।
- **अपश्यः** - दृश्-धातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन में अपश्यः यह रूप है।
- **जघ्नुषः** - हन्-धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर जघन्वस् यह हुआ उसके बाद षष्ठी एकवचन में जघ्नुषः रूप बना।
- **अगच्छत्** - गम्-धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।
- **स्रवन्तीः** - स्रु-धातु से शतृप्रत्यय करने पर ङीप् द्वितीया बहुवचन में स्रवन्तीः यह रूप है।
- **भीतः** - भीधातु से क्तप्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में भीतः यह रूप है।
- **अतरः** - तध्-धातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन का रूप है।

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥

पदपाठ - इद्रः। यातः। अवऽसितस्य। राजा। शमस्य। च। शृङ्गिणः। वज्रबाहुः ॥ सः। इत्। ॐ इति। राजा। क्षयति। चर्षणीनाम्। अरान्। न। नेमिः। परि। ता। बभूव ॥१५॥

अन्वय - वज्रबाहुः इन्द्रः यातः अवसितस्य शमस्य शृङ्गिणः च राजा। स इत् उ चर्षणीनां राजा क्षयति। नेमिः अरान् न ता परिबभूव ॥१५॥

व्याख्या - वज्रबाहु इन्द्र ने शत्रुओं को मारकर स्थावर, जंगम, सींग रहित और सींग धारी पशुओं के स्वामी बने अथवा राजा बनें। और वह इन्द्र ही मनुष्यों का राजा बनकर के निवास किया। ऊपर कहे गए सभी जीवों के चारों और व्याप्त होकर के रहता है। वहाँ पर उदाहरण है। जिस प्रकार पहिए के अरे नेमी में स्थित रहते है उसी प्रकार इंद्र ने सबको धारण किया।

सरलार्थ - इस मन्त्र में इन्द्र की स्तुति की गई है की वज्रधारी इन्द्र ने स्थाव, जङ्गम शान्त प्राणियों और सींग धारी प्राणियों का राजा है। वह ही मनुष्यों का सम्राट् होकर के निवास करता हुआ

टिप्पणियाँ

उनकी रक्षा भी करता है। किस प्रकार रक्षा करता है। कहते हैं की जिस प्रकार अरे रथचक्र की रक्षा करता है उसी प्रकार राजा भी मनुष्यों की रक्षा करता है।

व्याकरण

- **यातः** – या–धातु से क्विप तुक् आगम होने पर यातृ यह रूप बना। उसका षष्ठी एकवचन में यातः यह रूप बना।
- **अवसितस्य** – अवपूर्वक साधातु से क्तप्रत्यय करने पर अवसित यह रूप बना। उसका षष्ठी एकवचन में अवसितस्य यह रूप बना।
- **शृङ्गिणः** – शृङ्गशब्द से इनप्रत्यय करने पर शृङ्गिन् यह हुआ उसका षष्ठी एकवचन में शृङ्गिणः यह रूप बना।
- **क्षयति** – क्षि–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में क्षयति यह रूप बना।
- **परिबभूव** – परि पूर्वक भू धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में परिबभूव यह रूप बना।

पाठगत प्रश्न 16.3

1. पणिनाम असुर ने गायों को छुपाकर के क्या किया?
2. अकिरत् यहाँ पर किस सूत्र से इकार हुआ?
3. जिग्ये यहाँ पर किस सूत्र से अभ्यास से उत्तर अकार ककी कुत्व हुआ?
4. जघ्नुषः यह रूप कैसे बना?
5. सर्तवे यहाँ पर किससे आद्युदात्त हुआ?
6. यातारम् यहाँ पर धातु क्या है?
7. यातारम् इसका क्या अर्थ है?
8. अश्व्यः किस सूत्र से यत्प्रत्यय हुआ?
9. अतरः यह किस धातु का किस लकार में रूप है?
10. श्येन पक्षी के साथ किसकी तुलना की?

16.2 इन्द्र का स्वरूप।

वेद में अन्तरिक्ष स्थानीय सर्वश्रेष्ठ देव इन्द्र हैं। लौकिक मनुष्यों के समान उसके भी हाथ पैर शिर–इत्यादि का यहाँ पर वर्णन किया गया है। उसका उदर सोमरस से परिपूर्ण सरोवर के समान है। इन्द्र का प्रिय पेयसोम है, अतः वह सोमपा कहलाता है। जन्मदिन के आरम्भ से ही इसकी माता ने सोमरस इनको पिलाया था। यह सोमरस में ऐसे आसक्त थे की एक बार सोम के लिए

चोरी भी की। सोमपान के बाद इन्द्र महान कार्य भी अनायास से ही सिद्ध कर देते है। वृत्र युद्ध के समय में इन्द्र ने सोमपूर्ण तीन सरोवर को रिक्त कर दिया था।

इन्द्र का मुख्य अस्त्र वज्र है, उसका निर्माता त्वष्टा कहलाता है। वज्र को धारण करने से ही यह देव इन्द्र वज्रिन्, वज्रबाहु, वज्रहस्त-इत्यादिनाम से जाना जाता है। इन्द्र का जन्म अस्वाभाविकरूप से हुआ ऐसा ऋग्वेद में वर्णन है। जन्मसमय में वह अपनी माता को मारकर उसकी भुजाओं के मूल से बाहर आना चाहता था। जन्म के बाद ही इसने अपना अपूर्व पराक्रम को दिखाया। इसके पराक्रम से पृथिवी आकाश में कम्पन हुआ और देव भी भयभीत हुए। वैसे भी -

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य सुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

- (ऋग्वेद॥२.१२.१)

ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में जो विराट् पुरुष का वर्णन प्राप्त हुआ, उसके मुख से इन्द्र उत्पन्न हुआ ऐसा पुरुषसूक्त से जाना जाता है।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च, प्राणाद्वायुरजायत॥

- (ऋग्वेद॥१०.९०.१३)

इन्द्र का भोजन बैल का मांस है। अग्नि के द्वारा पका हुआ तीस भैसों का मांस भी इसके भोजन के रूप में उसका वर्णन प्राप्त होता है। इन्द्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से अथवा परोक्षरूप से सभी देवों के साथ है। मरुत् इन्द्र का मित्र है। मरुत् हमेशा इन्द्र की युद्ध में सहायता करता है, अतः इन्द्र मरुत्सखा मरुत्वान् इत्यादिनाम से भी जाना जाता है। सूक्त में अग्नि के साथ इन्द्र की भी स्तुति प्राप्त होती है। विष्णु-वरुण-वायु-वृहस्पति-इत्यादि के साथ भी इन्द्र की स्तुति दिखाई देता है। इन्द्र की पत्नी शची थी जो शक्ति का प्रतीक कहलाती है। अग्नि इन्द्र का जुड़वाँ भाई कहलाता है। पूषा भी इसका भाई कहलाता हैं। इसके पिता द्यौ है। इन्द्र हाथ में हमेशा सुनहरे अथवा रक्तिम वस्त्र को धारण करते हैं। इसका रथ तथा घोड़े का निर्माता ऋभु हैं। यह इन्द्र अस्त्रों के मध्य-मध्य में बाण को भी धारण करता है।

इन्द्र की महानता बहुत ही विशाल है। द्युलोक-अन्तरिक्षलोक-पृथ्वीलोक मिलकर के भी उतना यश प्राप्त नहीं कर सकते जितना यश इन्द्र का है। इन्द्र ने कम्पन इस पृथिवी को स्थिर किया, उड़ते हुए पर्वत को भी स्थिर किया, आकाश और पृथिवी को विस्तृत करती है। इन्होने ही वृत्र को मारा, इसलिए यह वृत्रघ्न, वृत्रहा इत्यादिनाम से भी जाने जाते हैं। इन्होंने ही पणिगण को मारकर गायों को छुड़ाया। इसी के अधीन ही सभी घोड़े, गाय रथ और दिशा है। यह इन्द्र सूर्य का और उषा का पिता, और जल को बरसाने वाले हैं।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावः, यस्य ग्रामा यस्य विश्वेरथासः।
य सूर्य य उषसं जजान, यो अपां नेता स जनास इन्द्रः॥

- (ऋग्वेद॥२.१२.७)

इन्द्र की सहायता के बिना युद्ध में विजय प्राप्त करना असम्भव है, अतः युद्ध में योद्धा इसी का ही आवाहन करते है। इन्द्र ने ही दो पत्थरों के टुकड़ों से अग्नि को उत्पन्न किया।

इस प्रकार इन्द्र का लाभ होने पर भी उसका प्रकृत स्वरूप विषय में मतभेद है। यह इन्द्र कौन है इस विषय में जैसे हमारे देश के विद्वानों में संदेह है, वैसे ही विदेशी विद्वानों में भी अत्यधिक सन्देह विद्यमान है।

16.3 इन्द्रसूक्त का सार

इन्द्र ऋग्वेद का सबसे अधिक लोकप्रिय देव है। निरुक्तकर्ता यास्क के अनुसार इन्द्र अन्तरीक्ष स्थानीय देव है। इस इन्द्रसूक्त में इन्द्र के शौर्ययुक्त कार्यों का वर्णन है। वह मेघ को मारकर जल को भूमि पर गिराता है, तथा पर्वतों के मध्य में नदी को प्रवाहित करता है। पर्वत में स्थित मेघों को पीटने के लिए त्वष्टा ने इन्द्र के लिये गर्जना युक्त वज्र का निर्माण किया। उस वज्र के द्वारा मेघ के भिन्न होने पर गाय जैसे अपने बछड़े की और भागती है, वैसे ही जल भी अपने वेगसहित नीचे समुद्र की ओर जाना प्रारम्भ करती है। बैल के समान आचरण करते हुए इन्द्र में त्रिकद्रुक संज्ञकयाग में अभिषिक्त सोम को पिया। उसने वज्र को स्वीकार करके मेघो के प्रथम मेघ को मारा। मेघों के प्रथम मेघ को जब मारा, उसके बाद माया से युक्त असुरों की माया को भी मारा था। तब सूर्य और उषा को उत्पन्न करके किसी भी शत्रु को प्राप्त नहीं किया है। इन्द्र ने राक्षसों में प्रथम वृत्रासुर का आवाहन किया। उस वृत्र को तथा उससे अधिक शक्तिशाली राक्षस का नाश किया। कुल्हाड़ी से छिन्न वृक्षशाखा के समान वृत्रासुर को पृथिवी की गोद में उसको गिराया। अभिमान में आकर के वृत्र ने इन्द्र को युद्ध में आमन्त्रित किया। इन्द्र ने वज्र से वृत्र के हाथ पैर को काट दिया। उस वृत्र ने भी इन्द्र के साथ युद्ध में प्रवर्तित हुआ। उस इन्द्र ने उसके कन्धे के ऊपर वज्र से प्रहार किया। इस प्रकार से वृत्र को इन्द्र ने मारा। वर्षाकाल में जल जैसे नदी का उल्लंघन करके सभी और फैल जाता है, वैसे ही वृत्र के द्वारा रोका गया जलवृत्र का उल्लङ्घन करके सभी और फैल गया। वृत्र की माता जब अपने पुत्र की रक्षा के लिए प्रयत्न किया तब वह भी इन्द्र के द्वारा मारी गई। इस प्रकार से जल उसके शरीर को व्याप्त किया।वृत्र को मारकर इन्द्र ने बन्द जलमार्ग को खोल दिया। आदि में वृत्र से प्रहार करने पर इन्द्र में भय से देवो के घोड़े की पुच्छतुल्य हुए। परन्तु बाद में इन्द्र ने सोम को जीतकर, तथा सात नदियों के जल को मुक्त किया। वृत्र के द्वारा सृजित विद्युत् मेघ अथवा वज्रइन्द्र को रोकने में समर्थ नहीं हुए। और भयभीत होकर के निन्यानवे (९९) नदियों को और अन्तरिक्ष को बाज की तरह तैरकर चली गई। वज्रधारी वह सभी राजाओं का, सभी मनुष्यों का शासक हुए। जैसा आरा रथचक्र की रक्षा करता है, वैस ही सभी का राजा इन्द्र हमारी रक्षा करो।

पाठ का सार

ऋग्वेद के प्रथममण्डल में विद्यमान इन्द्रसूक्त में पन्द्रह मन्त्र हैं। वहाँ प्रथम मन्त्र में इन्द्र के पराक्रम युक्त कार्य के विषय में कहा गया है। जैसे मेघ को मारना, वर्षा करना इत्यादि। द्वितीय मन्त्र में

विश्वकर्मा गर्जना युक्त वज्र का निर्माण किया। उस मेघ से भिन्न जल समुद्र की ओर गया। तृतीय मन्त्र में इन्द्र का सोमपान विषय में कहा गया है। चतुर्थ मन्त्र में इन्द्र से उत्पन्न किया हुआ इस विषय में कहा गया है। इन्द्र ने कपटी असुरों को मारा, सूर्य उषःकाल और आकाश को उत्पन्न किया। पञ्चम मन्त्र में कहा की इन्द्र ने बड़े वज्र से वृत्र को मारा। षष्ठ मन्त्र में कहा की मिथ्याभिमानी वृत्र ने यद्यपि इन्द्र को युद्ध के लिए आवाहन किया, फिर भी स्वयं ही इन्द्र से मारा गया है। सप्तम मन्त्र में वृत्र का युद्ध के बाद क्या क्या हुआ यह दिखाया गया। वहाँ पर हाथ रहित और पैर से रहित वृत्र को इन्द्र ने मारा। और वृत्र भूमि पर गिरा। इसी प्रकार अष्टम मन्त्र में कहा गया की इन्द्र ने युद्ध के बाद क्या कार्य किया। नौवें मन्त्र में वृत्र की माता कैसे मृत्यु को प्राप्त हुई इस विषय में कहा गया। दसवें मन्त्र में युद्ध के बाद वृत्र का क्या हुआ इस विषय में कहा गया।

एकादश मन्त्र में इन्द्र ने वृत्र द्वारा अवरुद्ध किये जल को कैसे प्रकाशित किया इस विषय में कहा गया है। द्वादश मन्त्र में कहा की इन्द्र ने गाय, सोम, प्रवहित नदी को मुक्त किया। त्रयोदश मन्त्र में इन्द्र वृत्र के युद्धविषय में कहा गया। वहाँ इन्द्र ने वृत्र पर कैसे विजय प्राप्त की यह भी बताया। चतुर्दश मन्त्र में इन्द्र के भयविषय में कहा। परन्तु यह किसी अनुयायी का मत है। पञ्चदश मन्त्र में इन्द्र का स्वामी भाव को प्रकट किया। और प्राणियों के लिए उसके कर्तव्य भी प्रकाशित किये। इस प्रकार सम्पूर्ण इन्द्रसूक्त में इन्द्र का पराक्रम, इन्द्र वृत्र का युद्ध, और इन्द्र की महानता का वर्णन किया।

पाठांत प्रश्न

1. इन्द्रसूक्त का सार लिखो।
2. इन्द्र का पराक्रम युक्त कार्यों का वर्णन करो।
3. अपादहस्तो अपृतन्यदित्यादिमन्त्र को पूर्ण करके सायणभाष्य के अनुसार व्याख्या करो।
4. इन्द्रस्य स्वामित्वम् इन्द्रो यतोवसितस्य... इत्यादि मन्त्र के अनुसार से व्याख्या करो।
5. कथं वृत्रं वृत्रमातरं च इन्द्रः हतवान् इसकी मन्त्र के अनुसार से व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

16.1

1. हिरण्यस्तूप ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, और इन्द्र देवता है।
2. मेघ को मारा।

टिप्पणियाँ

3. पर्वतो की संबन्धि प्रवहणशीला नदियों को दो तटो द्वारा प्रवाहित किया।
4. गर्जना करना।
5. आश्रित।
6. बैल के समान आचरण करना।
7. अच्छी प्रकार से नाश किया।
8. विपूर्वक व्रश्च् धातु से क्तप्रत्यय करने परविवृक्ण यह रुप है। उसका प्रथमा बहुवचन में वैदिक रूप विवृक्णा है।
9. वधः येन स वधः।
10. विशेष रूप से छिन्न।

16.2

1. इन्द्रः शत्रुर्घातको यस्य सः।
2. अपनी अति पीड़ित सेना प्रजा को।
3. बन्धे हुए बैल के समान निर्बल पुरुष।
4. हाथ पैर से रहित।
5. पादेषु इस अर्थ में पाद शब्द को पद आदेश होने पर पत्सु यह हुआ इसके होने पर सप्तमी अर्थ में तसिल्प्रत्यय करने पर विभक्तिलोप अभाव में पत्सुतः यह रूप हुआ। पत्सुतः शेते इस अर्थ में क्विप करने पर पत्सुतःशीः यह रूप है।
6. जल को नीचे गिरा देती है।
7. वह सेना खण्डित बल होकर।
8. षूङ् प्राणिगर्भविमोचने धातु है।
9. अधिकरण अर्थ में।
10. महिम्ना लौकिक रूप है।

16.3

1. गुफा में ले जाकर के गुफा का द्वार बन्द कर दिया।
2. घ्त इद्-धातोः से।

3. सन्लिटोर्जेः से।

4. हन्-धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर जघन्वस् इसका षष्ठी एकवचन में।

5. नित्त्व होने से।

6. यर् धातु।

7. मारना।

8. भवे छन्दसि।

9. तध्-धातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन में।

10. इन्द्र की।

॥ सोलहवां पाठ समाप्त ॥

टिप्पणियाँ

17

हिरण्यगर्भ सूक्त

ऋषियों ने तप तथा दिव्य चक्षुओं से जो ज्ञान प्राप्त किया और जो शब्द राशि का संग्रह किया, वह वेद है। इन्द्रियों के वैकल्य के कारण इन्द्रियजन्य ज्ञान में भ्रम, प्रमाद आदि उत्पन्न होते हैं परन्तु इन्द्रियातीत ज्ञान किसी दूषित इन्द्रिय से नहीं होता है। अत: वह ज्ञान भ्रमप्रमाद आदिदोष वर्जित ही होता है। अत: वैदिक ज्ञान आज भी भ्रम रहित है। यही आश्चर्य है कि कैसे उन ऋषियों ने प्राचीन काल में यह ज्ञान प्राप्त किया। ये चार भेदों में भिन्न वेद ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद हैं। उनमे ऋग्वेद में देवता स्तुति है। उसी का अंशभूत यह हिरण्यगर्भ सूक्त यहाँ वर्णित है।

हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋ.वे. म-१०.१२१) इस पाठ में पढेंगे। ऋग्वेदीय देवता स्वरूप के अध्ययनकाल में स्पष्ट ही हो जाता है कि ऋग्वेद में एक ही परमसत्ता की स्तुति विविध नामों से की गई है। यह किस लिए होता है? यह प्रश्न उठने पर कह सकते हैं कि सभी देवों के गुणसाम्य से। हिरण्यगर्भ का स्वरूप भी इस तत्त्व का अपवाद भूत नहीं है। बहुत युग पूर्व सम्पूर्ण सृष्टि एक महान जल समूह से व्याप्त थी। उससे देवता स्वरूप तथा बीजभूत हिरण्यगर्भ नूतन सृष्टि के लिए आविर्भूत हुए। हिरण्यगर्भ ही प्रजापति नाम से विख्यात है। वैदिक ऋषि अपने उपास्य देव को सदैव पूजते थे। वे सर्वकार्य सिद्धि के लिए अपने उपास्यदेव को बुलाते हैं। वे प्रजापति को बुलाते हुए कहते हैं हे सत्यधर्मन् प्रजापति, तूने पृथिवी तथा द्युलोक को उत्पन्न किया, आनन्दकारी चन्द्रमा और समस्त जल समूह को उत्पन्न किया, अत: हमें पीडा मत दे। हे प्रजापति, अन्य किसी ने इस समग्र उत्पन्न पदार्थ को व्याप्त नहीं किया। हम जिस इच्छा को आधार मानकर हवि देते हैं वह इच्छा पूर्ण हो। इस प्रकार प्रजापति तथा हिरण्यगर्भ की पूजनीयता थी। तद्विषयक ही यह सूक्त है। इस सूक्त का हिरण्यगर्भ प्राजापति ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, प्रजापति देवता है। ऋग्वेदीय यह सूक्त दशम मण्डल के अन्तर्गत आता है। और इसमें दस ऋचाएं हैं। अत: ये दशर्च सूक्त है।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप सक्षम होंगे :

- वेदों में विद्यमान दार्शनिक सूक्त का परिचय प्राप्त करने में;
- हिरण्यगर्भ सूक्त के मूल मन्त्र सस्वर जानने में;
- हिरण्यगर्भ सूक्त का पदपाठ जानने में;
- हिरण्यगर्भ सूक्त के मन्त्रों का अन्वय करने में;
- सायणाचार्य के मतानुसार हिरण्यगर्भ सूक्त की व्याख्या पढ़ने में;
- ऋजुता से हिरण्यगर्भ सूक्त के अर्थ का अधिगम करने में;
- हिरण्यगर्भ सूक्त के कुछ शब्दों का व्याकरण जानने में;
- हिरण्यगर्भ का स्वरूप जानने में;
- हिरण्यगर्भ की महिमा जानने में;
- वैदिक समाज के चिन्तन का उच्चतम स्तर को जान पाने में।

17.1 मूल पाठ (हिरण्यगर्भसूक्तसमग्र।)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥१॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥२॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥५॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥६॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥७॥

टिप्पणियाँ

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम॥८॥

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥९॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥१०॥

17.2 मूलपाठ

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥१॥

पदपाठः – हिरण्यऽगर्भः। सम्। अवर्तत। अग्रे। भूतस्य। जातः। पतिः। एकः। आसीत्। सः। दाधार। पृथिवीम्। द्याम्। उत। इमाम्। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥१॥

अन्वयः – हिरण्यगर्भः अग्रे समवर्तत, जातः भूतस्य एकः पतिः आसीत्। सः इमां पृथिवीम् उत् द्यां दाधार, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

व्याख्या – हिरण्यगर्भ हिरण्मय अण्डे का गर्भ भूत प्रजापतिर्हिरण्यगर्भ है। तथा तैत्तिरीयकं– 'प्रजापतिर्वै हिरण्यग....र्भः प्रजापतेरनुरूपत्वाय' (तै. सं. ५. ५ .१. २)। अथवा हिरण्मय अण्डा गर्भवति के उदर में हैं अतः यह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ कहा जाता है। सबसे पहले केवल परमात्मा वा हिरण्यगर्भ थे। उत्पन्न होने पर वे सारे प्राणियों के अधीश्वर थे। उन्होंने ही इस पृथिवी और आकाश को अपने अपने स्थानों में स्थापित किया। उन ''क'' नाम वाले प्रजापति देवता की हम हवी के द्वारा पूजा करेंगे अथवा हम हव्य द्वारा किन देवता की पूजा करें।

सरलार्थ – प्रजापति प्रथम उत्पन्न देव हैं। उत्पन्न होते ही जगत के स्वामी हो गये। उन्होंने द्युलोक और विस्तीर्ण पृथिवी को धारण किया। उनको छोड़कर किसको हवि के द्वारा पूजे अथवा प्रजापति को हवि द्वारा पूजें।

व्याकरण

- **समवर्तत** – सम्पूर्वक वृद्–धातू से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में समवर्तत रूप सिद्ध होता है।
- **दाधार** – धा–धातु से लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन में दाधार रूप सिद्ध होता है।
- **विधेम** – पूजार्थक विध्–धातू से विधिलिङ् लकार उत्तमपुरुष बहुवचन में विधेम रूप सिद्ध होता है।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥२॥

पदपाठः - **यः। आत्मऽदाः। बलऽदाः। यस्य। विश्वे। उपऽआसते। प्रऽशिषम्। यस्य। देवाः। यस्य। छाया। अमृतम्। यस्य। मृत्युः। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥२॥**

अन्वयः - यः आत्मदाः बलदाः प्रशिषं विश्वे देवाः उपासते। यस्य छाया अमृतं, यस्य छाया मृत्युः, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

व्याख्या - जो प्रजापति आत्मदा अर्थात आत्मा का प्रदाता है। सभी आत्मा उस परमात्मा से उत्पन्न होती हैं। जैसे अग्नि के सानिध्य से द्विस्फुलिङ्ग उत्पन्न होते हैं वैसे ही जो आत्मा का शोधयिता है। 'दैप् शोधने' धातु से 'आतो मनिन्...' से विच् प्रत्यय। बलदा बल का दाता अथवा शोधयिता। और जिसके प्रकृष्ट शासन आज्ञा का विश्व के सभी प्राणि उपासना प्रार्थना अथवा सेवन करते हैं। तथा देव भी जिसके प्रशासन की उपासना करते हैं। जिनकी छाया अमृत रूपिणी है और जिनके वश में मृत्यु है। उन ''क'' नामवाले प्रजापति देवता की हम हवी के द्वारा पूजा करेंगे अथवा हम हव्य द्वारा किन देवता की पूजा करें।

कस्मै के अनैक अर्थ किये हैं व्याख्याकारों ने।

सायणाचार्यके मतमें अर्थ-

१. यहाँ किं शब्द अनिर्ज्ञात स्वरूप है। अतः उसका अर्थ-प्रजापति है।

२. प्रजापति सृष्टी के लिए कामयमान है। अतः प्रजापति की आख्या क है।

३. किम् का अर्थ सुख होता है। सुखरूप वह प्रजापति है। अतः उसे क कहा जाता है।

४. ऐतरेय ब्राह्मण में आख्यान है। वहाँ इन्द्र ने वृत्र को मारने के लिए प्रजापति से शक्ति माँगी। इस प्रकार इन्द्र के द्वारा प्रजापति पूजे गये। तब प्रजापति ने कहा -मेरा महत्त्व तुझे देकर मैं कः कैसे होऊंगा। तब इन्द्र ने प्रत्युत्तर दिया की यदि यह कहते हो कि मैं कः होऊ। तो वैसा ही हो। अतः क प्रजापति की आख्या है।

जब क नाम होता है तो उसकी सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है। सर्वनाम संज्ञा के अभाव में कस्मै ऐसा कस्मैयुक्त रूप नहीं होता है। परन्तु यदि किम् सर्वनाम का ही रूप है कः तो यह किं शब्द है। तब सर्वनामत्व से स्मै भाव सिद्ध होता है।

जब क यौगिक होता है तब स्मै योग व्यत्यय के द्वारा द्रष्टव्य है। अर्थात् वैदिक प्रयोग है। अतः लौकिक नियम का व्यत्ययः होता है।

कस्मै में चतुर्थी है। कर्ता अपनी क्रिया और कर्म के द्वारा जिसको अभिप्रैत करता है वह सम्प्रदान होता है। यहाँ कौनसी क्रिया है। क्रिया का ग्रहण करना चाहिए। विधेम क्रियापद है।

टिप्पणियाँ

सरलार्थ – जो हिरण्यगर्भ प्राणदाता बलदाता है, जसके आदेश का पालन सब देव करते हैं, जिसकी छाया अमृत है, और जिसकी छाया मृत्यु है, उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

व्याकरण

- **आत्मदा** – आत्मन्–उपपद पूर्वक दा–धातु से विच्प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में आत्मदा रूप बनता है।
- **बलदाः** – बल उपपद पूर्वक दा–धातु से विच्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में बलदाः रूप सिद्ध होता है।
- **उपासते** – उपपूर्वक आस्–धातू से लट्लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुष बहुवचन में उपासते रूप सिद्ध होता है।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥३॥

पदपाठः – यः। प्राणतः। निऽमिषतः। महिऽत्वा। एकः। इत्। राजा। जगतः। बभूव। यः। ईशे। अस्य। द्विऽपदः। चतुःऽपदः। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥३॥

अन्वयः – यः महित्वा प्राणतः निमिषतः जगतः एकः इत् राजा बभूव, यः अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

व्याख्या – जो हिरण्यगर्भ प्राण से प्रश्वसत है। 'अन प्राणने' धातु 'शतुरनुमः...' से विभक्ति को उदात्त। दर्शनेंद्रिय वाले। जगत जङ्गम के प्राणिजात के महत्माहात्म्य से एक अद्वितीय राजा ईश्वर हिरण्यगर्भ है। इस परिदृश्यमान दो पैर युक्त मनुष्य तथा चार पैर युक्त गवाश्वादि का जो प्रजापति है। उन ''क'' नाम वाले प्रजापति देवता की हम हवी के द्वारा पूजा करेंगे अथवा हम हव्य द्वारा किन देवता की पूजा करें।

सरलार्थ – जो हिरण्यगर्भ अपनी महिमा से श्वास प्रश्वास ग्रहण करने वाले दर्शनेंद्रिय और गतिशील प्राणिजगत का एका की राजा हुआ। और दो पैर वाले और चार पैर वाले विशिष्ट प्राणियों का ईश्वर है उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

व्याकरण

- **प्राणतः** – प्रपूर्वका अन्–धातु से शतृप्रत्यय के षष्ठी एकवचन में प्राणतः रूप सिद्ध होता है।
- **निमिषतः** – निपूर्वकमिष–धातु से शतृ प्रत्यय के षष्ठ्येकवचन में निमिषतः रूप सिद्ध होता है।

- **ईशे** – ईश्–धातु से लट्लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में ईशे रूप सिद्ध होता है। यह वैदिक रूप है। लौकिक में तो इष्टे रूप बनता है।
- **बभूव** – भू धातु से तिप् णल्लिट् (पा०सू० ३.१.१९३) प्रत्यय पूर्व को उदात्तत्व।
- 'ईश ऐश्वर्य'। अदादिक अनुदात्तेत् धातु। श्लोपस्त आत्मनेपदेषुश से अनुदात्तेत्त्व से ल सार्वधातुक अनुदात्तत्व धातुस्वर।
- द्वौ पादौ यस्य स द्विपात्। 'सङ्ख्यासुपूर्वस्य' (पा०सू० ५. ४. १४०) से पाद के अन्त का लोप समासान्त होने से। भसंज्ञा में 'पाद पत्' (पा०सू० ६. ४.१३०) से पद्भाव।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥४॥

पदपाठः – यस्य। इमे। हिमऽवन्तः। महित्वा। यस्य। समुद्रम्। रसया। सह। आहुः॥ यस्य। इमाः। प्रऽदिशः। यस्य। बाहू इति। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥४॥

अन्वयः – यस्य महित्वा इमे हिमवन्तः रसया सह समुद्रं यस्य आहुः यस्य इमाः प्रदिशः यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।

व्याख्या – हिम जिसमें है वह हिमवान्। उससे बहुवचनान्त में सभी पर्वत लक्षित होते हैं। हिमवन्तः हिमवदुप लक्षिताः इमे दृश्यमानाः सर्वे पर्वताः यस्य प्रजापतेः महित्वा महत्त्वं माहात्म्यमैश्वर्यमिति आहुः। तेन सृष्टत्वात्तद्रूपेणावस्थानाद्वा। तथा रसया। रसो जलम्। तद्वती रसा नदी। अर्शआदित्वादच्। जातावेकवचनं रसाभिर्नदीभिः सह समुद्रम्। पूर्ववदेकवचनम्। सर्वान् समुद्रान् यस्य महाभाग्यमिति आहुः कथयन्ति सृष्ट्यभिज्ञाः। यस्य च इमाः प्रदिशः प्राच्यारम्भा आग्नेयाद्याः कोणदिश ईशितव्याः। तथा बाहुः। वचनव्यत्ययः। बाह्वो भुजाः। भुजवत्प्राधान्ययुक्तः प्रदिशश्च यस्य स्वभूताः। तस्मै कस्मै इत्यादि समानं पूर्वेण।

सरलार्थ – जिनकी महिमा से हिम आच्छादित पर्वत, नदियाँ और सागर उत्पन्न हुए हैं। जिनकी महिमा से सृष्टि सागर धरित्री कही जाती है और दिशा जिनकी बाहुस्वरूप है उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

व्याकरण

- **हिमवन्तः** – हिम शब्द से मतुप्प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में हिमवन्तः रूप बनता है।
- आहुः – ब्रूञ्–धातु से लट्लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में आहुः रूप बनता है।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥५॥

पदपाठः – येन। द्यौः। उग्रा। पृथिवी। च। दृळ्हा। येन। स्व१ रिति स्वः। स्तभितम्। येन। नाकः॥ यः। अन्तरिक्षे। रजसः। विऽमानः। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥५॥

टिप्पणियाँ

अन्वयः – येन उग्रा द्यौः पृथिवी च दृळ्हा, येन स्वः स्तभितं येन नाकः, यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

व्याख्या – जिस प्रजापति द्वारा द्यौ, अन्तरिक्ष उग्र अर्थात्विशेष दीप्तिमान है और भूमि को जिसने दृढ अर्थात् स्थिर किया। स्वर्ग को जिसने स्तब्ध किया है। क्योंकि नीचे नहीं है अतः ऊपर ही अवस्थ समझना चाहिए। 'ग्रसितस्कभितस्तभित...' इति निपात्यते। स्वर्गलोक और आदित्यलोक जिसने अन्तरिक्ष में ठहराए हैं और जो अन्तरिक्ष में जल का निर्माता है, उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

सरलार्थ – जिसने द्युलोक को उग्र किया और पृथिवी को दृढ अर्थात् स्थिर किया। स्वर्गलोक और आदित्यलोक जिससे ठहरे हुए हैं। जो अन्तरिक्ष में जल को बनाकर धारण करने वाला है द्य उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

व्याकरण

- **दृळ्हा** – दृह्-धातु क्तप्रत्यय और टाप् करने पर दृळ्हा रूप बनता है।
- **स्तभितम्** – स्तम्भ्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर स्तम्भितम् रूप बनता है।
- **विमानः** – विपूर्वक मा-धातु से ल्युट् करने पर विमानः रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. हिरण्यगर्भ सूक्त का ऋषि, छन्द और देवता कौन है?
2. हिरण्यगर्भ किसको कहते है?
3. दाधार इसमें लिट्लकार क्यों हुआ?
4. विधेम ये रूप कैसे सिद्ध होगा?
5. प्रशिषम् का क्या अर्थ है?
6. अमृतम् अमृतत्वम् किसकीओर निर्देश कर रहा है?
7. अमृतम् इत्यत्र मृत् में कौनसा स्वर है? (सही उत्तर चुने – उदात्त, अनुदात्त, स्वरित।)
8. बभूव के भू- में कौन सा स्वर है? (सही उत्तर चुने – उदात्त, अनुदात्त, स्वरित।)
9. आहुः रूपकिस धातु का है?
10. दृळ्हा शब्दका अर्थ क्या है?

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥६॥

पदपाठः - यम्। क्रन्दसी इति। अवसा। तस्तभाने इति। अभि। ऐक्षेताम्। मनसा। रेजमाने इति॥ यत्र। अधि। सूरः। उत्ऽइतः। विऽभाति। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥६॥

अन्वयः - अवसा तस्तभाने मनसा रेजमाने क्रन्दसी यं मनसा अभ्यैक्षेताम्, यत्र अधि सूरः उदितः विभाति, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

व्याख्या - प्रजापति ने क्रन्दन करते हुए द्युलोक और पृथिवी लोक की रक्षा की। कहा है - यदरोदीत्तदनयो रोदस्त्वम् (तै. ब्रा. २. २. ९. ४)॥ जिस प्रजापति के आधार पर सूर्य उदय प्राप्तकर प्रकाशित होता है। उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

सरलार्थ - प्राणियों की रक्षा के लिए स्थिर किया गया तथा मन के कम्पायमान होने पर द्युलोक और पृथिवी लोक जिसको देखते हैं। जिसके कारण सूर्य उदित होकर चमकता है। उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

व्याकरण

- **क्रन्दसी** - क्रन्द्-धातु से असुन् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग के प्रथमाद्विवचन में क्रन्दसी रूप बनता है।
- **अवसा** - अव्-धातु से असुन्प्रत्यय तृतीया एकवचन में अवसा रूप बनता है।
- **तस्तभाने** - स्तम्भ्-धातु से कानच् और टाप् होने पर प्रथमाद्विवचन में तस्तभाने रूप बनता है।
- **रेजमाने** - रेज्-धातु से कानच्प्रत्यय और टाप् होने पर प्रथमाद्विवचन में रेजमाने रूप बनता है।
- **अभ्यैक्षेताम्** - अभिपूर्वक ईक्ष् दर्शने धातु से लङ् लकार के प्रथमपुरुष द्विवचन में अभ्यैक्षेताम् रूप बनता है।

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥७॥

पदपाठः - आपः। ह। यत्। बृहतीः। विश्वम्। आयन्। गर्भम्। दधानाः। जनयन्तीः। अग्निम्॥ ततः। देवानाम्। सम्। अवर्तत। असुः। एकः। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥७॥

अन्वयः - यत् ह गर्भ दधाना अग्निं जनयन्तीः बृहती आपः विश्वं आयन् ततः देवानाम् एकः असुः समवर्तत, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

व्याख्या - बृहतीः बृहत्यो=महान। जस् करने पर 'वा छन्दसि' से पूर्वसवर्णदीर्घ। 'बृहन्महतोरुपसङ्ख्यानम्' से ङीप् को उदात्त। अग्निम्-ये केवल उपलक्षण है। अग्नि को उपलक्षित करके समस्त भूतपदार्थ

टिप्पणियाँ

उत्पन्न करने के बाद गर्भ से उत्पन्न प्रजापति ने धारण किया। केवल जल ही समस्त जगत् में व्याप्त था। उसके बाद सभी देवादिय प्राणियों का प्राणभूत एक प्रजापति उत्पन्न हुआ। जो गर्भ को धारण करता हुआ विश्व को अपने अंदर अवस्थित करता है। उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

सरलार्थ – बृहत् जलसमूह जब समग्र विश्व में व्याप्त था तब देवों ने गर्भरूप से प्रजापति को धारण किया और फिर अग्नि के द्वारा समग्र भुवन को बनाया। उससे देवों का प्राणभूत प्रजापति उत्पन्न हुआ।उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

व्याकरण

- **बृहती:** – ये बृहत्य: का वैदिकरूप है।
- **दधाना:** – धा–धातु से शानच्प्रत्यय और टाप् होने पर प्रथमाबहुवचन में दधाना: रूप बनता है।
- **जनयन्ती:** – जन्–धातु से णिच शतृ और ङीप् करने पर प्रथमाबहुवचन में जनयन्ती: रूपद्य जनयन्त्य: इसका वैदिक रूप है।
- **आयन्** – इ–धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में आयन् रूप बनेगा।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम॥८॥

पदपाठ: – य:। चित्। आप:। महिना। परि॒अपश्यत्। दक्षम्। दधाना:। जनयन्ती:। यज्ञम्॥ य:। देवेषु। अधि। देव:। एक:। आसीत्। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥८॥

अन्वय: – दक्षं दधाना: यज्ञं जनयन्ती: आप: य: चित् महिना पर्यपश्यत्, य: देवेषु अधि एक: देव: आसीत्, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

व्याख्या – यज्ञं यज्ञोपलक्षितं विकारजातं जनयन्ती: उत्पादयन्ती: तदर्थं दक्षं प्रपञ्चात्मना वर्धिष्णुं प्रजापतिमात्मनि दधाना: धारयित्री:।ईदृशी: आप:। व्यत्ययेन प्रथमा। अप: प्रलयकालीना: महिना महिम्ना। छान्दसो मलोप: स्वमाहात्म्येन यश्चित् यश्च प्रजापति: पर्यपश्यत् परितो दृष्टवान् य: च देवेष्वधि देवेषु मध्ये देव: तेषामपीश्वर: सन् एक: अद्वितीय: आसीत् भवति। ततं विहाय कं हविषा पूजयेम अथवा प्रजापतिं हविषा पूजयेम।

सरलार्थ – सृष्टि की शक्ति का धारक, सृष्ट्युत्पत्ति रूप यज्ञ के उत्पादक जलसमूह जो भूमिरूप में दिख रहा है, जो देवों का अद्वितीय स्वामी है, उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

व्याकरण

- **महिना** – ये महिम्ना का वैदिक रूप है।
- **दधानाः** – दधातेर्हतौ शानच। 'अभ्यस्तानामादिः' से आद्युदात्त हुआ।
- **आसीत्** – अस्तेश्छान्दसो लङ्। 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (पा०सू० ७. ३. ९६) से इटागम।
- **आपः** – अपः का ये द्वितीयाबहुवचन में वैदिक रूप।
- **पर्यपश्यत्** – परिपूर्वक दृश्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में पर्यपश्यत् रूप।

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥९॥

पदपाठः – **मा। नः। हिंसीत्। जनिता। यः। पृथिव्याः। यः। वा। दिवम्। सत्यऽधर्मा। जजान॥ यः। च। अपः। चन्द्राः। बृहतीः। जजान। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥९॥**

अन्वयः – नः मा हिंसीत्, यः पृथिव्याः जनिता वा यः सत्यधर्मा दिवं जजान, यः च चन्द्राः बृहती अपः जजान, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

व्याख्या – वो प्रजापति में कष्टों से बचाता है। जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है। 'जनिता मन्त्रे' से णिलोप होता है। जिसने सत्यधर्मा अर्थात् सत्य से आच्छादित जगत् को धारण करता है उस प्रजापति ने अन्तरिक्ष आदि सभी लोकों को उत्पन्न किया। जिसने बृहत् चन्द्र के समान आह्लादित करने वाले उदक या जल को बनाया। उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

सरलार्थ – जो पृथिवी का स्रष्टा है, जो जगत् का धारक है और जिसने इस समस्त लोक को बनाया है। जिसने बृहत् दीप्यमान जलराशि को बनाया। जो हमें कष्टों से दूर करता है। उसको छोड़कर हम किसकी हवि के द्वारा पूजा करें अथवा प्रजापति को हवि के द्वारा पूजें।

व्याकरण

- **हिंसीत्** – हिंस्-धातु से लिङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में हिंसीत् रूप बनता है।
- 'जनी प्रादुर्भावे'। णिच और वृद्धि होकर 'जनीजृष्क्नसुरञ्ज...' से निषेध करके अम्प्रत्यय के अभाव में तिप् और णल् तथा वृद्धि होकर 'लिति' से प्रत्यय से पूर्व के स्थान पर उदात्त हुआ।
- **जनिता** – जन्-धातु से णिच और तृच् होने पर पुंल्लिङ्ग में प्रथमा एकवचन में जनिता रूप बनता है।
- **जजान** – जन्-धातु से लिट् लकार में प्रथमपुरुष एकवचन में जजान रूप। ये वैदिक रूप है। लौकिक रूप तो जनयामास ही है।

टिप्पणियाँ

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥१०॥

पदपाठः - प्रजापते। न। त्वत्। एतानि। अन्यः। विश्वा। जातानि। परि। ता। बभूव॥ यत्कामाः। ते। जुहुमः। तत्। नः। अस्तु। वयम्। स्याम। पतयः। रयीणाम्॥१०॥

अन्वयः - प्रजापते त्वत् अन्यः एतानि ता विश्वा जातानि न परि बभूव, यत् कामाः ते जुहुमः, तत् नः अस्तु, वयं रयीणां पतयः स्याम।

व्याख्या - यहां मन्त्र में प्राजापत्यहवि का वर्णन है 'प्रजापते इत्येषानुवाक्या। और लिखा भी है - प्राजापत्य इळादधः प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः' (आश्व. श्रौ. २. १४) इति। केशनखकीटादिभिः दुष्टानि हर्षींष्यनयैवाप्सु प्रक्षिपेत्। सूत्रितं च- 'अपोऽभ्यवहरेयुः प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः' (आश्व. श्रौ. ३.१०) इति। चौलादिकर्म में भी ये हवि होम के लिए प्रयुक्त होती है। सूत्रितं च- 'तेषां पुरस्ताच्चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयादग्र आयूंषि पवस इति तिसृभिः प्रजापते न त्वदेतान्यन्य इति च' (आश्व. गृ. १.४.४) इति।

सरलार्थ - इस मन्त्र में प्रजापति के बारे में कहा है कि हे प्रजापति ! तुझे छोड़कर अन्य कोई इन समस्त उत्पन्न वस्तुओं में परिव्याप्त नहीं है। जैसी फलप्राप्ति के लिए तुझे उद्देश्य करके यज्ञ करता हूँ वैसा ही फल मुझे प्राप्त होवें। जिससे हम धन ऐश्वर्यों के स्वामी होवें।

व्याकरण

- **जुहुमः** - हु-धातु से लट् लकार के उत्तमपुरुषबहुवचन में जुहुमः रूप।
- **स्याम** - अस्-धातु से विधिलिङ् लकार में उत्तमपुरुषबहुवचन में स्याम रूप।
- **विश्वा** - विश्वशब्द का नपुंसकलिङ्ग में द्वितीयाबहुवचन में विश्वा रूप। ये वैदिक रूप है। लौकिक में विश्वानि रूप बनता है।
- **बभूव** - भू-धातु से लिट् लकार में प्रथमपुरुषएकवचन में बभूव रूप।

पाठगत प्रश्न 17.2

1. अभ्यैक्षेताम् रूप कैसे सिद्ध हुआ?
2. असुः का क्या अर्थ है?
3. बृहतीः का लौकिक रूप क्या है?
4. जनयन्तीः इसका लौकिक रूप क्या है?
5. पर्यपश्यत् इसका क्या अर्थ है?

6. मा नो हिंसीज्जनिता... इत्यादिमन्त्र में पृथिव्याः में पृथिवीशब्द में विभक्त का स्वर क्या होगा। (उचित उत्तर चुनें - उदात्त, अनुदात्त, स्वरित।)

7. जजान रूप कैसे बना?

8. जजान का लौकिक रूप क्या है?

9. आपः का लौकिक रूप क्या है?

10. हिंसीत् किस लकार का में बनता है?

17.3 हिरण्यगर्भसूक्त का सार

ऋग्वेद के दशममण्डल के एक सौ इक्कीसवाँ सूक्त हिरण्यगर्भ सूक्त है। वेद के बहुत से दार्शनिक सूक्तों यह सूक्त अन्यतम है। इस सूक्त का ऋषि हिरण्यगर्भ, छन्द त्रिष्टुप्, प्रजापतिर्देवता है। छन्दोबद्ध और पादबद्धऋङ् मन्त्रों की देवस्तुति देवों को उद्देश्य करके अभीष्ट प्रार्थना आदि मुख्य रूप की गयी है। तथापि कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिनमें उच्चतर दार्शनिकमत सम्यक् रूप से प्रकटित देखा जाता है। ऋग्वेद के दशममण्डल के अन्तर्गत आया हुआ हिरण्यगर्भ सूक्त उनमें प्रमुख है। यह सूक्त प्राचीन काल से प्रतिष्ठा प्राप्त आर्यसमाज और आर्यगण की दार्शनिक चिन्तन धारा के प्रवाह के विषय में प्रामाणिकता है।

ऋग्वेद के देवतातत्त्व में प्रकृति पूजा का आश्रय लिया जाता है। यहाँ देवता विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। परन्तु हिरण्यगर्भ सूक्त की कोई प्राकृतिक भित्ति नहीं है। अपितु मन को दीप्त करने वाले ऋषियों ने गम्भीर ध्यान से जिस जगत और सृष्टी के रहस्य को जाना। वही वेद में हिरण्यगर्भ आदि के रूपमें प्रकटित किया गया।

इस सूक्त में परमात्मा ही जगन्नियामक है, यह स्तुति की गई है। ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त का देवता हिरण्यगर्भ प्रजापति स्वयं है। हिरण्मय अण्ड का गर्भभूत प्रजापति हिरण्यगर्भ है। अथवा हिरण्मय अण्ड गर्भवत् जिसके उदरमें है वह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ है। और वह 'क' शब्द से भी जाना जाता है। यज्ञकर्ता फल की कामना करने वाले यज्ञ करते हैं। और वे जिस फलकी कामना से यज्ञ करते हैं वह फल लाभ हो ऐसी उनकी इच्छा होती है। धन लाभ इतना हो कि जिससे वे धन के स्वामी हो जाए। ऐसी कामना करने वाले याजक कामना पूर्ति के लिए हिरण्यगर्भ को हवि देते हैं और हिरण्यगर्भ की स्तुति करते हुए प्रार्थना करते हैं कि उनकी कामनापूर्ण होवें।

याज्ञिक ऋषियों की स्तुति में हिरण्यगर्भ इस प्रकार वर्णित है -संसार की उत्पत्ति के समय प्रथम हिरण्यगर्भरूप परमात्मा ही आविर्भूत हुआ। अतः समग्र संसार का वो ही एक स्वामी है। जिसने इन पृथिवी और द्युलोक को धारण किया है। परमात्मा से सभी उत्पन्न होते है इसलिए आत्मा और बल का दाता वो ही है। क्योंकि कहा भी है - 'य आत्मदा बलदा'।। जगत् में सभी प्राणी उसी की आज्ञा पालन करते है। वो ही समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाला ईश्वर है।

टिप्पणियाँ

उसी की महिमा से हिमालयादि पर्वत और महाभाग्य, नदी सागरादि बने उसकी भुजाएं सभी दिशाओं में है। उसी ने द्यु, अन्तरिक्ष और भूमि को धारण किया है, स्वर्ग को स्थिर करता है और अन्तरिक्ष में जल निर्मित किया। लोक रक्षार्थ द्यु और पृथिवी उसी से प्रार्थना करते है। हिरण्यगर्भ के आश्रय से ही सूर्य उदित होकर चमकता है। सभी देव उसी के आदेशानुसार कार्य करते है। इसीलिये कहा है कि- ''उपासते प्रशिषं यस्य देवा:''। मृत्यु और मुक्ति का कारण वो ही है। वो सभी प्राणियों का नियन्ता तथा स्थावर और जङ्गमात्मक पदार्थों का स्वामी है।

वियदादिभूतजातं जनयन्त्य: आप: प्रजापतिं धारयन्त्य: विश्वं व्याप्नुवन्। इसीलिये वो समस्त प्राणियों का प्राणभूत है। जल के विकार से सभी को उत्पन्न करता है। जिसके लिए उस दक्ष प्रजापति को स्वयं में धारण करता है। उन्हीं के माहात्म्य से प्रजापति सब ओर देखता है। वो ही देवों का अद्वितीय या एकमात्र ईश्वर है।

इस प्रकाण्ड सृष्टि तत्त्व का मूलभूत् सर्वव्यापी और सुमहान् ईश्वर ही है। वो कभी पुरुषरूप से, कभी हिरण्यगर्भ रूप से कभी प्रजापतिरूप से और कभी ब्रह्मरूप में सुशोभित होता है। वो असत् से रहित,अव्यक्त,प्रकाशित सत्स्वरूप वाङ्मयरूप हिरण्यगर्भ है। वो ही स्रष्टा और सृष्टि का आदिपुरुष है। वो अव्यक्त परब्रह्म का व्यक्तरूप है।

जो भूमि का स्रष्टा है और जो समस्त लोक का जनयिता सत्यधर्मा है द्यु जो चन्द्र, जल आदि का भी उत्पादक प्रजापति है, हमें कष्टों से बचाता है। वर्तमान विश्व और सभी भूत पदार्थों को उसके अलावा कोई नहीं धारण करता है अर्थात् सब में वो ही व्याप्त है द्य वो ही इस सब को धारणकर उत्पन्नकर सकता है।

17.4 हिरण्यगर्भ का स्वरूप

ऋग्वेद के दशवें मण्डल के हिरण्यगर्भसूक्त में प्रजापति के पुत्र हिरण्यगर्भ की विशिष्टता वर्णित है। **हिरण्मयस्य अण्डस्य गर्भभूत: प्रजापति: हिरण्यगर्भ:।** या फिर हिरण्मय अण्ड जो गर्भरूप से जिसके उदर में है, वो सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ है। जिसको क-शब्दसे कहा गया है।इस समस्त माया जगत् का अध्यक्ष ही परमात्मा है। जगत सृष्टि की इच्छा से परमात्मा प्रपञ्च की उत्पत्ति से पहले हिरण्यगर्भ रूप में उत्पन्न हुआ। वो परमात्मा ही हिरण्यगर्भ है। तथापि उपाधिभूतानां वियदादीनां सूक्ष्मभूतानां उत्पत्ति: तस्मात् तदुपहित: अपि उत्पन्न: इति उच्यते। इसप्रकार हिरण्यगर्भ अद्वितीय होते हुए भी समस्त जगत् का ईश्वर है, द्यु और पृथिवी लोक को धारण करता है। क उसके सुखरूप का नाम है या फिर क इन्द्र का वाचक होने से प्रजापति कहलाता है।

मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्ये गीता की पंक्ति यहाँ प्रासङ्गिक है।

परमात्मा से सभी उत्पन्न होते है फिर हिरण्यगर्भ उनमें आत्मसत्ता के संस्थापक रूप में कहलाता है और बल का दाता भी वो ही है। जगत् में सभी प्राणी उसके आज्ञा का पालन करते है। वो ही प्राणियों का उत्पन्न कर्ता ईश्वर है।

उसी की महिमा से हिमालयादि पर्वत और महाभाग्य, नदी सागरादि बने। उसकी भुजाएं सभी दिशाओं में है। उसी ने द्यु, अन्तरिक्ष और भूमि को धारण किया है, स्वर्ग को स्थिर करता है और अन्तरिक्ष में जल निर्मित किया। लोक रक्षार्थ द्यु और पृथिवी उसी से प्रार्थना करते है। हिरण्यगर्भ के आश्रय से ही सूर्य उदित होकर चमकता है।

वियदादिभूतजातं जनयन्त्यः आपः प्रजापतिं धारयन्त्यः विश्वं व्याप्नुवन्। इसीलिये वो समस्त प्राणियों का प्राणभूत है। जल के विकार से सभी को उत्पन्न करता है। जिसके लिए उस दक्ष प्रजापति को स्वयं में धारण करता है। उन्हीं के माहात्म्य से प्रजापति सब ओर देखता है। वो ही देवों का अद्वितीय या एकमात्र ईश्वर है।

जो भूमि का स्रष्टा है और जो समस्त लोक का जनयिता सत्यधर्मा है द्य जो चन्द्र, जल आदि का भी उत्पादक प्रजापति है, हमें कष्टों से बचाता है। वर्तमान विश्व और सभी भूत पदार्थों को उसके अलावा कोई नहीं धारण करता है अर्थात् सब में वो ही व्याप्त है द्य वो ही इस सब को धारणकर उत्पन्नकर सकता है।

सृष्टिक्रम का वर्णन करने वाली निम्नोक्तगीतावचन यहाँ प्रासङ्गिक है –

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥३-१४॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥३-१५॥

पाठ का सार

हिरण्यगर्भसूक्त में दश मन्त्र हैं। इसमें जो दस मन्त्रों से जो प्रतिपादित है वो यहां सार रूप में कहते है। इस सूक्त में हिरण्यगर्भ के विविधगुण वर्णित है। और उसकी प्रशंसा करते हुए कहते है कि उसको छोड़कर और किसकी हवि द्वारा पूजा करूं। अर्थात् इसप्रकार का जो हिरण्यगर्भ है वो ही पूजनीय है। सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ। प्रथम उत्पन्न होने पर समग्रजगत् का स्वामी हुआ। उसी ने समग्रद्युलोक तथा पृथिवी को धारण किया है। वो ही प्राणदाता और बलदाता है, जिसके आदेश की पालना सभी देवता करते हैं। जिसकी छाया जन्म व मृत्यु के सदृश है। वो अपनी महिमा से श्वास-प्रश्वास ग्राहक पक्षियों और गमनशील प्राणियों का एक ही राजा है। जिसकी महिमा से हिमवान् पर्वत बने औरनदी व सागर उत्पन्न हुए। जिसकी महिमा से द्युलोक और पृथिवी स्थिर है द्य जिसने स्वर्गलोक और नागलोक को स्थिर किया है। जिसके कारण सूर्य उदित होता है। संकट समय में जिसकी ओर सभी रक्षा के लिए देखते है। वृहत् जलसमूह जब समग्र विश्व में परिव्याप्त था तब देवों ने गर्भरूप में धारण किया और अग्नि को उपलक्षित और समग्र भुवन को बनाया। वो ही देवताओं का एकमात्र स्वामी है।

पाठांत प्रश्न

1. हिरण्यगर्भसूक्त का सार लिखो?
2. हिरण्यगर्भ की महिमा का वर्णन करो।
3. हिरण्यगर्भः समवर्रताग्रे... मन्त्र की व्याख्या करो।
4. मा नो हिंसीज्जनिता... मन्त्र की व्याख्या करो।
5. यः प्राणतो निमिषतो... मन्त्र की व्याख्या करो।
6. हिरण्यगर्भ का स्वरूप लिखो।
7. हिरण्यगर्भसूक्त में कस्मै शब्द के विषय में लघुलेख लिखो।
8. मा नो हिंसीज्जनिताङ्घ्रमन्त्र की व्याख्या करो।
9. यश्चिदापो महिना ङ्घ्र. मन्त्र की व्याख्या करो।
10. यं कन्द्रसी अवसा तस्तभाने --- मन्त्र की व्याख्या करो।
11. य आत्मदा बलदा...मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

17.1

1. हिरण्यगर्भ ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, प्रजापति देवता।
2. हिरण्मयोऽण्डो गर्भवद्यस्योदरे वर्तते सोऽसौ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भः।
3. छन्दसि लुङ्लङ्लिटः सूत्र से नित्य लिट् हुआ।
4. पूजार्थक विध्-धातु से विधिलिङ में उत्तमपुरुषबहुवचन।
5. प्रकृष्टं शासनम्।
6. भावप्रधान।
7. उदात्त।
8. उदात्त।

9. ब्रू-धातु से।

10. स्थिर किया गया।

17.2

1. अभिपूर्वक ईक्ष्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषद्विवचन में।

2. प्राणभूत एक प्रजापति है।

3. वृहत्यः।

4. जनयन्त्यः।

5. सभी ओर देखा।

6. उदात्त।

7. जन्-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में।

8. जनयामास।

9. अपः।

10. लिङ् लकार में।

॥ सत्रहवां पाठ समाप्त ॥

टिप्पणियाँ

18

पुरुषसूक्त

वेद ज्ञानराशि और शब्दराशि है। वेद अपौरुषेय है। प्राणिमात्र के इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार के लिए अलौकिक उपाय बताने वाला वेद है। वेद द्वारा बताये गये उपाय प्रत्यक्ष और अनुमानप्रमाण से अगम्य है। वे उपाय केवल वेद शब्द से ही जाने जा सकते है। ईश्वर भी सृष्टिकरण में वेद ज्ञान को आश्रित करके जगत् की सृजना करता है। इसीलिए वैदिक ज्ञान निर्भ्रान्त और प्रमाद रहित कहा जाता है। वे वेद प्रयोग भेद से यज्ञ निर्वाहक होने से ऋक् यजु और साम तीनों भिन्न है। उसे ही वेदत्रयी कहा जाता है। वेद्वेत्ताओं ने प्रतिवेद को पुनः मन्त्र और ब्राह्मण दो प्रकार के विभाग किये है। मन्त्र को ही संहिता कहते है। इसलिए मन्त्र यज्ञादि अनुष्ठान कारणभूद द्रव्य देवतादि के प्रकाशक है। ब्राह्मण विधि, अर्थवाद आदि के प्रतिपादक होने से अनेकविध है। स्तुत्यात्मक ऋग्वेद है। ऋग्वेद का मण्डलरूप और अष्टकरूप से दो प्रकार विभाजन होता है। मण्डलरूप विभाग होने पर यह सूक्त दशम मण्डल के नवततिम (९०वां)(ऋ.वे. म-१०.९०)। मन्त्रात्मक ऋग्वेद का अंश है।

पुरुषसूक्त अतीव महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद संहिता में दशम मण्डल में कुछ सूक्तों में देवों की स्तुति नहीं है। और किन्हीं में स्तुति भिन्न भी है। पुरुषसूक्त भी ऐसा ही सूक्त है। इस सूक्त में सृष्टि विषयक वर्णन है। इस सूक्त में आदिपुरुष के शरीर के माध्यम से देवताओं द्वारा जो सृष्टि की गई है वो वर्णित है। यहाँ पुरुष की आध्यात्मिक कल्पना का एक भव्य निदर्शन है। पुरुष ही समग्र विश्व में व्याप्त है। जो तीनों, प्राचीनकाल में, वर्तमानकाल में तथा भविष्यत्काल में विद्यमान है। यजुर्वेद के एकत्रिंश (३१वें) अध्याय में पुरुष स्वरूप वर्णित है। जहां ऋग्वेद के अपेक्षा षट् मन्त्र अधिक है। इस ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त में सृष्टि प्रक्रिया यज्ञरूप में कल्पित है।यह सूक्त किञ्चित् परिवर्तन के साथ सामवेद, शुक्लयजुर्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होता है। सृष्टी के लिए देवताओ और ऋषियों द्वारा जो यज्ञ किया गया उस यज्ञ में पुरुष हविरूप में परिकल्पित है। उसी यज्ञ में वसन्तर्तुः घृत, ग्रीष्मर्तु इन्धन और शरदृतु हवि थे। इसी पुरुष से पशु-पक्षि, ऋगादि वेद, सूर्य, चन्द्र, इत्यादि उत्पन्न हुए। इस प्रकार सृष्टि वर्णन किया गया। इस पुरुषसूक्त का नारायण ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, षोडशमन्त्र में विराट् त्रिष्टुप्, और विराट् पुरुष देवता है। इस सूक्त में १६ मन्त्र है। उन मन्त्रों

टिप्पणियाँ

द्वारा पुरुषस्वरूप और सृष्टि विवरण वर्णित है। शुक्लयजुर्वेद में जो मन्त्र है उनकी भी इसी तरह व्याख्या है। उत्तरभाग उत्तरनारायण कहलाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- इस सूक्त का संहितापाठ करने में;
- इस सूक्त का पदपाठ करने में;
- इस सूक्त के मन्त्रों का अन्वय जान पाने में;
- इस सूक्त के मन्त्रों का सान्वय प्रत्येक पदार्थ को जान पाने में;
- इस सूक्त की व्याख्या और सरलार्थ समझ पाने में;
- इस सूक्त में स्थित कुछ शब्दों का व्याकरण जान पाने में;
- लौकिक और वैदिक शब्दों में भेद कर पाने में;
- पुरुष का स्वरूप जान पाने में;
- सृष्टि विवरण जान पाने में।

18.1 अब मूलपाठ पढ़ते है (पुरुषसूक्तम्)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥४॥

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥५॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥६॥

टिप्पणियाँ

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥७॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये॥८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥९॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥१०॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥१४॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥१५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥१६॥

इसके बाद का विद्यमान भाग शुक्ल यजुर्वेदीय है। वहाँ पर यह भाग पुरुषसुक्त का ही भाग माना गया है। उत्तरनारायणी सूक्त। शुक्ल यजुर्वेद।३१ अध्याय।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥१७॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥१८॥

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥१९॥

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥२०॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे॥२१॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण॥२२॥

18.2 अब मूलपाठ समझते है

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१॥

पदपाठः – सहस्रशीर्षा। पुरुषः। सहस्रऽअक्षः। सहस्रऽपात्॥ सः। भूमिम्। विश्वतः। वृत्वा। अति। अतिष्ठत्। दशऽअङ्गुलम्॥१॥

अन्वय – पुरुषः सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्, सः भूमिं विश्वतः वृत्वा दशाङ्गुलम् अतिष्ठत्।

व्याख्या – सभी प्राणि समष्टि रूप से ब्रह्माण्ड देह रूप विराडाख्य जो पुरुष है वो यह सहस्रशीर्षा है। सहस्रशब्द का उपलक्षण अनन्त शिरों से युक्त है। जितने सभी प्राणियों के शिर है वे सभी उसकी देह में विद्यमान होने से उसका भी सहस्र शीर्षत्व है। इसी प्रकार सहस्राक्षित्व और सहस्रपादत्व है। वो पुरुष भूमि अर्थात ब्रह्माण्डगोलक रूप को विश्वत अर्थात सभी और से वृत्वा–व्याप्त होकर दशाङ्गुल अर्थात् दशाङ्गुल के परिमाण देश के बाहर भी बैठा है या अवस्थित है। दशाङ्गुल यह उपलक्षण है। ब्रह्माण्ड से बाहर भी सब जगह व्याप्य होकर अवस्थित है।

अन्वय सहित प्रतिपदार्थ – पुरुषः = परमेश्वर या ब्रह्म, सहस्रशीर्षा = अनन्तमस्तकयुक्त, सहस्रशब्द बहुत्ववाची है। शिर के ग्रहण से सभी अवयवों का ग्रहण है। सहस्राक्षः = अनंत लोचनसमन्वित, अक्षिग्रहण से यहां सभी ज्ञानेन्दियों का उपलक्षक है। सहस्रपात् = असंख्य चरणयुक्त,। पादग्रहण यहां कर्मेन्द्रियों का उपलक्षक है। स = अन्तर्यामी, भूमिं = ब्रह्माण्डगोलकरूप धरित्री, अथवा पञ्चभूत में व्याप्त, भूमिशब्द यहां पञ्चभूत उपलक्षक है। सर्वतः = सम्पूर्ण विश्व में, ऊर्ध्वम् अधः अग्रादितः अन्तर्बहिश्च। स्पृत्वा = व्याप्य, परिव्याप्त इत्याशय। दशाङ्गुलम् = दशाङ्गुल परिमाण देश। दशाङ्गुल यह उपलक्षण है। ब्रह्माण्ड से बाहर भी सब जगह व्याप्य या अवस्थित इत्याशय। यद्वाख्न नाभी के समीप से दशाङ्गुल दूर हृदय में संस्थित। दशाङ्गुलशब्द अल्प का द्योतक भी है। अति = पार करके, अधिकं वा, अतिष्ठत् = अवस्थित है। यहां अनुष्टुप छन्द है॥१॥

टिप्पणियाँ

सरलार्थ – विराडाख्य पुरुष अनन्त शिरों से युक्त अनन्त आखों से युक्त अनन्त पादों से युक्त है। वो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर भी दशाङ्गुल परिमित स्थान में भी विद्यमान है। अर्थात् वह ब्रह्माण्ड से बाहर भी बैठा है।

व्याकरण

- सहस्रशीर्षा–सहस्रं शीर्षाणि यस्य सः (बहुव्रीहिसमास)।
- सहस्राक्षः–सहस्रम् अक्षीणि यस्य सः(बहुव्रीहिसमास)।
- सहस्रपात्–सहस्रं पादाः यस्य सः(बहुव्रीहिसमास)।
- वृत्वा–वृ–धातु से क्त्वाप्रत्यय होने पर वृत्वा रूप बनता है।
- अतिष्ठत्– स्थाधातु से लङ में प्रथमपुरुषैकवचन का रूप बनता है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥२॥

पदपाठः – पुरुषः। एव। इदम्। सर्वम्। यत्। भूतम्। यत्। च। भव्यम्॥ उत। अमृतऽत्वस्य। ईशानः। यत्। अन्नेन। अतिऽरोहति॥२॥

अन्वयः – इदं सर्वं पुरुष एव, यत् भूतं, यत् च भव्यम्, उत अमृतत्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अतिरोहति।

व्याख्या – जो यह वर्तमान जगत् है वह पुरुष ही है। जो भूत या अतीत जगत्, यच्च भव्य–भविष्य जगत् वो सब भी पुरुष ही है। जैसे इस कल्प में वर्तमान प्राणिदेही सभी विराट्पुरुष के अवयव है वैसे ही अतीत और आगामी कल्प में भी जानना चाहिए। यह अमृतत्व अर्थात देवत्व के ईशानः–स्वामी है। यत्–जिस कारण से प्राणियों के भोग्य पदार्थ के निमित्त से बढ़ता है। अपनी कारणावस्था को पार करके परिदृश्यमान जगदवस्था को प्राप्त करता है जिससे प्राणियों के कर्मफलभोग के लिए जगदवस्था को स्वीकारने से यह उसका वस्तुत्व अर्थ नहीं हुआ।

सान्वयप्रतिपदार्थ – इदं सर्वं = समस्त प्रत्यक्षवर्तमान जगत्, यद् भूतं = जो अतीतकालिकविश्व, यच्च भाव्यं = जो भविष्यत्कालिक जगत्, पुरुष एव = वो सब परब्रह्म परमात्मा ही है, (सः=पुरुषः) अमृतत्वस्य = अमरता का या मोक्ष का, ईशानः = स्वामी, उत = और भी, यत् = जो कुछ भी, अन्नेन = भोज्य, पदार्थ से, अतिरोहति = वृद्धि को प्राप्त होता है, (तस्यापि ईशानः = स्वामी इत्याशयः)॥२॥

सरलार्थ – इस दृश्यमान जगत् में जो कुछ भी है वो सभी पुरुष ही है। जो कुछ हुआ और जो कुछ होगा वो सब भी वह पुरुष ही है। वो अमृतत्व का अधिपति है और साथ ही भोग्य वस्तुओं द्वारा बढ़ने वालों का भी अधिपति है।

व्याकरण

- **भव्यम्** -भूधातु से यत्प्रत्यय करने पर भव्यम यह रूप बनता है।
- **ईशानः** - ईश्-धातु से शानच प्रत्यय होने पर प्रथमा एकवचन में ईशन यह रूप बनता है।
- **अतिरोहति** - अतिपूर्वक रुह्-धातु से लट लकार प्रथमपुरुषैकवचन में यह रूप बनता है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥

पदपाठः - एतावान्। अस्य। महिमा। अतः। ज्यायान्। च। पुरुषः॥ पादः। अस्य। विश्वा। भूतानि। त्रिऽपात्। अस्य। अमृतम्। दिवि॥३॥

अन्वय - एतावान् अस्य महिमा पुरुषः च अतः ज्यायान्, विश्वाभूतानि अस्य पादः, अस्य त्रिपात् अमृतं दिवि।

व्याख्या - अतीत और अनागत वर्तमान रूप जगद् आदि ये सब भी इस पुरुष की महिमा का अपना सामर्थ्य विशेष है। न कि उसका वास्तव स्वरूप। अतः- महिमा से भी, ज्यायान्-अत्यधिक है। और ये दोनों स्पष्ट करते है। इस पुरुष के कालत्रयवर्ती प्राणिजात चतुर्थ पाद या अंश है। इस पुरुष के अविशिष्ट त्रिपाद स्वरूपम् अमृतं- विनाशरहितं सत् द्योतनात्मक या प्रकाशक प्रकाश स्वरुप में अवतिष्ठ है। यद्यपि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै.आ.८.१; तै. उ. २.१) इस वचन का परब्रह्म के अभाव से पादचतुष्टय के निरूपण में असमर्थ है तथापि ये जगत ब्रह्म के स्वरूप की अपेक्षा से अल्प है विवक्षितत्वात् पादत्वोपन्यासः।

सान्वयप्रतिपदार्थ - एतावान् = अखिल परिदृश्य जगद्, अस्य = सर्वेश्वर पुरुष, महिमा= स्वसामर्थ्य विशेष विभूति। अतः - इससे, ज्यायान् = अतिशय से और अधिक, पूरुषः = ब्रह्माण्डनायक। अस्य = ब्रह्म के, पादः = चतुर्थांश, विश्वा = समग्र, भूतानि = प्राणिजात, अस्य = जगत्स्रष्टा, त्रिपात् = एक तीन चोथाई, अमृतं = विनाशरहित, दिवि = स्वप्रकाश स्वरूप में या आकाश में रहता है॥३॥

सरलार्थ - इस पुरुष की महानता है कि यह पुरुष महिमा और ऐश्वर्य से बृहत् है। समस्त प्राणी इसके चतुर्थ अंश है। इसके तीन अंश द्युलोक में अवस्थित है।

व्याकरण

- एतावान् - एतत् + वतुप्(वत्)।
- **ज्यायान्** - ज्या + ईयसुन्।
- **विश्वा** - विश्वशब्द, नपुंसकलिङ्ग प्रथमा बहुवचन का वैदिक रूप है। विश्वानि इसका लौकिकरूप है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥४॥

पदपाठः – **त्रिऽपात्। ऊर्ध्वः। उत्। ऐत्। पुरुषः। पादः। अस्य। इह। अभवत्। पुनरिति॥ ततः। विष्वङ्। वि। अक्रामत्। साशनानशने इति। अभि॥४॥**

अन्वयः – त्रिपात्पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत्, पुनः अस्य पादः इह अभवत्, ततः साशनानशने अभि विष्वङ् व्याक्रामत्।

व्याख्या – जो यह त्रिपात्पुरुष संसार रहित ब्रह्मस्वरूप है वो द्युलोक को चल गया इस अज्ञान कार्यरूपी संसार से रहित गुणदोष में पूर्णरूप से स्थित है। उसका यह अंश माया के रूप में पुनः होकर उत्पत्ति और संहार के लिए बार बार आता है। इस सम्पूर्ण जगत में परमात्म अंशत्व है। भागवत में भी कहा है – 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' (भ० गी० १०.४२)। उसके बाद मायारूप में आकर चारों दिशाओं में देव, मनुष्य, पशु आदिरूप से विविध प्रकार से व्याप्त हुआ। किं कृत्वा। साशनानशने अभिलक्ष्य – साशन अर्थात भोजनादि व्यवहार युक्त चेतन प्राणी को तथा अनशन अर्थात भोजनादि व्यवहार रहित अचेतन गिरि नद्यादि को बनाकर उसमें वास किया। ये दोनों जैसे ही हुए वैसे ही वो ब्रह्म स्वयमेव विविध प्रकार का होकर उनमे व्याप्त हो गया।

सान्वय प्रतिपदार्थ – त्रिपात् = त्रिचतुर्थांश, पुरुषः = ब्रह्म, ऊध्वम् = ऊपर से, उद् = उत्कर्ष से, ऐत् = चला गया, या संस्थापित हो गया। अस्य = पुरुष के, पादः = चतुर्थांश, पुनः = पुनः, इह = इस लोक में, अभवत् = स्थित हुआ। ततः = उसके बाद, मायारूप में आकर या दुसरे रूप में, विष्वङ् = चारों दिशाओं में या विविधरूप होकर, साशनम् = भोजन आदि व्यवहारयुक्त चेतन प्राणी उत्पन्न किये, अनशनम् = उससे रहित अचेतन, ते साशनानशने = चेतन अचेतन को, अभि = लक्ष्य करके, वि = विशेषरूप से, अक्रामत् = व्याप्त हुआ ।।४।।

सरलार्थ – तीन चौथाई पुरुष या ब्रह्म द्युलोक में है तथा, चतुर्थ अंश इसी लोक में है। वो चेतन और अचेतन में विविधरूप से व्याप्त है।

व्याकरण

- **उदैत्** – उत्पूर्वक इ धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- **व्यक्रामत्** –विपूर्वक क्रम्–धातु लङ् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- **साशनाशने** – अश्–धातु से ल्युट् प्रत्यय, अशनेन सहितं साशनम्, अशनेन रहितम् अनशनम्, साशनम् च अनशनम् चेति साशनाशने यहां द्वन्द्वसमास है।

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥५॥

पदपाठः- तस्मात्। विऽराट्। अजायत। विऽराजः। अधि। पुरुषः॥ सः। जातः। अति। अरिच्यत। पश्चात्। भूमिम्। अथो इति। पुरः॥५॥

अन्वयः – तस्मात् विराड् अजायत, विराजः अधिपुरुषः। सः जातः भूमिम् अथो पुरः अत्यरिच्यत।

व्याख्या – विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपञ्च्यते। उस आदिपुरुष से विराट् ब्रह्माण्डदेहउत्पन्न हुआ। विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट्। विराजोऽधि अर्थात विराट देह के ऊपर, उसी देह के आधार पर पुरुष उत्पन्न हुआ। इसप्रकार यह समस्त वेदान्त को जानने वाला परमात्मा स्वयं ही देवतात्म जीव हो गया। एतच्चाथर्वाणिका उत्तरतापनीये विस्पष्टमामनन्ति- स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः केशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव (नृ० ता० २.१.९) इति। वह उत्पन्न हुआ विराट्पुरुष भिन्न हो गया। विराट से भिन्न देवतिर्यङ् मनुष्यादिरूप में हुआ। पश्चात् देवादि जीव के बाद भूमि को बनाया। भूमि के सृष्टी के बाद जीवों के शरीर को बनाया। पूर्यन्ते सप्तभिरधातुभिरिति पुरः शरीराणि।

सान्वयप्रतिपदार्थः – तस्माद् = उस आदिपुरुष से, विराट् = ब्रह्माण्डदेह, अजायत = उत्पन्न हुआ, विराजः अधि = विराट देह के ऊपर, उसी देह को अधिकरण करके, पूरुषः = एक पुरुष (अजायत), स जातः = उत्पन्न विराट्पुरुष, अत्यरिच्यत = अतिरिक्त हुआ, देव-तिर्यङ्-मनुष्यादिरूपहुए। पश्चाद् = देवादिजीवभाव से ऊपर, भूमिं = मही, उत्पन्न हुई। अथो = भूमि के सर्जन के अनन्तर, पुरः = शरीर, बनाये।॥५॥

सरलार्थ – आदिपुरुष से विराट् उत्पन्न हुआ, विराट से जीवात्मा उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होने से पहले ही उसने स्वयं ही देव और मनुष्यरूप में पृथक कर दिया। उसके बाद पृथिवी उत्पन्न हुई फिर जीवात्मा के लिए शरीर को निर्मित किया।

व्याकरण

- विराट् – विपूर्वक राज्-धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर यह शब्द बना।
- अजायत – जन्-धातु से लङ् लकार में प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- अत्यरिच्यत – अतिपूर्वक रिच्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में।

पाठगत प्रश्न 18.1

1. पुरुषसूक्त का ऋषि, छन्द और देवता कौन है?
2. दशाङ्गुलम्शब्द का क्या तात्पर्य है?
3. ईशानः का अर्थ क्या है?
4. पुरुष का चतुर्थ पाद क्या है?

टिप्पणियाँ

5. पुरुष के अवशिष्टत्रिपाद कहां है?
6. यद्यपि पुरुष के पादचतुष्टय का निरूपण सामर्थ्य से परे था फिर भी कैसे पादत्व का वर्णन किया।
7. विश्वा का लौकिक रूप क्या है?
8. उदैत् ये रूप कैसे सिद्ध हुआ?
9. साशनानाशन का क्या अर्थ है?
10. पुरः का क्या अर्थ है?

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥६॥

पदपाठः- यत्। पुरुषेण। हविषा। देवाः। यज्ञम्। अतन्वत॥ वसन्तः। अस्य। आसीत्। आज्यम्। ग्रीष्मः। इध्मः। शरत्। हविः॥६॥

अन्वयः - यत् देवाः पुरुषेण अतन्वत। अस्य वसन्तः आज्यम् आसीत्, ग्रीष्मः इध्मः, शरत् हविः(चासीत्)।

व्याख्या - जब शरीर के उत्पन्न होने पर देवों ने आगे की सृष्टि के सिद्धि के लिए बाह्यद्रव्य के उत्पन्न न होने से हवि से पुरुष को ही मन से हविषत्व का संकल्प करके पुरुष से मानस यज्ञ को किया। उस समय इस यज्ञ में घृत वसन्त ऋतु ही थी अर्थात उसी का आज्यत्व के रूप में सङ्कल्प किया। इस प्रकार ग्रीष्म इंधन था। अर्थात उसी को ही ऊर्जा के रूप में सङ्कल्पित किया। फिर शरद् हवि थी। उसी को पुरोडाशादि हवि के रूप में सङ्कल्पित किया। पहले पुरुष की हवि को सामान्यरूप से नहीं माना गया है। अनन्तर में वसन्तादी को आज्यादि विशेष रूपत्व से सङ्कल्प किया गया है।

सान्वयप्रतिपदार्थः - देवाः = सुर, यत् = जब, पुरुषेण = पुरुष को कहने वाली हवि द्वारा, यज्ञम् = मानसयाग, अतन्वत = विस्तारित किये। अस्य = यज्ञ का, आज्यं = घृत, वसन्तः = ऋतु ही, आसीत् = था। इध्मः = समिद् इन्धनविशेष, ग्रीष्मः = उष्ण ऋतु। हविः = पुरोडाशादिहवि पदार्थ, शरद् = शरद् ऋतु आसीत् = हुआ॥६॥

सरलार्थः - जब देवताओं ने पुरुष रूप मानसिक यज्ञ को हवि द्वारा सम्पादित किया तब उस यज्ञ में वसन्त ऋतु यज्ञ का घृत, ग्रीष्म ऋतु समिधा तथा शर ऋतु हवि के रूप में थी।

व्याकरणम्

- **अतन्वत** - तनु विस्तारे इस धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥७॥

पदपाठः - **तम्। यज्ञम्। बर्हिषि। प्र। औक्षन्। पुरुषम्। जातम्। अग्रतः॥ तेन। देवाः। अयजन्त। साध्याः। ऋषयः। च। ये॥७॥**

अन्वयः - अग्रतः जातं तं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रौक्षन् तेन देवाः ये साध्याः ऋषयः च अयजन्त।

व्याख्या - साधनभूत यज्ञ को उन्होंने पुरुष को पशुत्व भावना से बलि के लिए खूटे से बाँधा ऋषियों ने मानस यज्ञ में शुद्ध किया। ये सब कैसे हुआ वो यहां बताया गया है। समस्त सृष्टी के पूर्व पुरुष उत्पन्न हुआ। और ये पहले भी कहा जा चुका है 'तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः' इति। उस पुरुष रूप पशु से देव उत्पन्न हुए। मानस याग को निष्पादित किया। वे कौन देव है, वो यहां बताया गया है। सृष्टि के लिए साधन योग्य तथा उसके अनुकूल प्रजापति आदि अनेक ऋषियों और जो मन्त्रद्रष्टा है उन सभी ने यजन किया।

सान्वयप्रतिपदार्थ - तं = पुरुष को, अग्रतः = बाद में, जातं = प्रादुर्भूत, यज्ञं = यज्ञ के साधनभूतया सम्पूजनीय, पुरुषं = पशुत्वभावना से खूटे पर बाँधा गया है, (देवाः = सुराः) बर्हिषि = मानसिकयाग में, दुर्वा या, कुशा पर पूर्णरूप से शुद्ध किया। देवाः = अमर, साध्याः = सृष्टिसाधन के योग्यप्रजापति आदि, ये = पुरुष,और ऋषियों ने जो ब्रह्मवेत्ता और मन्त्रद्रष्टा है, (उन सभी ने) तेन = प्रथित पुरुष से, अयजन्त = याग किया।।७।।

सरलार्थ - सर्व प्रथम उत्पन्न यज्ञीय पुरुष को कुशा पर रखकर जल से पवित्र किया। उसके बाद उस शुद्ध पुरुष से देवों ने प्रजापत्यादि सृष्टकर्ता और यज्ञकर्ता ऋषियों ने यज्ञ को सम्पादित किया।

व्याकरण

- **प्रौक्षन्** - प्रपूर्वक उक्ष्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बना।
- **अयजन्त** - यज्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बना।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये॥८॥

पदपाठः - तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः। सम्ऽभृतम्। पृषत्ऽआज्यम्॥ पशून्। तान्। चक्रे। वायव्यान्। आरण्यान्। ग्राम्याः। च। ये॥८॥

अन्वयः - सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् पृषदाज्यम् सम्भृतम्, वायव्यनि आरण्यानि ये च ग्राम्याः तान् चक्रे।

व्याख्या - सर्वहुतः। सर्वात्मक पुरुष जिस यज्ञ में आहूत किया गया हो वो सर्वहूत् है। उस पूर्वोक्त मानस यज्ञ से दधिमिश्रितघृत सम्पादित हुआ। दधि और घृत भोग्य पदार्थ बनाये। फिर उससे वायव्य

टिप्पणियाँ

और आरण्य पशु उत्पादित हुए। आरण्य पशु हरिणादि है। और ग्राम्य गौ अश्व आदि भी हुए। पशुओं को अन्तरिक्ष द्वारा वायुदेवता ने, यजुर्ब्राह्मण में कहते है 'वायवःस्थेत्याह वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः। अन्तरिक्ष देवता से पशु। वायव एवैनान्परिददाति' (तै.ब्रा. ३.२.१.३) इति।

सान्वयप्रतिपदार्थ - तस्मात् = पुरुषमेध से, सर्व हूयते यस्मिन् स सर्वहुत्, तस्मात् सर्वहुतः = सर्वात्मकहवनशील से, यज्ञात् = यज्ञ से, पृषत् तद् आज्यम् पृषदाज्यं = दधिमिश्र घृत, सम्भृतम् = समुत्पन्नया सम्पादित किया, (तस्मात् सम्भृतात् पृषदाज्यात्) वायव्यान् = वायुदेवता, नभचर इत, आरण्यान् = अरण्ये भवान्, हरिणादि को, ये च = किया गया, ग्रामे भवाः ग्राम्याः = ग्राम में होने वाले गवाश्वादि, तान् = पशुओं को, चक्रे = उत्पादित किया।।८।।

सरलार्थ - उस सर्वहुत यज्ञ से दधिमिश्रित घृत एकत्र किया। फिर उस घृत से आकाशस्थ विहग, आरण्यकपशु और ग्राम्यपशु उत्पन्न हुए।

व्याकरणम्

- **सर्वहूतः** - सर्व हूयते यस्मिन्; तस्मात्। सर्व हू क्विप्, पञ्चमी एकवचन।
- **पृषदाज्यम्** - पृष्-धातु शतृप्रत्यय, पृषत् च तद् आज्यं च (कर्मधारयः)।
- **सम्भृतम्** - सम्पूर्वक भृ धातु क्तप्रत्यय।
- **वायव्यान्** - वायुशब्द से यत्प्रत्यय, उससे द्वितीयाबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **आरण्यान्** - अरण्यशब्द से अण्प्रत्यय, उससे द्वितीयाबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **ग्राम्याः** - ग्रामशब्द से यत्प्रत्यय, उसे प्रथमाबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **चक्रे** - कृधातु से लिट् लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुषैकवचन में यह रूप बनता है।

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ ऋ॒चः सामा॑नि जज्ञिरे।
छन्दा॑सि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत॥९॥

पदपाठः - तस्मा॑;त्। य॒ज्ञात्। सर्व॑ऽहुतः। ऋ॒चः। सामा॑नि। ज॒ज्ञि॒रे॒॥ छन्दा॑सि। ज॒ज्ञि॒रे॒। तस्मा॑त्। यजुः॑। तस्मा॑त्। अ॒जा॒य॒त॒॥९॥

अन्वयः - सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे, तस्मात् छन्दांसि तस्मात् यजुः अजायत।

व्याख्या - सर्वहुत अर्थात् उस पूर्वोक्त यज्ञ से ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से गायत्री आदि उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से यजुर्वेद भी उत्पन्न हुआ।

सान्वयप्रतिपदार्थः - तस्मात् = पूर्ण हुए, सर्वहुतः = अशेषहवनशीलत्व से, यज्ञात् = यज्ञ से, ऋचः = ऋग्वेद, सामानि = सामवेद, जज्ञिरे = उत्पन्न हुए, तस्मात् = पुरुषमेध कहलाने वाले यज्ञ से,

छन्दांसि = गायत्री आदि, जज्ञिरे = प्रादुर्भूत हुए, तस्मात् = सम्पादित यज्ञ से, यजुः = यजुर्वेद भी उत्पन्न हुआ,अजायत =, समुत्पन्न हुआ।।९।।

सरलार्थ – उस सर्वहुत यज्ञ से ऋग्वेद, सामवेद, गायत्र्यादि छन्द और यजुर्वेद उत्पन्न हुए।

व्याकरणम्

- जज्ञिरे – जन्–धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- अजायत – जन्–धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्मांज्जाता अजावयः।।१०।।

पदपाठः- तस्मात्। अश्वाः। अजायन्त। ये। के। च। उभयादतः।। गावः। ह। जज्ञिरे। तस्मात्। तस्मात्। जाताः। अजावयः।।१०।।

अन्वयः – तस्मात् अश्वाः अजायन्त, ये के च उभयादतः, तस्मात् ह गावः जज्ञिरे, तस्मात् अजावयः जाताः।

व्याख्या – उस पूर्वोक्त यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए और फिर वो भी जो अश्व के अतिरिक्त गर्दभ और अश्वतर है, उभयादतः ऊर्ध्व अधोभाग में दन्तयुक्त है, वे भी हुए। उसके बाद उस यज्ञ से गाय उत्पन्न हुई। और फिर उस यज्ञ से बकरी और भेड़ हुए।

सान्वयप्रतिपदार्थ – तस्मात् = पूर्व में कहे गये यज्ञ से, अश्वाः = घोड़े, ये के च = अश्व से अतिरिक्त गर्दभ आदि, उभयोः भागयोः दन्ता येषां ते उभयादतः = ऊर्ध्व और अधोभाग में दन्तयुक्त है, वो भी, अजायन्त = समुत्पन्न हुए तस्मात् = पूर्वोक्त यज्ञ से, ह = स्फुटं, गावः = धेनु, जज्ञिरे = प्रादुर्भूत हुए, तस्मात् = यज्ञ से, अजाश्च अवयश्च अजावयः = बकरी भेड़ आदि ने, जाताः = जन्म लिया।।१०।।

सरलार्थ – उस यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए जिनके ऊर्ध्वभाग और अधोभाग में दन्त होते है, गाय और बकरी उत्पन्न हुए।

व्याकरण

- **अजायन्त** – जन्–धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **उभयादतः** – उभयोः दन्ताः येषां ते(बहुव्रीहिसमासः)
- **जज्ञिरे** – जन्–धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **अजावयः** – अजाश्च अवयश्च(द्वन्द्वसमासः)।

पाठगत प्रश्न 18.2

1. यज्ञ में कौनसी ऋतु आज्य थी?
2. यज्ञ में कौनसी ऋतु समिधा थी?
3. यज्ञ में कौनसी ऋतु हवि थी?
4. उस पुरुषरूप पशु से कौन देव उत्पन्न हुए?
5. आरण्यक पशु किससे उत्पन्न हुए?
6. उभयादतः इस शब्द से क्या तात्पर्य है?
7. पृषदाज्य रूप कैसे सिद्ध हुआ?
8. प्रौक्षन् रूप कैसे सिद्ध हुआ?
9. वायव्यान् रूप कैसे कथं सिद्ध हुआ?
10. जज्ञिरे रूप कैसे सिद्ध हुआ?

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥११॥

पदपाठः - यत्। पुरुषम्। वि। अदधुः। कतिधा। वि। अकल्पयन्॥ मुखम्। किम्। अस्य। कौ। बाहू इति। कौ। ऊरू इति। पादौ। उच्येते इति॥११॥

अन्वयः - यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्, अस्य मुखं किम्, अस्य बाहू कौ, ऊरु कौ पादौ उच्येते।

व्याख्या - प्रश्नोत्तर रूप से ब्राह्मणादि सृष्टि को ब्रह्मवादियों के प्रश्न कहते है। प्रजापति से जब पुरुष उत्पादित हुआ तब वो कितने प्रकार से कल्पित हुआ। इस पुरुष का मुख कौन था? कौन बाहू थे? और कौन पाद कहलाये? प्रथमतया सामान्यरूप से प्रश्न है पश्चात् मुख कौन है इत्यादि विशेष विषयगत प्रश्न बताए गये है।

सान्वयप्रतिपदार्थः - (देवाः = पुरन्दर या इंद्र आदि ने) यत् = जब, पुरुषं = विराट रूप को, व्यदधुः = सङ्कल्प से समुत्पादित किया, (तद्) कतिधा = कितने प्रकार से, व्यकल्पयन् = विविधरूपों की कल्पना की। अस्य = पुरुष का = मुखं = आनन, किम् आसीत् = कौन था, किम् बाहू = भुज कौन, किम् ऊरू = जङ्घा कौन,थे, किम् पादौ = चरण कौन थे, उच्येते = अब कहते है।।११।।

सरलार्थः – देवों ने पुरुष को विविध भाग और विविध रूप से विभक्त किया है। उस पुरुष का कौनसा मुख है, बाहू कौन है,उसकी उरू कौन है, और उसके पाद कौन है?

व्याकरण

- **व्यदधुः** – वि पूर्वक धा धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप निष्पन्न होता है।
- **व्यकल्पयन्** – वि पूर्वक कप्प्-धातु से णिच् लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **उच्येते** – बरू-धातु से कर्म में लट् लकार प्रथमपुरुषद्विवचन में यह रूप बनता है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१२॥

पदपाठः – **ब्राह्मणः। अस्य। मुखम्। आसीत्। बाहू इति। राजन्यः। कृतः॥ ऊरू इति। तत्। अस्य। यत्। वैश्यः। पत्ऽभ्याम्। शूद्रः। अजायत॥१२॥**

अन्वयः – ब्राह्मणः अस्य मुखम् आसीत्, राजन्यः बाहू कृतः, यत् वैश्यः तत् अस्य ऊरूः, पद्भ्यां शूद्रः अजायत।

व्याख्या – अब पूर्वोक्त प्रश्न के उत्तर देखते हैं। इस प्रजापति से ब्राह्मण अर्थात ब्राह्मणत्व जाति विशिष्ट पुरुष मुख था मुख से उत्पन्न हुआ। जो यह राजन्य अर्थात क्षत्रियत्व जातिमान् है वो बाहु से निष्पादित है या बाहु से उत्पादित है। उसके बाद अब इस प्रजापति से जो वैश्य हुए वो जंघाओं से उत्पन्न हुए। फिर पैरों से शूद्र अर्थात शूद्रत्व जातिमान् पुरुष हुआ। और इस प्रकार से ये मुखदियों से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति यजुःसंहिता में सप्तमकाण्ड में 'स मुखतस्रिवृतं निरमिमीत'(तै०स० ७. १.१.४) स्पष्टरूप से बताया गया है। अतः प्रश्नोत्तर में भी उसी प्रकार देखना चाहिए।

सान्वयप्रतिपदार्थ – अस्य = पुरुष या परमेश्वर का, मुखम् = आनन, ब्राह्मणः = द्विज, आसीत् = था। राजन्यः = क्षत्रिय, बाहू = भुजा जो शौर्यपराक्रमसमन्वित है, कृतः = निष्पन्न है। यत् = जो, वैश्यः = वैश्यजातिमान् पुरुष है, तत् = वो ऊरू = जङ्घा से। शूद्रः = शूद्रजातिमान् पुरुष, पद्भ्याम् = चरणों से, अजायत = समुत्पन्न हुआ॥१२॥

सरलार्थः – ब्राह्मण इसका मुख था अर्थात् मुख से उत्पन्न हुआ। क्षत्रिय इसके हस्त थे अर्थात् हाथों से उत्पन्न हुए। वैश्य इसके जंघा थी अर्थात् जंघाओं से उत्पन्न हुआ। शूद्र इसके पाद थे अर्थात् पैरों से उत्पन्न हुआ।

व्याकरणम्

- आसीत्- अस्-धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

टिप्पणियाँ

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥१३॥

पदपाठः - **चन्द्रमाः। मनसः। जातः। चक्षोः। सूर्यः। अजायत॥ मुखात्। इन्द्रः। च। अग्निः। च। प्राणात्। वायुः। अजायत॥१३॥**

अन्वयः - मनसः चन्द्रमाः जातः, चक्षोः सूर्यः अजायत, मुखात् इन्द्रः च अग्निः च, प्राणात् वायुः अजायत।

व्याख्या - जैसे दधि आज्यादि द्रव्यों से गवादि पशु, ऋगादिवेद, ब्राह्मणादि मनुष्य उससे उत्पन्न हुए उसी प्रकार से चन्द्रादि देव भी उसी से उत्पन्न हुए। प्रजापति के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। और चक्षु से सूर्य भी उत्पन्न हुआ। इसके मुख से इन्द्र और अग्नि देव् उत्पन्न हुए। इसके प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।

सान्वयप्रतिपदार्थ - (अस्य = पुरुषस्य) मनसः = चेतसः, चन्द्रमाः = चन्द्रः (हिमांशुः), जातः = समुत्पन्नः। चक्षोः = लोचनाभ्यां, सूर्यः = भास्करः, अजायत = प्रादुर्भूतः। श्रोत्राद् = कर्णात, वायुः = मातरिश्वा, प्राणश्च = जीवः। मुखात् = आननात, अग्निः = अनलः (वह्निः), अजायत = समुद्भूतः॥१३

सरलार्थ - उस पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ, मुख से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए, प्राणों से वायु उत्पन्न हुई।

व्याकरण

- अजायत - जन्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- मनसः - नस्-शब्द के षष्ठ्येकवचन और पञ्चम्येकवचन में यह रूप बनता है।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥१४॥

पदपाठः - **नाभ्याः। आसीमत्। अन्तरिक्षः। शीर्ष्णः। द्यौः। सम्। अवर्तत॥ पत्ऽभ्याम्। भूमिः। दिशः। श्रोत्रात्। तथा। लोकान्। अकल्पयन्॥१४॥**

अन्वय - नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत् शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत, पद्भ्यां भूमिः, श्रोत्रात् दिशः, तथा लोकान् अकल्पयन्।

व्याख्या - जैसे प्रजापति के मन से चन्द्र की रचना हुई, वैसे ही अन्तरिक्षादि लोकों को देवों ने प्रजापति के नाभ्यादि से उत्पादित किये। प्रजापति के नाभि में अन्तरिक्ष था। शिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ। इसके पांवों से भूमि उत्पन्न हुई। इसके श्रोत्र से दिशाएँ उत्पन्न हुई।

सरलार्थ – पुरुष के नाभिमण्डल से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ, शिर से द्युलोक, पाद से भूमि, कर्ण से दिशा उत्पन्न हुए। इस प्रकार से उसने लोक की सृजना की।

व्याकरण

- **समवर्तत** – सम्पूर्वक वृत्–धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- **अकल्पयन्** – क्लृप्–धातु से लङ लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥१५॥

पदपाठः – सप्त। अस्य। आसन्। परिऽधयः। त्रिः। सप्त। सम्ऽइधः। कृताः॥ देवाः। यत्। यज्ञम्। तन्वानाः। अबध्नन्। पुरुषम्। पशुम्॥१५॥

अन्वयः – यत् देवाः यज्ञं तन्वानाः पुरुषं पशुम् अबध्नन्, अस्य सप्त परिधयः आसन्, त्रिः सप्त समिधः कृताः।

व्याख्या – इस कल्पिक यज्ञ की गायत्र्यादी सप्त छन्द परिधियाँ थी। आवहनीय की तीन परिधियाँ उत्तर वेदिका की तीन और आदित्य सप्तम परिधि प्रतिनिधि रूप में थी अतः कहते है – 'न पुरस्तात्परिदधात्यादित्यो ह्येवोद्यन् पुरस्ताद्रक्षांस्यपहन्ति' (तै०स० २.६.६.३) इति। इसीलिये आदित्य सहित सप्त परिधीयाँ यहां छन्द रूप में है। तथा समिधाएं सात को तीन से गुणा करने पर २१ हुई 'द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोकाः असावादित्य एकविंशः' (तै०स० ५.१.१०.३) अर्थात "द्वादश मास, पञ्च ऋतु, ये तीन लोक और एक आदित्य कुल २१" इस श्रुति से पदार्थ एकविंशति लकड़ी से युक्त समिधा के रूप में हुई। जो यह पुरुष है उस पुरुष को देवों ने प्रजापति ने मानस यज्ञरूप में बढ़ाया विराट्पुरुष को ही पशुरूप में मान कर बाँधा। इसीलिए पूर्व में जो पुरुष को हवि का रूप कहा गया है।

सान्वयप्रतिपदार्थः – अस्य = मानसयाग की, सप्त = सप्त, परिधयः = मर्यादा, आसन् = निर्मित हुई। त्रिःसप्त (३०७) = एकविशति, समिधः = समिधाएँ, कृताः = बनाई। यत् = जब, यज्ञं = मानसयाग का, तन्वानाः = विस्तार किया, देवाः = पुरन्दर आदि, पुरुषं = विराट्पुरुष को, पशुम् = पशुरूप में, अबध्नन् = बांधा, भावितवन्त इत्याशयः॥१५॥

सरलार्थ – जब देवों ने यज्ञ से उत्पन्न पुरुषरूप पशु को बाँधा तब उस मानस याग की सप्त परिधियां और एकविंशत (२१) समिधाएँ बनाई।

व्याकरण

- तन्वानाः – तन्–धातु से शानच् प्रथमाबहुवचन में यह रूप बनता है।
- अबध्नन् – बन्ध्–धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥१६॥

पदपाठः – **यज्ञेन। यज्ञम्। अयजन्त। देवाः। तानि। धर्माणि। प्रथमानि। आसन्॥ ते। ह। नाकम्। महिमानः। सचन्त। यत्र। पूर्वे। साध्याः। सन्ति। देवाः॥१६॥**

अन्वयः – देवाः यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त, तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। ते महिमानः ह नाकं सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति।

व्याख्या – पूर्व में कहे गये प्रपञ्च का अर्थ संक्षिप्त करके दिखाते है। देवों ने प्राणरूप प्रजापति को यथोक्त मानस संकल्प से यज्ञस्वरूप प्रजापति का यजन किया। उस पूजन से वो पुरुष प्रसिद्ध धर्म अर्थात जगद्रुप विकारों का धारक प्रथमया मुख्य है। इसप्रकार सृष्टिप्रतिपादक सूक्त भाग का अर्थ हुआ। अब उपासना और उसका फलानुवादक भाग का अर्थ बताते हैं। देव रहते हैं उस विराट् प्राप्ति रूप स्वर्ग को महिमाशाली वे उपासक महात्मा प्राप्त करते है।

सान्वयप्रतिपदार्थ – देवाः = पुरन्दर आदि देव, यज्ञेन = मानसयाग से, यज्ञम् = यज्ञस्वरूप प्रजापति, अयजन्त = पूजा की। तानि = वो पुरुष प्रथमानि = मुख्य, धर्माणि = जगद्रूपविकार धारक है, आसन् = हुए या थे। वे यज्ञ के अनुष्ठाता या उपासक है, ह = निश्चय से, महिमानः = माहात्म्ययुक्त हुए, नाकं = स्वर्ग को, सचन्त = प्राप्त हुए, यत्र = स्वर्ग में, पूर्वे = पुरातन, साध्याः = देवगण, देवाः = सुर, सन्ति = है॥१६॥

सरलार्थ – देवों ने यज्ञ द्वारा यज्ञस्वरूप प्रजापति को पूजा। वो ही सर्वप्रथम धर्म है। वे उपासक भी दिव्यस्वर्ग को प्राप्त करते है जहाँ स्वर्ग में सिद्धिप्राप्त प्राचीन देव है।

व्याकरण

- **अयजन्त** – यज्-धातु से लङ् लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **सचन्त** – सच्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन में वैदिकरूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 18.3

1. पुरुष के मुख से कौन उत्पन्न हुआ?
2. पुरुष के बाहों से कौन उत्पन्न हुए?
3. पुरुष की जांघो से कौन उत्पन्न हुए?
4. पुरुष के पाद से से कौन उत्पन्न हुए?
5. पुरुष के किस अंग से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ?

6. पुरुष के चक्षु से क्या उत्पन्न हुआ?
7. पुरुष के मुख से कौन उत्पन्न हुआ?
8. पुरुष के नाभिमण्डल से कौन उत्पन्न हुआ?
9. पुरुष के शिर से कौन उत्पन्न हुआ?
10. पुरुष के पाद से कौन उत्पन्न हुआ?

18.3 अब मूलपाठ जानेंगे

(यहां से आगे षट् मन्त्र शुक्लयजुर्वेदीय है। उत्तरनारायणीयसूक्त। शुक्लयजुर्वेद। ३१ अध्याय। इसका उवटभाष्य और महीधरभाष्य उपलब्ध है। यहां उवटभाष्यांश को ग्रहण करके /मुख्यरूप से महीधरभाष्य को ही किञ्चित् परिवर्तन के साथ उपस्थापित किया है। सायणभाष्य का भी सन्धिविच्छेदादि करके कठिनांशों के अलावा दिया है)

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥१७॥

व्याख्या – अद्भ्यः संभृत इति उत्तरनारायणेन आदित्यम् उपस्थाय इति (१.३.६.२.२०) षट् मन्त्र उत्तरनारायण द्वारा। अंतिम से पहले दो अनुष्टुभ और शेष त्रिष्टुभ में है। आदित्य देवत्याः। पूर्वकल्प में पुरुषमेधकर्ताओं ने आदित्यरूप को प्राप्त किया।

जल से पृथिवी का ग्रहण है, जो भूतपञ्चमहाभूत का उपलक्षक है। भूतपञ्चक से रस प्राप्त हुआ। फिर विश्वकर्मा और काल के रस से ये रस सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। पंचभूत और काल के प्रति कारणत्व से पुरुषमेध याजियों ने लिङ्ग शरीर में पञ्चभूत और काल उत्पन्न किये। ततः तुष्टेभ्यः कश्चिद् रसविशेषफलरूपः उत्तमजन्मप्रदः उत्पन्नः इत्यर्थः। तस्य रसस्य रूपं विदधत् धारयन् त्वष्टा आदित्यः एति प्रत्यहम् उदयं करोति। अग्रे प्रथमं मर्त्यस्य मनुष्यस्य सतः तस्य पुरुषमेधयाजिनः आजानदेवत्वं मुख्यं देवत्वम् सूर्यरूपेण। द्विविधा देवाः कर्मदेवाः आजानदेवाः च। कर्मणा उत्कृष्टेन देवत्वं प्राप्ताः कर्मदेवाः। सृष्ट्यादौ उत्पन्नाः आजानदेवाः। ते कर्मदेवेभ्यः श्रेष्ठाः। ये शतं कर्मदेवानाम् आनन्दाः स एक आजानदेवानाम् आनन्दः। (बृह.मा. ४.१.३५) इति श्रुतेः। सूर्यादय आजानदेवाः॥१७॥

सायणभाष्यम् – उत्तरनारायण आदित्य को मानते है। ये षट् ऋचाएं उत्तरनारायण की है। उनमे भी आदि की तीन त्रिष्टुभ फिर दो अनुष्टुप और अन्त की त्रिष्टुप् में है। श्रीनारायण देवता मन्त्र आदित्य द्वारा विनियुक्त माने गये है। पूर्वकल्पान्तरीयेषु पुरुषमेधयज्ञादि भावम् आपन्नः परम्पराकोटिसञ्चारीति श्रूयते। जो जल के संसर्ग से और पृथिवी के संसर्ग से उत्पन्न हुआ। पृथिवी पर जलग्रहण करके पञ्च महाभूतों का उपलक्षण किया। उसके बाद दिन बना, प्रश्न निरूपण द्वारा अध्यधिकार रूप में। फिर पंचभूतों से जो पहले उत्पन्न हुआ। भृद् भरणे। पुण्य संस्कार से अनुरञ्जित भूतपञ्च व्याप्त हुए। इस प्रकार उत्पन्न होने के पश्चात् रस से विश्वकर्मा बने। रस अर्थात राग, उस रस से विश्वकर्मा, विश्वकर्मा के राग से समस्त जगत् के कर्ता के लिए ईश्वरेच्छा

उत्पन्न हुई। सूक्ष्म शरीर में अवस्थित सूक्ष्मदेह का त्वष्टा श्रीभगवान् आदित्य ने जो रूप धारण किया है कालात्मक सविता ने विशिष्ट रूप करते हुए आता है उसकी मृत्यु से पूर्व मनुष्य के देवत्व से ही उसकी उत्पत्ति या जन्म हुआ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिं मृत्युमेंति नान्यः पन्थां विद्यतेऽयनाय॥१८॥

व्याख्या – इस सर्वोत्कृष्ट देशकाल आदि के भेद से रहित सूर्यमण्डलस्थ पुरुष को में जानता हूँ, ये ऋषि का वचन है। किस प्रकार से। आदित्य के समान वर्ण है जिसका उसको अन्य उपमा से रहित अर्थात् स्वप्रकाश में स्थित तथा तमोरहित। तमशब्द का अर्थ अविद्या है। अविद्या से भेद दर्शन होता है। उसी आदित्य को जानकर मृत्यु को पारकर परब्रह्म को प्राप्त करता है। इसके अलावा अन्य मार्ग नहीं मार्ग नहीं है। अर्थात् पुरुष को जानकर ही मृत्यु को पार किया जाता है। मृत्यु से बचने के लिए इसके अलावा अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। सूर्यमण्डल पुरुष अर्थात् आत्मरूप को ही जानकर मुक्ति होती है।।१८।।

सायणभाष्यम् – इस प्रतीत होते हुए पुरुष को **पुरि शेते इति पुरुषः**। इस पुरुष से भिन्न व्यवहार होता है –महान्त अर्थात अपरिच्छिन्न और अनन्त। आदित्यवर्ण– **आदित्यस्य वर्ण इव वर्णो यस्य स आदित्यवर्णः** अर्थात् स्वयं प्रकाश स्वरूप। अज्ञान के आकार से ऊपर अपने तेज से अज्ञानान्धकार को निम्न करके इस वर्तमान महान्त अर्थात् आदित्यान्तस्थ पूर्ण पुरुष का साक्षाद् दर्शन, अहं–शोधित–पदार्थ में जानता हूँ।इस महान पुरुष आदित्य वर्ण पुरुष को जानो। इस आदित्य वर्ण महान्त पुरुष को जाना या नहीं जाना इसी व्यतिहार से मैं जानता हूँ। सभी उपनिषदों के तात्पर्य का प्रतिपाद्यार्थ कहा है – **तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमिति**। सहस्रशीर्ष इत्यादि से अभिहित परमेश्वर है उसी को जानकर ही मृत्यु युक्त संसार को पार किया जा सकता है अन्य किसी कर्म आदि से नहीं। इसप्रकार उसी को जानकर ही मृत्यु को पार करके स्वस्वरूप को प्राप्त करता है या परब्रह्म के पास जाता है, ये उपाय ही है।। स्वस्वरूप की प्राप्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है।।१८।।

पाठगत प्रश्न 18.4

1. अद्भ्यः सम्भृतः इति पुरुषसूक्त में वर्णित मन्त्र कहाँ से लिए गये है?
2. पुरुषसूक्त में किसने आदित्यरूप को प्राप्त किया?
3. देवघ्त्वमाजानघ्मग्रेघ यहाँ व्याख्याकार ने कितने प्रकार के देव बताए है और उनके भेद?
4. वेदाघ्हमेघ्तं पुरुघ्षं मघ्हान्तघ्म् यहाँ पुरुष का महत्त्व क्या है?
5. आदित्यवर्ण तमसः परस्तात् यहाँ तमः पदार्थ क्या है?
6. किसकी जानकर मृत्यु को पार किया जा सकता है?
7. नान्यः पन्थाः अयनाय विद्यते। कहाँ जाने के लिए और कोनसा पन्थ है?

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥१९॥

व्याख्या – किंभूत: इति विशिष्यते। सर्वात्मा प्रजापति हृदय में स्थित होते हुए भी गर्भ में विचरण करता है। और जो उत्पद्यमान नहीं होते हुए भी बहुत रूपों में कार्य कारण रूप से रहता है। माया द्वारा प्रपञ्च रूप से उत्पन्न होता है। ब्रह्मविद लोग उस प्रजापति की योनि में स्थान देखते हैं और **अहं ब्रह्मास्मि** इस रूप में जानते हैं। समस्त विश्व और पंचभूत जात पदार्थ उसी कारणरूप ब्रह्म में स्थित है।

सायणभाष्य – प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजा:। तासां पति:,प्रजापति:। सभी प्राणियों के उदरमध्य में अन्तर्यामिरूप से ये विचरण करता है और वो स्वरूप से अजायमान अर्थात् देहादि से जन्म शून्य होते हुए भी उपाधिवश बहुत प्रकार से उत्पन्न होता है। अज गतिविक्षेपणयो:। अपनी माया से समस्त अजायमान से संमोहित होते हुए भी स्वयं बहुधा उत्पन्न होता है। उसके अनेक रूप होते हुए भी विद्वान् लोग उस प्रजापति की योनि में स्थान और अपने स्वरूप का साक्षात् करते हैं। उस प्रजापति में ही स्वकारण भूत समस्त विश्व और पंचभूत रहते हैं।१९॥

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहित:।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥२०॥

व्याख्या – जो प्रजापति आदित्य रूप देव के लिए दीखता है। आदित्य रूप में अत्यधिक तेज से चमकता है और जिसको देवों के पुरोहित सभी कार्यों में आगे रखते है (य: देवानां पुर: अग्रे इन्द्रत्वेन स्थित:। – इति उवट:)। जो देवों के साथ ब्रह्मरूप में सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। उस आदित्य को नमस्कार है। रोचते असौ इति रुच:। तस्मै दीप्यमानाय। इगुपध ... (पा.३.१.१३५) इति कप्रत्यय:। तथा ब्राह्मये ब्राह्मण: अपत्यं ब्राह्मि:। इञ प्रत्यय और टिलोप। ब्रह्म के अवयव भूत या ब्रह्मपुरुष के पुत्र के लिए॥२०॥

सायणभाष्यम् – देवों के लिए तप करोति प्रकाशयति च प्रकाशते। यो देवानां पुरोहित:। जो देवों का आगे से हित करता है। पूर्वो यो देवेभ्य:। जिस देव से पूर्व सभी देव अग्रणीरूप से उत्पन्न हुए। उस प्रकाश स्वरूप ब्रह्म के लिए नमस्कार। **ब्रह्मणो योग्यं ब्राह्मं**, उस प्रकाश स्वरूप आदित्य को नमस्कार॥२०॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे॥२१॥

व्याख्या – देवों ने शोभायमान या देदीप्यमान ब्रह्म के पुत्र आदित्य को सर्वप्रथम उत्पन्न करते हुए उसको कुछ वचन कहे। क्या कहा? ब्राह्मो जातौ (पा.६.४.१७१) इति निपात:। वो क्या कहा वो बताते है। य ब्राह्मण: हे आदित्य तुझे इस उक्तविधि से उत्पन्न किया उस आदित्य के वश में देव रहते हैं। आदित्य का उपासक जगत पूज्य होता है।

टिप्पणियाँ

सायणभाष्यम् – शोभायमान **ब्राह्मं ब्रह्मावयवभूतं जातावित्यनिटिलोपे च ब्राह्म** रूप बनता है। देदीप्यमान आदित्य जो ब्राह्मण के समान है। उस आदित्य को जानकर उस ब्रह्म के वश में देव है। परब्रह्म के वशवर्ति देव उसके वश के ही हो जाते है।।२१।।

श्रीश्चं ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण।।२२।।

व्याख्या – ऋषि आदित्य से प्रार्थना करते है। हे आदित्य, लक्ष्मी तेरी पत्नी है। जाया अर्थात् तेरे वश में है। (अस्य पुरुषस्य एते अवयवा: इति। उवट:)। जो सभी जनों के आश्रयणीय होती है वो लक्ष्मी। रात दिन तेरे पास में रहने वाली होने पर। नक्षत्र, तारे तेरे रूप है। तेरे ही तेज से तेज का गोलक सूर्य प्रकाशित होता है।द्यावा और पृथिवी तेरे मुख को कहते है। इस प्रकार जो तुझसे मांगते है। इष्णन् अर्थात् कर्मफल का इच्छुक। इषु इच्छायां धातु से विकरण प्रत्यय। या इष आभीक्ष्ण्ये ऋ्यादि यहाँ पर इच्छार्थक है। क्या कामना करते है वो बताते हुए कहते है। वह मेरा परलोक अच्छा होवे अर्थात् समस्त लोक मेरी कामना पूर्ण करने वाले हो। मैं मुक्त होऊ। **सर्वं खल्विदं ब्रह्मये** श्रुति वाक्य है।२२।।

सायणभाष्य – श्री अर्थात् लक्ष्मी तेरी पत्नी है।। आदित्य जिससे देखता है वो लक्ष्मी है। श्री शोभानुरूप होती है। लक्ष्मी दीप्ति लक्षण रूपिणी है। वे दोनों पत्नियाँ है, वे कौन?दिन और रात जो पत्नीत्व रूप में माने जाने पर उसके साथ रहने वाली होने से है। अश्विन्यादि नक्षत्र तेरे रूप है अर्थात् तेरे मुख है। इस प्रकार का रूप मैं तुझसे माँगना चाहता हूँ। इष्णं निषाणामुं म इषाण- सर्वलोकं म इषाण। ये दो पदरूप है जो इषुधातु के रूप और विकरण प्रत्यय है। इष्णन् अर्थात् कर्मफल का इच्छुक किं तद् इति। अमुं म इषाण- इस लोक को मेरे कर्मफल लिए चाहा, सर्वलोक मेरे लिए ही बनाया अर्थात ये सब में ही हूँ और सभी को अपनी तरह से चाहता हूँ या कामना करता हूँ। इसप्रकार आदित्य की स्तुति करते है।।२२।।

पाठगत प्रश्न 18.5

1. प्रजापतिश्चरति गर्भे ... मन्त्रांश किस सूक्त का है और यहाँ प्रजापति कौन है?
2. तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा:। यहाँ किसकी योनि का वर्णन है और कौनसी योनि तथा वो धीरजन कौन है?
3. तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।यहाँ किस पर स्थित होने का प्रसंग है?
4. पूर्वो यो देवेभ्यो जात:। यहाँ किसकी उत्पत्ति का का वर्णन है?
5. नमो रुचाय ब्राह्मये। इसमें रुचशब्द का अर्थ क्या है?और ब्राह्मयेका मूलशब्द और अर्थलिखो।
6. तस्य देवा असन् वशे इसमें किसके वश में देव है और उसका तात्पर्य क्या है?
7. देवा अग्रे तदब्रुवन् यहां क्या कहा?
8. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ इसमें श्री कौन है और किसकी पत्नी है?

पुरुष स्वरूप को बताना अत्यन्त कठिन कार्य है। विभिन्न प्रकार से उसका प्रकटन किया जा सकता है। पुरुषसूक्त सुप्रसिद्ध भी है। सर्वत्र पूजादियों में भी इसका प्रयोग विशेष रूप से होता है। यहां पुरुष स्वरूप को दो प्रकार से बताया है। इससे ज्ञात होता है कि एक ही विषय को विभिन्न शैली से प्रकटन सम्भव है। अत: यहाँ प्रदत्त प्रकार द्वारा भिन्न प्रकार से छात्रको अपना उत्तर सिद्ध करना चाहिए। क्योंकि पुरुष स्वरूप वैसा ही होता है। उसमे भेद नहीं होता है, भेद तो प्रकट शैली में होता है। अत: यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं है।

18.4 पुरुषस्वरूप

ऋग्वेद के दशम मण्डल के नवतितम (९०वां) सहस्रशीर्ष ... १६ ऋचा वाला सूक्त पुरुषसूक्त कहलाता है। इस सूक्त का देवता अव्यक्त महदादिविलक्षण चेतन पुरुष प्रजापति है। ये पुरुष वैदिक परम्परा की पराकाष्ठा तथा अन्य स्थितियों को मानता है। इसीलिए कठोपनिषद में कहा गया है-

महत: परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुष: पर:।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गति:।।इति।।

पुरि शेते इस विग्रह से पुरुष शब्द की निष्पत्ति हुई है। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में कहा है - ''अथ यस्मात् पुरुषमेधो नामेमे वै लोका: पूरयमेव पुरुषोऽयं पवते सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात् पुरुष:।'' इति। पुरुषसूक्त में उसके स्वरूप का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

मानवों के सामान्यत: एक शिर, लोचन युगल तथा पादयुगल होते है, परन्तु इस पुरुष के सर्वव्यापी, सर्वज्ञ तथा सर्वत्र विचरणशील होने से अनेक विशिष्टताए है। इसलिए इस पुरुष के सहस्र शिर तथा सहस्र नेत्र और सहस्रपाद है। यहाँ सहस्र शब्द उपलक्षण मात्र है, सहस्रपद असङ्ख्य अर्थ का द्योतक है। इसीलिए कहा है -

सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।इति।।

जैसे इस कल्प में वर्तमान सभी प्राणि देह वाले विराट्पुरुष के अवयव है, वैसे ही अतीत और आगामी कल्प में भी रहने वाले समस्त प्राणी अवयव है। उस परमात्मा या पुरुष ही समस्त जगत् का स्वामी है कोई और नहीं। इस समस्त जगत् में परमात्मा के स्वामित्व के बारे में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है- ''विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्'' (१०.४२) इति। इसलिए ये सर्ववेदान्तवित् परमात्मा स्वयं ही अपनी माया से विराड्-देहरूपी ब्रह्माण्ड रूप का सृजन करके उसमे जीवरूप में प्रवेश करके ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीव कहलाया।

इस विराट्पुरुष के अङ्गों से ही अखिल प्रपञ्च उत्पन्न हुए जिससे उसका महत्त्व स्पष्ट ही है। क्योंकि प्राचीन देवों ने यज्ञ से समस्त प्रपञ्च की सृजना की। किन्तु बाह्य द्रव्य अभाव से हवि के विना यज्ञ असम्भवत्व से और पुरुष स्वरूप से देवों ने हवि द्वारा मानसयाग किया, और कहा - ''यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत'' इति। उसी यज्ञ से ऋग, साम, यजू, गायत्र्यादि छन्द तथा अश्वगर्दभ आदि पशु उत्पन्न हुए। इस महान पुरुष के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई। राजन्य

टिप्पणियाँ

जो क्षत्रियत्व जाति वाले पुरुष उसकी बाहु से निष्पादित हुए। जंघाओं से वैश्य तथा पादों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। कहा है –

ब्राह्मणोऽस्य मुखामासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१३॥इति॥

इसी प्रकार प्रजापति के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, चक्षु से रवि, मुख से इन्द्र और अग्नि देव तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुआ। अन्तरीक्षादि लोक प्रजापति की नाभि से उत्पन्न हुए,शीर्ष से द्यौ उत्पन्न हुआ, पाद से भूमि तथा श्रोत्र से दिशाएं उत्पन्न हुई। इस प्रकार दधि आज्यादि द्रव्य गवादि पशु, ऋगादि चारों वेद, ब्राह्मण आदि मनुष्य, प्रकृतिस्थ सूर्यचन्द्र आदि सभी उसी प्रजापति के अङ्गों से उत्पन्न होने से कल्याणकारी है।

18.5 पुरुषस्वरूप

वेद ही समस्त धर्म का मूल है। ऐहिक और परलोक दोनों प्रकार के फलों से वाप्त अपूर्व साधन को जो बताता है वो भगवान् वेद है। यद्यपि उनमें कर्मकाण्ड बाहुल्यक मन्त्र प्रचूरता से प्राप्त होते है फिर भी आत्मतत्त्व प्रतिपादक मन्त्रों का महत्व भी कम नहीं है। ये वेद भगवान से अभिन्न और परोक्ष होने से दुर्गम है। आत्मा से आत्मतत्त्व का निर्णय ही इसका मुख्य लक्ष्य है। ये वेद कर्मप्रधानता से साधकों के हित कर लिए कर्मविधान का वर्णन करते है। अत एव कर्मों के साथ तत्त्वप्रतिपादनपरक सूक्त स्थान-स्थान पर उल्लेखित किये गये है। उनमें पुरुषसूक्त अतिप्रसिद्ध है।

ये शुक्लयजुर्वेद का एकत्रिंशाध्याय (३१वां) सूक्त है। ये ऋग्वेद के अष्टम अष्टक का षष्ठसूक्त है। ये सूक्त षोडश मन्त्रों से सुशोभित है। इन ऋचाओं के द्रष्टा ऋषिर्नारायण है। इसका देवता पुरुष है। अन्तिम ऋचाओं में त्रिष्टुप् छन्द तथा अवशिष्ट ऋचाओं में अनुष्टुप है। इस सूक्त में पुरुष स्वरूप निरूपित है। ये निरूपित पुरुष कौन है? तो कहते है – **पुरं शरीरं तस्मिन् शेते इति पुरुषः।** इस विषय में महाभारत में कहा है –

नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम्।
व्याप्य शेते महात्मा यस्तस्मात् पुरुष उच्यते॥ इति।

यद्वा अस्तेः व्यत्यस्ताक्षरयोगात् आसीत् पुरा पूर्वमेव ऐसा विग्रह करके पुरुष शब्द बना। इसलिए श्रुति कहती है – पूर्व में भी कहा कि ये था और है। ये ही पुरुष का पुरुषत्व है। अथवा **पुरुषु भूरिषु उत्कर्षशालिषु सत्त्वेषु सीदतीति। पुरुणि फलानि सनोति इदातीति वा। पुरुणि भुवनानि संहारसमये स्यति अन्तं करोतीति वा, पूर्णत्वात् पूरणाद् वा सदनात् वा पुरुष इति।**

उपर्युक्त अर्थ विशिष्ट वाला अव्यक्त महदादि विलक्षण चेतनस्वरूप तथा सभी प्राणियों का समष्टि रूप में ब्रह्माण्डदेह विराडाख्य पुरुष जो अनन्तशिर, चक्षु, चरणों वाला है। इनसे पुरुष का सर्वव्यापित्व कहा गया है। स्मृति में भी आकाश, वायु, अग्नि, सलिल, महि, ज्योतिष, सत्त्व दिशाएं, द्रुमयें सभी पुरुष के शरीर के रूप में कल्पित है। इस प्रकार से अनुभूत ये पुरुष सभी प्राणियों के नाभि से दश अङ्गुल छोड़कर हृदय में बैठा है। यहां इसका अर्थ अङ्गुष्ठमात्र है। ये पुरुष अन्तरात्मा

सदामनुष्यों के हृदय में सन्निविष्ट रहता है। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशत्, ये श्रुति का प्रमाण है। अथवा ये पुरुष ब्रह्माण्ड गोलकरूप भूमि में सभी ओर से ऊर्ध्व और अधोरूप में व्याप्त होकर विराजित है। ऐसे ब्रह्मवादियों का ब्रह्म के जैसे पुरुष का जगत् उत्पादन करना श्रुतिसम्मत है।

ये जो कुछ वर्तमान जगद् दिख रहा है, वो सब पुरुष का स्वरूप ही है। ये अज्ञानियों की दृष्टि में जगत् तथा ज्ञानियों की दृष्टि में वो पुरुष ही हैं। रज्जु में सर्पज्ञान के समान पुरुष में जगत ज्ञान भी अज्ञान है। न केवल वर्तमान ही बल्कि अतीत और भविष्य जगत् भी पुरुष ही है इस प्रकार वेद ने पुरुष के नित्यत्व को कहा है। ये ही पुरुष अमृतत्व का तथा मुक्ति का स्वामी है। वो ही मोक्ष का ईश्वर है जो न कभी मरता है। लेकिन पुरुष प्राणियों के कर्मफल भोग के कारण अपनी कारणावस्था को छोड़कर परिदृश्यमान जगदवस्था को प्राप्त करता हैद्य ये पुरुष प्राणियों के कर्मफलभोग के लिए जगदवस्था को प्राप्त करता है इसलिए ये उसका वास्तविक रूप नहीं है।

अतीत, अनागत तथा वर्तमान रूप निखिल जगत् पुरुष का अपने विशेष सामर्थ्य का परिणाम है। वास्तव में तो पुरुष इससे भी अधिक सामर्थ्यशाली है। इसके कालत्रय वर्तीचतुर्थांश से समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। अवशिष्ट त्रिपाद् विनाश रहित सत् अर्थात् प्रकाशरूप में अवस्थित है।

18.6 पुरुषसूक्त का सारांश

शुक्लयजुर्वेद के एकत्रिंशत्तम (३१वें) अध्याय में पुरुषसूक्त वर्णित है। इस सूक्त में षोडश(१६)मन्त्र कहे गये है।इसका ऋषि नारायण तथा पुरुष देवता है। अन्तिम मन्त्रत्रिष्टुप् छन्द में है।

अनन्तपाद-लोचन-मस्तक से युक्त परमेश्वर पुरुष ब्रह्माण्डगोलक रूप धरित्री पर सब ओर व्याप्त है तथा प्राणियों के हृदय में दशाङ्गुल परिमित स्थान को छोड़कर अवस्थित हैं। जो सब उत्पन्न है या जो सब उत्पन्न होने वाला है वो सब पुरुष ही हैं। अतीत, भविष्य और वर्तमान कालिक सभी वस्तुएं भी पुरुष है। ये पुरुष अमरत्व का स्वामी हैं। और जो ये अन्न से बढ़ते है उनका भी स्वामी भी पुरुष ही है। अतीतादि कालत्रयवर्ती प्राणिजात इसका चतुर्थ अंश है। अवशिष्ट त्रिपाद् विनाश रहित स्वप्रकाश स्वरूप में स्वर्गलोक में विद्यमान है। ये त्रिकालात्मक जगत् पुरुष की महिमा है। ये पुरुष का वास्तविक स्वरूप नहीं है। ये अपनी महिमा से भी बढ़कर है। ये ब्रह्म स्वरूप पुरुष तीन चौथाई अंश में अज्ञानरुपी कार्यसंसार से बाहर इन गुणदोषों से पृथक हरते हुए ऊपर स्थित अमृतलोक में स्थित है। उसका ही ये चतुर्थांश इस मायामय लोक के रूप में पुनः उत्पन्न हुआ। सृष्टि और संहार पुनः पुनः आते हैं। उसके बाद इस माया याग में आने के बाद चेतन अचेतन प्राणी देवमनुष्यादि रूप से विविध प्रकार के होते हुए चारों दिशाओं में व्याप्त हैं।

उस आदिपुरुष से विराड् उत्पन्न हुआ। उसी देह को अधिकरण करके एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उस सर्वज्ञ ने अपनी माया से विराट देह या विराट रूप को बनाकर स्वयं ही जीवरूप में प्रविष्ट होकर ब्रह्माण्डाभिमानी जीव बना या हुआ। वो विराट के अतिरिक्त मनुष्यादि रूप में बना। उसने क्रमशः मनुष्यादि जीवों, भूमि और जीव शरीरों को बनाया।

शरीर के उत्पन्न होने पर देवों ने बाद की सृष्टि की सिद्धि के लिए उस पुरुष को हविष्ट के द्वारा स्मरण करके मानस याग की कल्पना की। उस याग की ईंधन ग्रीष्म ऋतु, आज्य वसन्त ऋतु तथा शरद ऋतु हवि थी और इस काल्पिक याग की समिधाएँ गायत्र्यादि सप्त छन्द थे। १२ मास पञ्च ऋतुएँ, और ये तीन लोक और अदित्य एकविंशति (२१) पदार्थ एकविंशति (२१) लकड़ी रूपी इंधन उत्पन्न हुए। यज्ञ के साधन रूप में उस पुरुष को पशुत्व भाव से खूंटे से बांधकर मानस यज्ञ में सृष्टि के साधनों के अनुरूप प्रजापति आदि और उसके अनुकूल देवों और ऋषियों ने शुद्ध किया। फिर दधिमिश्रित आज्य अर्थात् घी बनाया। देवों ने उस दहीमिश्रित घी से वायव्य, आरण्य और ग्राम्य पशुओं को उत्पन्न किया। फिर उसी मुख से खग-मृग- बकरी -मेष- अश्व -नीलगाय -गर्धव-धेनु उत्पन्न हुए। क्रमशः गायत्र्यादि छन्द उत्पन्न हुए। ऋगादि वेद भी उसी यज्ञ से उत्पन्न हुए।

यज्ञपुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य, पैरों से शूद्र ये वर्णचतुष्टय उत्पन्न हुआ। फिर उसी मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि, कर्ण से वायु और प्राण उत्पन्न हुए। जैसे देवों ने प्रजापति के मन आदि से चन्द्रादि की कल्पना की उसी प्रकार देवों ने उसकी नाभि से अन्तरीक्ष, शिर से स्वर्ग, पाद से भूमि, प्राच्यादि दिशा तथा भूः भुव और स्वः तीन लोक उत्पन्न किये। इसके लिए पुरुषसूक्त में कहा है -

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥१४॥

पाठ का सार

इस पुरुषसूक्त में प्रारम्भ में पुरुष स्वरूप वर्णित है। विराट स्वरूप पुरुष सहस्र शिरों से युक्त और सहस्राक्ष से युक्त है। यद्यपि वो समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर रहता है। फिर भी उसका दशाङ्गुल परिमित स्थान में मुख्यतः निवास है। इससे उसका ब्रह्माण्ड से बाहर भी विद्यमानता ज्ञात होती है। जो कुछ भी दृश्यमान है वो सब वही पुरुष है और वो भूत, भविष्यत् अतीत कालीन है। इससे उसका अमरत्व ज्ञात होता है। इसकी महिमा जो कि इसके ऐश्वर्य से भी महान है। वो समस्त स्थावर और जङ्गम वस्तुओं में विद्यमान है। उस आदिपुरुष से विराट् उत्पन्न हुआ और विराट से जीवात्मा उत्पन्न हुआ। उस विराट से उत्पन्न होने बाद स्वयं ही देव और मनुष्य रूप से पृथक् हो गये। उसके बाद पृथिवी उत्पन्न हुई, फिर जीवात्माओं के लिए शरीर निर्मित हुआ। जब देवों ने पुरुष रूप हवि से यज्ञ सम्पादित किया तब वसन्त ऋतु घृत, ग्रीष्म ऋतु ईन्धन और शरद ऋतु हवि के रूप में थी। उसके बाद पुरुष का जल से स्नानादि करना वर्णित है। फिर पुरुष ने वायु में विचरण करते हुए पक्षी, आरण्यक पशु और ग्राम्य पशून् उत्पन्न किये। इस प्रकार इस सर्वहुत

यज्ञ से ऋगादिवेद मन्त्र और गायत्र्यादि छन्द उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से अश्व, पशु, गायें इत्यादि उत्पन्न हुए। इस पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य, पैरों से शूद्र, नाभिप्रदेश से अन्तरिक्ष मण्डल, शिर से द्युलोक, पैरों से भूमि, कर्ण से दिशाएं उत्पन्न हुई। इसप्रकार लोक की रचना हुई। सूक्त के अन्त में ये वर्णित है कि जो देवों ने यज्ञ से यज्ञपुरुष की कल्पना के है वो ही धर्म है।उसके उपासक स्वर्गलोक को प्राप्त करते है।

पाठांत प्रश्न

1. पुरुषसूक्त का सार लिखो।
2. पुरुष के किस अङ्ग से क्या उत्पन्न हुआ, इसकी मन्त्रानुसार व्याख्या करो।
3. सर्वहुत यज्ञ से क्या क्या उत्पन्न हुआ, इसकी मन्त्रानुसार व्याख्या करो।
4. पुरुषस्वरूप का वर्णन करो।
5. एतावानस्य महिमा ... इस प्रतीकरूप में उद्धृत मन्त्र को सम्पूर्ण लिखकर व्याख्या करो।
6. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः ... इस प्रतीकरूप में उद्धृत मन्त्र को सम्पूर्ण लिखकर व्याख्या करो।
7. सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि ... इस प्रतीकरूप में उद्धृत मन्त्र को सम्पूर्ण लिखकर व्याख्या करो।
8. वेदाहमेतं पुरुषम् ... इस प्रतीकरूप में उद्धृत मन्त्र को सम्पूर्ण लिखकर व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

18.1

1. नारायणऋषि, अनुष्टुप् छन्द, १६-त्रिष्टुप्, विराट् पुरुष देवता।
2. ब्रह्माण्ड से बाहर भी सभी ओर व्याप्त होकर अवस्थित है।
3. स्वामी।
4. तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले समस्त प्राणी।
5. द्युलोक में।
6. ये जगत् ब्रह्मस्वरूप की अपेक्षा अल्प होने से।
7. विश्वानि।
8. उत्पूर्वकात् इधातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में।

टिप्पणियाँ

9. साशन अर्थात् भोजनादिव्यवहार से युक्त चेतनप्राणजात तथा अनशन अर्थात्उससे रहित अचेतन गिरि, नद्यादि।

10. शरीर।

18.2

1. वसन्त।
2. ग्रीष्म।
3. शरत्।
4. साध्यसृष्टि और साधनयोग्य प्रजापति आदि तदनुकुलऋषि जो मन्त्रद्रष्टा है।
5. सर्वहुत यज्ञ से।
6. दोनों (ऊपर - नीचे) दांत है जिनके।
7. पृष्-धातु से शतृप्रत्यय होने पर और पृषत् च तद् आज्यं च पृषदाज्यम्।
8. प्रपूर्वक उक्ष्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में।
9. वायुशब्द से यत्प्रत्यय, द्वितीयाबहुवचन का रूप।
10. जन्-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में।

18.3

1. ब्राह्मण।
2. क्षत्रिय।
3. वैश्य।
4. शूद्र।
5. मन से।
6. सूर्य।
7. इन्द्र और अग्नि।
8. अन्तरिक्ष।
9. द्यौ।
10. भूमि।

18.4

1. अद्भ्यः सम्भृतः ... ये पुरुषसूक्त में कहे गये छः मन्त्रशुक्लयजुर्वेदीय है। वो पुरुषसुक्त का ही अंश है जो उत्तरनारायणीयसूक्त है। शुक्लयजुर्वेद। ३१ अध्याय।
2. पूर्वकल्प में पुरुषमेध के यजनकर्ता ने आदित्यरूप प्राप्त किया।
3. देवत्वमाजानमग्रे यहाँ व्याख्याकार ने द्विविध देव कहे है। कर्मदेव और आजान देव। कर्म से उत्कृष्टता से देवत्व को प्राप्त किया है वे कर्मदेव। सृष्टी के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए जो देव वे आजानदेव है। जो की कर्म देवों से श्रेष्ठ है।
4. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् ... यहाँ पुरुष का महत्त्व ही सर्वोत्कृष्टतायुक्त और देशकाल आदि के भेद से रहित है।

5. आदित्यवर्ण तमसः परस्तात् ... यहाँ तमपदार्थ अविद्या है।

6. जो तम से परे है, उस महान् देशकाल आदि भेद से रहित आदित्यवर्ण पुरुष को जानकर मृत्यु को भी पार किया जा सकता है।

7. नान्यः पन्थाः अयनाय विद्यते। मृत्यु के अतिक्रमण अर्थात् मृत्युराहित्य के अलावा कोई मार्ग नहीं है - जो तम से परे है उस महान् देशकाल आदि भेद से रहित आदित्यवर्ण पुरुष को जानकर ही मरण का अतिक्रम हो सकता है अन्य कोई उपाय नहीं है।

18.5

1. प्रजापतिश्चरति गर्भे ... ये मन्त्रांश पुरुषसूक्त का है। परन्तु वस्तुतः शुक्लयजुर्वेद में विद्यमान नारायणीयसूक्त का है। यहाँ प्रजापतिसर्वात्मा आदित्य पुरुष है,जो माया से प्रपञ्चरूप से उत्पन्न हुआ है।

2. पुरुषसूक्त में कहे गये पुरुष का योनि अर्थात् कारणस्थान के स्वरूप को धीर अर्थात् ब्रह्मवेत्ता देखते है या जानते है, अहं ब्रह्मास्मि इस रूप ने जानते है।

3. तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।। यहाँ कारणात्मब्रह्म पुरुष पर स्थित होने का प्रसंग है।

4. पूर्वो यो देवेभ्यो जातः। यहाँ जो देवों के लिए यज्ञ कर रहा है या जो देवोंका पुरोहित है, उस प्रजापति की उत्पत्ति का वर्णन है।

5. नमो रुचाय ब्राह्मये। यहाँ रोचते असौ इति रुचः, रुचशब्द का अर्थ दीप्यमान या शोभायमान है। ब्राह्मये में मूलशब्दब्राह्मिः है। ब्रह्म का पुत्र ब्राह्मिः।

6. देवों ने ब्रह्म के पुत्र आदित्य का उल्लेख करते हुए कहा है कि -यो ब्राह्मणः आदित्यम् उक्तविधिना उत्पन्नम् जानीयात् तस्य देवा वशे स्युः।तात्पर्य यह है कि आदित्य के उपासक जगत्पूज्य होते है।

7. देवों ने ब्रह्म के पुत्र आदित्य का उल्लेख करते हुए कहा है कि -यो ब्राह्मणः आदित्यम् उक्तविधिना उत्पन्नम् जानीयात् तस्य देवा वशे स्युः।तात्पर्य यह है कि आदित्य के उपासक जगत्पूज्य होते है।

8. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ यहाँ आदित्य पुरुष जिससे सभी लोग जिसके आश्रयी होते है वह श्री अर्थात् लक्ष्मी है। श्रीयते अनया श्रीः संपद् इत्यर्थः। आदित्यपुरुष और प्रजापति की पत्नियाँ है।

॥ अठारहवां पाठ समाप्त ॥

टिप्पणियाँ

19

देवीसूक्त और श्रद्धासूक्त

भारतीय जीवन में और संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सबसे ऊपर है। भारत में धर्म व्यवस्था वेदों से ही लिया गया है। वेद धर्म का निरूपण करने में पृथक् प्रमाण है। स्मृति आदि तो वेदमूल का ही प्रमाण को स्वीकार करते है। इसलिए श्रुति स्मृति में विरोध होने पर श्रुति को ही प्रधान मानना चाहिए। केवल धर्ममूल होने से ही वेदों का आदर नहीं किया जाता है, अपितु विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ होने से और ऊचें तत्वों के निरूपण करने से आदरविशेष को हमेशा प्राप्त होते है। प्राचीन धर्मसमाज-व्यवहार-आदि विषयों का ज्ञान वेद ही करा सकते है। धर्म आदि पुरुषार्थ जिसमे वे वेद कहलाते है। सायण ने तो अपौरुषेय वाक्य को वेद कहा है। इष्ट प्राप्ति का और अनिष्ट के निवारण के लिए जो अलौकिक उपाय बताता है वह वेद कहलाता है। और कारिका भी है -

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥" इति।

और वे वेद चार है। और वे है - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद हैं।

इस पाठ में देवीसूक्त और श्रद्धासूक्त दो सूक्तों को लिया गया है। श्रद्धासूक्त की प्रस्तावना आदि पाठ के उत्तरभाग में दी गई है। प्रारम्भ में देवीसूक्त का वर्णन है।

ऋग्वेद के दशममण्डल का एक सौ पच्चीसवाँ सूक्त वाक्-सूक्त है। इस प्रकृत सूक्त का ऋषि आम्भृणी वाग् है। त्रिष्टुभ आदि छन्दों में यह सूक्त है। इस प्रकृतसूक्त का देवता आत्मा है और इस प्रकृतपाठ में देवीसूक्त का व्याख्यान है। व्याकरण विचार भी स्थान स्थान पर पाठकों के ज्ञान के लिये किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहितापाठ जान पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों का पदपाठ जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय करने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का व्याख्यान करने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों का सरलार्थ को जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में;
- सूक्त का तात्पर्य और सूक्त के तत्त्व को जान पाने में;
- सूक्त का अर्थ जानकर के सूक्त की महिमा को जान पाने में।

देवीसूक्त

ऋषि- वाक्। छन्द- त्रिष्टुप्, २ जगती। देवता- वाक्।

19.1 मूलपाठ

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये ३ यजमानाय सुन्वते॥२॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥५॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥६॥

टिप्पणियाँ

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥७॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव॥८॥

19.2 अब मूलपाठ को जानेंगे

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१॥

पदपाठ – अहम्। रुद्रेभिः। वसुऽभिः। चरामि। अहम्। आदित्यैः। उत। विश्वऽदेवैः॥ अहम्। मित्रावरुणा। उभा। बिभर्मि। अहम्। इन्द्राग्नी इति। अहम्। अश्विना। उभा॥१॥

अन्वय – अहं रुद्रेभिः वसुभिः चरामि, अहम् आदित्यैः उत् विश्वदेवैः (चरामि), अहं मित्रावरुणा उभा विभर्मि, अहम् इन्द्राग्नी अहम् उभा अश्विना (बिभर्मि)।

व्याख्या – मैं सूक्त की द्रष्टा वागाम्भृणी जो ब्रह्म जगत का कारण उसके समान होती हूँ, रुद्र के द्वारा रुद्र ग्यारह है। इस प्रकार की मैं तीसरी हूँ। मैं उमके साथ विचरण करती हूँ। इस प्रकार वसु के साथ भी उसी के समान आचरण करती हूँ। तथा ब्रह्मा के समान शरीर को धारण करती हूँ। इन्द्र अग्नि को भी मैं धारण करती हूँ। दोनों अश्विन कुमारों को भी मैं धारण करता हूँ। मेरे में ही सभी जगत की शक्ति चांदी के समान दिखाई देती है। और माया जगत का विवर्त कारण है। उस प्रकार की माया के द्वारा आधार होने से सङ्ग का भी ब्रह्म ने सभी की उत्पति की है।

सरलार्थ – मैं (वागाम्भृणी) रुद्रगण के साथ उनके समान होकर विचरण करती हूँ। मैं वसुगण, आदित्य गण, और विश्वदेव गण के साथ उनके समान होकर विचरण करती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूँ। मैं ही इन्द्र अग्नि और दोनों अश्विनीकुमार को धारण करती हूँ।

व्याकरण

- **मित्रावरुणा** – मित्र और वरुण मित्रावरुणा। मित्रावरुणौ इसके स्थान पर यह वैदिक रूप है।
- **उभा** – उभौ इसका वैदिक रूप है।
- **अश्विना** – अश्विनौ इसका यह वैदिक रूप है।
- **बिभर्मि** – भृ-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में बिभर्मि यह रूप है।
- **रुद्रेभिः** – रुद्र शब्द का तृतीयाबहुवचन में यह वैदिक रूप है।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये ३ यजमानाय सुन्वते॥२॥

पदपाठ- अहम्। सोमम्। आहनसम्। बिभर्मि। अहम्। त्वष्टारम्। उत। पूषणम्। भगम् अहम्। दधामि। द्रविणम्। हविष्मते। सुप्रऽअव्ये। यजमानाय। सुन्वते॥२॥

अन्वय - अहम् आहनसं सोमं बिभर्मि, अहं त्वष्टारम् उत पूषणं भगम्, (बिभर्मि)। अहं हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यजमानाय द्रविणं दधामि।

व्याख्या - मैं पत्थर से पीसे जाने वाले सोम, अथवा शत्रूओं को मारने वर्तमान दिव्य देवों को सोम का पान कराती हूँ। तथा देवों को शोभन हवि देने वाले को अथवा हवि से देवों को तृप्त करने वाले यजमान को धन देती हूँ। सोम को निचोड़ कर हवी देने वाले को यागफल के रूप में मैं ही धन आदि देती हूँ। एवञ्च ब्रह्मण: फलदातृत्वं ''फलमत उपपत्ते:'' (ब्र. सू. ३. ३. ३८) इत्यधिकरण से आचार्य भाष्यकार के द्वारा समर्थन किया गया है।

सरलार्थ - मैं पत्थर से पीसे जाने वाले सोम को त्वष्टा को पूषा को और भग को धारण करती हूँ। मैं हवि से युक्त, उत्तम हवि को प्राप्त करने वाली हूँ, सोम का अभिषिक्त करने वाले यजमान के लिए धन को धारण करती हूँ अथवा सम्पादन करती हूँ।

व्याकरण

- **आहनसम्** - आपूर्वक हन्-धातु से असुन्प्रत्यय करने पर आहनसम् यह रूप बना।
- **हविष्मते** - हविष्-शब्द से मतुप्प्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में हविष्मते यह रूप है।
- **सुप्राव्ये** - सुपूर्वक प्रपूर्वक अव्-धातु से ईप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में सुप्राव्ये यह रूप है।
- **सुन्वते** - सु-धातु से श्नुप्रत्यय और शतृप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में सुन्वते रूप है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधु: पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥३॥

पदपाठ- अहम्। राष्ट्री। सम्ऽगमनी। वसूनाम्। चिकितुषी। प्रथमा। यज्ञियानाम्॥ ताम्। मा। देवाः। वि। अदधुः। पुरुऽत्रा। भूरिऽस्थात्राम्। भूरि। आऽवेशयन्तीम्॥३॥

अन्वय - अहं राष्ट्री, वसूनां सङ्गमनी, चिकितुषी, यज्ञियानां प्रथमा। तां भूरिस्थात्रां भूरि आवेशयन्तीं मा देवा: पुरुत्रा वि अदधु:।

व्याख्या - मैं राष्ट्र की स्वामी हूँ। यह ईश्वर का नाम है। सभी जगत की स्वामी हूँ। तथा धन देने वाली ज्ञान वाली एवं यज्ञोपयोगी वस्तुओं में सर्वोत्तम हूँ। देवों ने मुझे अनेक स्थानों से धारण किया है मैंने अपनी आत्मा का साक्षात्कार किया उस परं ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया। इसलिये ही

टिप्पणियाँ

यज्ञयों में यज्ञ को चाहने वाले प्रथम मुख्य रूप से मेरे इस प्रकार के गुणों का वर्णन करते हैं। मैं अनेक प्राणियों में आविष्ट हूँ इस प्रकार मेरी विश्वरूप की अवस्था का वर्ण किया है। जो कुछ करते हैं वे सभी मेरे लिए ही करते है यह अर्थ है।

सरलार्थ – मैं राष्ट्र की स्वामी हूँ, धन का संग्रह करने वाली हूँ, चेतन के समान, यज्ञ को चाहने वालो की मुख्या हूँ। उस प्रकार विशिष्ट गुण से युक्त, अनेक रूप में अनेक वस्तुओं में अवस्थित हूँ। मुझे देव अनेक स्थान पर रखते है।

व्याकरण

- **चिकितुषी** – किद्-धातु से क्वसु प्रत्यय और ङीप् करने पर प्रथमा एकवचन में चिकितुषी रूप बना।
- **पुरुत्रा** – पुरु शब्द से सप्तमी अर्थ में त्रा प्रत्यय करने पर पुरुत्रा रूप है।
- **व्यदधुः** – वि पूर्वक धा-धातु से लुङ् प्रथमपुरुषबहुवचन में व्यदधुः यह रूप है।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं तें वदामि॥४॥

पदपाठ- मया। सः। अन्नम्। अत्ति। यः। विऽपश्यति। यः। प्राणिति। यः। ईम्। शृणोति। उक्तम्॥ अमन्तवः। माम्। ते। उप। क्षियन्ति। श्रुधि। श्रुत। श्रद्धिऽवम्। ते। वदामि॥४॥

अन्वयः – यः विपश्यति, यः प्राणिति, यः इम् उक्तं शृणोति, सः मया अन्नम् अत्ति। अमन्तवः ते माम् उप क्षियन्ति। हे श्रुत, श्रुधि, ते श्रद्धिवं वदामि।

व्याख्या – मेरी सहायता से प्राणी अन्न खाते है। और जो देखते है। प्रकाशित होता है यह अर्थ है। और जिससे प्राणी श्वास ग्रहण करते है और छोड़ते है वह भी मेरे द्वारा ही करते है। और जो बोलते और सुनते हैं वह भी मेरे द्वारा ही। जो इस प्रकार अन्तर्यामि रूप से स्थित मुझको नहीं जानते हैं वे मनुष्य क्षीण हो जाते हैं। क्षीण हुए संसार के द्वारा हीन होते हैं। मुझको नहीं मानते यहाँ मेरे विषय में ज्ञान नहीं रखते हैं यह अर्थ हैं। हे सखा सुनो। मेरी वाणी को सुनो। किस वाणी को सुने। श्रद्धा के समान। श्रद्धिः श्रद्धा को कहते है। उससे युक्त श्रद्धायत्न से प्राप्त करो। इस प्रकार श्रद्धा योग्य ब्रह्मात्मक वस्तु का तुम्हे उपदेश देती हूँ।

सरलार्थ – जो अन्न खाती हो, देखती हो, प्राण को धारण करती हो, कहे हुए विषय को सुनते हो, वह मेरे द्वारा ही यह सभी कार्य होते हैं। मेरी महिमा को जो नहीं जानते है वे विनाश को प्राप्त होते हैं। हे सखा, सुनो श्रद्धा के विषय मे मैं तुम्हारे सम्मखु कहती हूँ।

व्याकरण

- **अत्ति** – अद्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में अत्ति यह रूप है।

- **विपश्यति** – विपूर्वक दृश्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में विपश्यति यह रूप है।
- **प्राणिति** – प्रपूर्वक अन्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में प्राणिति रूप है।
- **शृणोति** – 'श्रु श्रवणे' इस धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में शृणोति यह रूप है।
- **उपक्षियन्ति** – उप पूर्वक क्षि-धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में उपक्षियन्ति यह रूप है।
- **श्रुधि** – श्रु-धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में श्रुधि यह रूप है। शृणु इसका यह वैदिक रूप है।
- **अमन्तवः** – मानता नहीं अमन्तवः यह रूप है।

पाठगत प्रश्न 19.1

1. देवीसूक्त का ऋषि कौन, छन्द क्या, और देवता कौन है?
2. देवीसूक्त में अहंपद से कौन परामर्श देता है?
3. अश्विनौ इसका वैदिक रूप क्या है?
4. उभा इसका लौकिक रूप क्या है?
5. रुद्रशब्द का तृतीयाबहुवचन में वैदिक रूप क्या है?
6. रुद्रो के साथ मैं (वागाम्भृणी) कैसे चलती हूँ?
7. आहनसम् इसका क्या अर्थ है?
8. सुप्राव्ये यह रूप कैसे हुआ?
9. वसूनाम् इसका क्या अर्थ है?
10. यज्ञियानाम् इसका क्या अर्थ है?
11. चिकितुषी यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
12. अमन्तवः इसका क्या अर्थ है?
13. प्राणिति यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
14. श्रुधि इसका लौकिक रूप क्या है?
15. पुरुत्रा यह रूप कैसे हुआ?

टिप्पणियाँ

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥५॥

पदपाठ- अहम्। एव। स्वयम्। इदम्। वदामि। जुष्टम्। देवेभिः। उत। मानुषेभिः॥ यम्। कामये। तम्ऽतम्। उग्रम्। कृणोमि। तम्। ब्रह्माणम्। तम्। ऋषिम्। तम्। सुऽमेधाम्॥५॥

अन्वय – अहम् एव स्वयं देवेभिः उत मानुषेभिः जुष्टम् इदं वदामि। यं कामये तं तम् उग्रं कृणोमि। तं ब्रह्माणं, तम् ऋषिं, तं सुमेधाम् (कृणोमि)।

व्याख्या – मैं स्वयं ही ब्रह्मात्मक वस्तु को कहती हूँ अथवा उपदेश देती हूँ। देवों के द्वारा देव इन्द्र आदि के द्वारा भी सेवित हूँ। और मनुष्यों के द्वारा भी सेवित हूँ। इस प्रकार जो यजमान मेरी स्तुति करता है मैं उस पुरुष की कामना को पूर्ण करती हुई उसकी रक्षा करती हूँ, उसको शक्तिशाली बना देती हूँ। सबसे श्रेष्ठ बना देती हूँ। उसे मैं स्तोता ब्रह्माण बना देती हूँ। उसकी बुद्धि को ऋषि के मति के समान बना देती हूँ। उसको ही बुद्धिमान बना देती हूँ।

सरलार्थ – मैं स्वय ही देवों के लिए और मनुष्यों के लिए इन अभीष्ट वाक्य को कहती हूँ। मैं जिसे चाहती हूँ उसे बलवान, ब्रह्माण, मन्त्रद्रष्टा, और मेधावि बना देती हूँ।

व्याकरण

- **जुष्टम्** – जुष्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में जुष्टम् यह रूप बनता है।
- **कृणोमि** – कृ-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में करोमि इसका यह वैदिकरूप है।
- **सुमेधाम्** – शोभना मेधा यस्य तम् यहाँ बहुव्रीहि समास है।
- **देवेभिः** – देवैः इसका वैदिक रूप है।
- **मानुषेभिः** – मानुषैः इसका यह वैदिकरूप है।
- **कामये** – कम्-धातु से लट् आत्मनेपद उत्तमपुरुष एकवचन में कामये यह रूप है।।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥६॥

पदपाठ - अहम्। रुद्राय। धनुः। आ। तनोमि। ब्रह्मऽद्विषे। शरवे। हन्तवै। ऊँ इति॥ अहम्। जनाय। सऽमर्दम्। कृणोमि। अहम्। द्यावापृथिवी इति। आ। विवेश॥६॥

अन्वय – अहं ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै रुद्राय धनुः आ तनोमि। अहं जनाय समदं कृणोमि। अहं द्यावापृथिवी आ विवेश।

व्याख्या – प्राचीन काल में त्रिपुर राक्षस को जीतने के लिए रुद्र का षष्ठी अर्थ में चतुर्थी है। महादेव के धनुष को विस्तृत करती हूँ। उसका विस्तार करती हूँ। किसलिये। ब्रह्म से द्वेष करने

वाले ब्राह्मणों का हिंसक त्रिपुरनिवासी असुर के विनाश के लिए मारने के लिये विस्तार करती हूँ। 'शृ हिंसायाम्' इससे 'शृस्वस्निहि' इत्यादि से उप्रत्यय हुआ। 'क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम्' इससे कर्म में सम्प्रदान होने से चतुर्थी हुई। उशब्द पूरक है। मैं ही संग्राम करती हूँ। स्तोता मनुष्यों के लिये शत्रु के साथ मैं ही सङ्ग्राम करती हूँ। तथा द्यौ पृथिवी में और दिन रात में मैं ही व्याप्त होकर के रहती हूँ।

सरलार्थ - मैं ही रुद्र के लिए ब्राह्मणों के द्वेषी त्रिपुर राक्षस को मारने के लिए उसके धनुष को विस्तृत करती हूँ। मैं ही मनुष्यों के लिये संग्राम करती हूँ। मैं ही द्युलोक और भूलोक में व्याप्त हूँ।

व्याकरण

- **तनोमि** - तन्-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में तनोमि रूप बनता है।
- **शरवे** - शृ-धातु से उ प्रत्यय करने पर शरुः हुआ इसके बाद चतुर्थी एकवचन में शरवे यह रूप बना।
- **हन्तवै** - हन्-धातु से तुमुन्प्रत्यय के लिए वैदिक तवै प्रत्यय करने पर हन्तवै रूप बना।
- **कृणोमि** - कृ-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में करोमि इसका यह वैदिक रूप है।
- **विवेश** - विपूर्वक विश्-धातु से लिट् उत्तमपुरुष एकवचन में विवेश रूप बना।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥७॥

पदपाठ - अहम्। सुवे। पितरम्। अस्य। मूर्धन्। मम। योनिः। अप्ऽसु। अन्तरिति। समुद्रे॥ ततः। वि। तिष्ठे। भुवना। अनु। विश्वा। उत। अमूम्। द्याम्। वर्ष्मणा। उप। स्पृशामि॥७॥

अन्वय- अहम् अस्य मूर्धन् पितरं सुवे, मम योनिः अप्सु अन्तः समुद्रे। ततः विश्वा भुवना अनु वितिष्ठते। उत अमूं द्याम् वर्ष्मणा उप स्पृशामि।

व्याख्या - 'द्यौः पिता' (तै. ब्रा. ३. ७. ५. ४) इस श्रुत्ति के अनुसार द्यौ पिता है। पिता द्यौ को मैं उत्पन्न करती हूँ। 'आत्मान आकाशः सम्भूतः' (तै. आ. ८. १) यह श्रुत्ति है। और क्या है कहा गया है। आकाश परमात्मा का मस्तक है। उस कारण भूत से ही यह कार्य जगत हुआ जिस प्रकार सभी धागों में वस्त्र रहता है उसी प्रकार यह है। और मेरा स्थान कारण समुद्र में है। समुद्र के समान हम प्राणियों की उत्पति समुद्र परमात्मा से हुई है। उस जल में व्याप्त धैर्य वृति वाला जो ब्रह्म चेतन है वह मेरा ही कारण है। इस प्रकार का मैं इस ससार में सभी और से व्याप्त होकर के रहता हूँ। 'समवप्रविभ्यः स्थः' (पा. १. ३. २२) इससे आत्मनेपद है। और भी द्यौ में स्थित स्वर्गलोक की रचना भी मेरे द्वारा ही की गई है। यह उपलक्षण है। इसको उपलक्षित करके विकार हुआ वर्षा का कारणभूत से माया आत्मा के द्वारा मेरी देह को ही स्पृश करता है। अथवा, इस भूलोक के शिर के ऊपर पिता द्यौलोक है। समुद्र में जलधारा में तालाब आदि के मध्य में मेरी

टिप्पणियाँ

योनि कारणभूत अम्भृणाख्य ऋषि है। अथवा समुद्र में अन्तरिक्ष में अपनी माया में और देव शरीर में मेरा कारणभूत ब्रह्म चेतन है। उन सबका कारण होने से मैं सम्पूर्ण भुवन में व्याप्त हूँ।

सरलार्थ – मैं ही इस पृथिवी परमात्मा के शिर के ऊर्ध्वभाग को अथवा द्युलोक की रचना करती हूँ। मेरी उत्पत्ति परमात्मा के सभी व्यापक ब्रह्म चेतन में है। जिससे मैं सम्पूर्ण भुवन में प्रवेश करके विविध रूप से रहती हूँ। और दूरस्थ द्युलोक का मेरे शरीर के साथ मैं स्पृश करती हूँ।

व्याकरण

- **सुवे** – सू–धातु से लट आत्मनेपद में उत्तमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।
- **मूर्धन्** – मूर्ध्नि–इसका सप्तमी एकवचन में यह वैदिक रूप है।
- **वितिष्ठे** – वि पूर्वक स्था–धातु से आत्मनेपद उत्तमपुरुष एकवचन में वितिष्ठे यह रूप है।
- **विश्वा, भुवना** – नपुंसकलिङ्ग में बहुवचन में वैदिक यह दो रूप है। लौकिक विश्वानि और भुवनानि दो रूप है।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव॥८॥

पदपाठ – **अहम्। एव। वातःऽइव। प्र। वामि। आऽरभमाणा। भुवनानि। विश्वा॥ परः। दिवा। परः। एना। पृथिव्या। एतावती। महिना। सम्। बभूव॥८॥**

अन्वय – अहम् एवभुवनानि विश्वा आरभमाणा वातः इव प्रवामि। दिवा परः एना पृथिव्याः परः महिना एतावती सम्बभूव।

व्याख्या – विश्व के सभी भुवन प्राणियों का कार्य आरम्भ करने का कारण रूप से मैं ही अपने चारो और से अधिष्ठाता के रूप में प्रवृत होता हूँ। वायु के समान। जैसे वायु दूसरे को प्रेरित करती हुई अपनी इच्छा से बहती है उसी प्रकार। सभी वेद में कहा गया है। द्यौ लोक ऊपर है। पर इस सकारान्त को ऊपर अर्थ में है, तथा अध यह नीचे अर्थ में। उनके योग में तृतीया विभक्ति सभी जगह दिखाई देती है। द्यौ आकाश के ऊपर है। एना पृथिव्या। 'द्वितीयाटौस्वेनः' (पा. २. ४. ३४) इससे यहाँ एना आदेश हुआ। इस पृथिवी से परे है। द्यौ और पृथिवी का उपादान उपलक्षण है। इस उपलक्षण से सभी विकार उत्पन हुए उनसे वर्तमान सङ्ग उदासीनकूटस्थब्रह्मचेतन रूप मेरी महिमा से यह सब हुआ। यह शब्द के द्वारा सभी को परामर्श देती है। यह इसका परिमाण है। 'यत्तदेतेभ्य परिमाणे ...' (पा. ५. २. ३९) इससे वतुप्। 'आ सर्वनाम्नः' (पा. ६. ३. ९१) इससे आत्व। सभी जगत की आत्मा मैं हूँ। 'महच्छब्दादिमनिचि श्टेः' (पा. ६. ४. १५५) इससे टिलोप हुआ।

सरलार्थ – मैं ही समस्त भुवन की रचना करती हुई वायु के समान प्रवाहित होती हूँ। अपनी महिमा से द्युलोक और पृथिवी का उल्लङ्घन करके मैं इस प्रकार सभी जगत की आत्मा हूँ।

व्याकरण

- **आरभमाणा** – आपूर्वक रभ्-धातु से शानच्प्रत्ययऔर टाप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में आरभमाणा रूप बना।
- **प्रवामि** – प्रपूर्वक वा-धातु से लट उत्तमपुरुष एकवचन में प्रवामि यह रूप बना है।
- **विश्वा** – नपुंसकलिङ्ग द्वितीयाबहुवचन में विश्वानि इसका यह वैदिक रूप है।
- **एना** – अदस्-शब्द का तृतीया एकवचन में यह वैदिक रूप है।
- **महिना** – महिमन्- शब्द का तृतीया एकवचन में वैदिक रूप है। लौकिक में तो महिम्ना यह रूप बना है।
- **संबभूव** – सम्पूर्वक भू-धातु से लिट उत्तमपुरुष एकवचन में संबभूव यह रूप बना।

पाठगत प्रश्न 19.2

1. देवेभिः इसका लौकिक रूप क्या है?
2. जुष्टम् इसका क्या अर्थ है?
3. मानुषेभिः यह रूप कहाँ पर दिखाई देता है?
4. सुमेधाम् इसका समास विग्रह सहित लिखो।
5. रुद्राय यहाँ पर किस अर्थ में चतुर्थी है?
6. कृणोमि इसका लौकिक रूप क्या है?
7. शरवे यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
8. हन्तवै यह कैसे सिद्ध हुए?
9. वितिष्ठे यह रूप कैसे हुआ?
10. सुवे यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
11. भुवना इसका लौकिक रूप क्या है?
12. परः यह सकारान्तकिस अर्थ में है।
13. परस्तात् इसके योग में कौन सी विभक्ति होती है?
14. एना यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
15. महिना यह रूप कहाँ दिखाई देता है?

टिप्पणियाँ

19.3 देवीसूक्त का आशय

मन्त्र तीन प्रकार के होते है परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत, और आध्यात्मिक। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के अर्न्तगत देवीसूक्त का आध्यात्मिक ऋचाओं की कीर्ति कही गई है। वैसे ही आध्यात्मिक-ऋचाओं का स्वरूप और देवीसूक्त के स्वरूप को निरुक्त में निरुक्तकार ने कहा है - अब आध्यात्मिकस्वरूप उत्तमपुरुष के योग में अहम इस का प्रयोग किया गया है। जैसे इन्द्र वैकुण्ठ, लवसूक्त वागाम्भृणी इत्यादि। परोक्षकृत और प्रत्यक्षकृत मन्त्र अधिकांश है और आध्यात्मिक मन्त्र कम है। अम्भृण ऋषि की कन्या वाग् इसकी ऋषिका है। दूसरा ऋक् जगती, शिष्ट त्रैष्टुभ छंद है। और विनियोग है। सप्तशती पाठ के अङ्गजप में भी तान्त्रिक विनियोग इसका जानना चाहिए। दार्शनिक अपनी अपनी तन्त्र सिद्धान्त के अनुसार इस सूक्त की व्याख्या की। उस व्याख्यान भेद आदि के द्वारा हमेशा नए रूप में विद्वानों में हृदय में रहती है। तथा ब्रह्मविदुषीवाग् आत्मा के ब्रह्मरूप का अनुभव करती हुई और ब्रह्मण जगत्कारण से अपनी अपने कर्ता भाव का गुणगान करती है। तथा वेदान्तसूत्र 'जन्माद्यस्य यत:' है। केनोपनिषद में उमा-हैमवतीसंवाद में भी शक्ति महानता को प्रकाशित किया है। नैयायिक अहङ्कार से परे ब्रह्मज्ञ का ब्रह्मीभूत का स्वाभाविककी अनुभूति यह दिशा अद्वैतवेदान्त अनुयायो के द्वारा व्याख्या की गई। स्फोटब्रह्मवादि वैयाकरण पुन बोलना ही जगत के जन्म का कारण है। सूक्त के द्वारा कहा गया है की वाणी ही उन नैयायिक स्फोटाख्या से परे वाणी ही है। उसके द्वारा ही यह जगत सुनता है - अहमेववात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा इति। उसके अनुसार ही वाक्य पदीयपद का अनुसन्धान करना चाहिए - अनादिनिधनं ब्रह्मशब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।। इति। इसलिये व्याकरणदार्शनिकै के द्वारा स्फोटपरक व्याख्या की गई है। और शाक्त आदि शक्ति महामाया को संसार का सर्जन-परिपालन और विनाशकारी मानते है और सप्तशती में कहा गया है -

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते।। इति।

इस प्रकार इसकी अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हुए इस सूक्त का अत्यधिक रूप से प्रचार वैदिकवाङ्मय में विशेष रूप से किया गया है।

वह वाणी ही वसुरुद्र आदित्य आदिदेवता रूप से विचरण करती है। वह ही इन्द्र अग्निमित्रवरुण आदि को धारण करती है। वस्तुत तो यजमान उसको ही सोम आदि हवि के द्वारा यागो में पूजता है। वह ही जगत की स्वामिनी धन देने वाली जीवभाव से भूतो में प्रवेश करके विविधरूप से रहती है। वस्तुत तो वह शक्तिरूप से अधिष्ठात्री प्राणियों का देखना, सुनना, प्राण आदि कार्य भी वह ही करती है। और कहा गया है -

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषुसततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नम:।। इति।

वह ही प्रसन्न होने पर उपासक के लिये ब्रह्म आदिदेवपद को ऋषित्व अथवा विद्या देती है। वह ही वाणी के द्वारा असुर आदिशत्रुओं को मारकर प्रजाओं की रक्षा करती है। त्रिपुर आदि तो उसके निमित्तभूत है। उसकी शक्ति के कारण ही वे शक्तिशाली है। वेद में कहा गया है -

अहं रुद्राय धनुरातनोमि। ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ॥
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश॥ इति।

यहाँ पर यह अनुसन्धान करना चाहिए की जो महामाया प्रभाव से ही मधुसूदन अपने नाम को सार्थक करती है। महामाया से मोहित होकर मधुकैटभ ने वर प्रदान को अङ्गीकार करके विष्णु के हाथ से अपनी इच्छा से मृत्यु का वरण किया। इसलिए ही हरि उनको मारना चाहते थे और सप्तशती में कहा गया है –

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ।
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम्॥ इति।

वह वाणी ही भूर्भुवःस्वः लोक को चारो और से व्याप्त करके विराजमान होती है। लोक से परे वह सभी लोक को अपनी महिमा से उत्पन्न करती हुई वाणी की कीर्ति को कहती है।

पाठ का सार-१

देवीसूक्त में आठ मंत्रों के द्वारा जो कहा गया है उसे साररूप से कहते है। सभी मन्त्रों में द्रष्टा रूप से अहमिति पद से वागाम्भृणी ऋषिका को जानना चाहिए। वह वागाम्भृणी रुद्रो के, आदित्यो के, और विश्वदेवों के, साथ उनके समान होकर के विचरण करती है। इन्द्र अग्नि और अश्विन कुमारो को वह धारण करती है। वह सोम को धारण करती है, त्वष्टा पूषा और भग को धारण करती है। धन की वह स्वामी है। वह राष्ट्र, भूमि, सङ्गम, यज्ञियो में प्रथम है। उसको अनेक स्थानों से देव और पुरुष धारण करते है। जो अन्नको खाते है,देखते है, प्राणों को धारण करते है, कहे हुए विषयो को सुनते है, वह मेरे द्वारा ही ये सभी कार्य करते है। मेरी महिमा को जो ये नहीं जानते है, वे विनाश को प्राप्त होते है। हे विश्रुत, सुनो जिस विषय को मैं तुम्हारे सम्मुख कहती हूँ। मैं स्वयं ही देवों के लिये और मनुष्यो के लिये इस वाक्य को कहती हूँ। मैं जिसको चाहती हूँ उसको ही बलवान, ब्रह्माण, मन्त्रद्रष्टा, और मेधावी बना देती हूँ। मैं रुद्र के लिये ब्रह्मद्वेष कारी घातक शत्रुओं को मारने के लिये उसके धनुष को ग्रहण करती हूँ। मैं ही लोगो के लिये संग्राम करती हूँ। मैं ही द्युलोक और भूलोक में प्रवेश करती हूँ। मैं ही इस पृथिवी परमात्मा के शिर के ऊर्ध्वभाग को अथवा द्युलोक की रचना करती हूँ। मेरी उत्पत्ति परमात्मा के समान सभी जगह व्यापक है अथवा ब्रह्म चेतन में व्यापक है। जिससे मैं सम्पूर्ण भुवन में प्रवेश करके विविधरूप से रहती हूँ। और दूरस्थद्युलोक मेरे द्वारा ही मेरे शरीर को मैं ही स्पृश करती हूँ। मैं ही समस्तभुवन की रचना करती हुई वायु के समान चलती हूँ। अपनी महिमा से ही द्युलोक और पृथिवी का उल्लङ्घन करके मैं इस प्रकार सभी जगत की स्वामी होकर रहती हूँ।

श्रद्धासूक्त

वेदों में मन के विभिन्न भावका अत्यधिक स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। मन का सामर्थ्य को जानना अत्यधिक कठिन है। कुछ मनुष्य अत्यधिक कार्य को पूर्ण कर सकते है, भयंकर युद्ध में निर्भय होकर सेना का संचालन करते है, कुछ ध्यान आदि से इन्द्रियों से परे का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्यों के भेद का कारणही उसका मन ही है। फिर भी मन के सूक्ष्म भावक्या है, उनका परिणाम क्या है, भावो का संरक्षण कैसे किया जा सकता है, भाव के दृढकरने के बाद क्या होता है इत्यादिविषय भी वेद में प्राप्त होते है। श्रद्धा उसी प्रकार का एक मनोभाव है। लोक में सामान्यरूप से मनुष्य जो कुछ होता है वहा पर उसकी श्रद्धा है ऐसा कह सकते है। कार्य में प्रेरक विश्वास ही श्रद्धा है ऐसा कह सकते है। अर्थात् वैसा विश्वासजो विश्वासी मनुष्य को विश्वास के अनुसार ही कार्य करने की प्रेरणा करता है। क्रियाशील विश्वास है यह भी उसका अर्थात् है और भी आस्तिक्यबुद्धिः श्रद्धा यह श्रद्धाशब्द का अर्थकठोपनिषद शाङ्करभाष्य में कहा गया है। श्रद्धा की महानता के गुण गीता में भी गाये है –

'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति'॥

और भी –

'योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः'॥

इस प्रकार अनेक जगह श्रद्धा की स्तुति प्राप्त होती है। इस पाठ में वेद में श्रद्धाविषय में क्या कहा गया है उसको प्रस्तुत किया गया है। इस ऋग्वेद के श्रद्धासूक्त का ऋषः श्रद्धा कामायनी, देवता श्रद्धा, छन्दअनुष्टुप् है। यह ऋग्वेद के दशवे मण्डल में १५१ संख्या का सूक्त है।

19.4 मूलपाठ-श्रद्धासूक्त

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥१॥

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि॥२॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि॥३॥

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्यया१याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥४॥

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥५॥

19.5 श्रद्धासूक्त की व्याख्या

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥१॥

पदपाठ - श्रद्धया। अग्निः। सम्। इध्यते। श्रद्धया। हूयते। हविः॥ श्रद्धाम्। भगस्य। मूर्धनि। वचसा। आ। वेदयामसि॥१॥

अन्वय - श्रद्धया अग्निः समिध्यते। श्रद्धया हूयते हविः। भगस्य मूर्धनि श्रद्धां वचसा आ वेदयामसि।

व्याख्या - पुरुष में आयी हुई अभिलाषा विशेष को श्रद्धा कहते है। उस श्रद्धा के द्वारा गार्हपत्य आदि अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। जिस पुरुष में श्रद्धा रूपी अग्नि विशेष आदर को प्राप्त होती है, वह पुरुषही अग्नि को प्रज्वलित कर सकता है अन्य दूसरा नहीं। श्रद्धा के द्वारा ही पुरोडाश आदि हवि की आहुति दी जाती है। अर्थात अग्नि में डाली जाती है।

अथवा इस सूक्त के द्रष्टा उस श्रद्धा नाम वाली अग्नि को प्रज्वलित करते है। ऊपर कहे श्रद्धा के लक्षणा का श्रद्धा का अभिमानी देवता सेवनीय योग्य धन के शीश पर सबसे प्रधानभूत होकर के रहने के कारण वाणी से अथवा स्तोत्र से विशेष रूप से स्तुति करता हूँ। इस कर्म को विशेष रूप से जानते है।

सरलार्थ - श्रद्धा के द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, श्रद्धा के द्वारा हवि का दान किया जाता है, श्रद्धा जो धन का प्रमुख है, उस श्रद्धा की स्तुति करते हैं।

व्याकरण

- **समिध्यते** - सम्-पूर्वक इन्ध्-धातु से कर्म रूप है (तप्रत्ययऔर यक करने पर) (प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है)।
- **हूयते** - हु दानादयोः इस अर्थ की धातु से कर्म में रूप है (प्रथमपुरुष एकवचनका यह रूप है)।
- **आ वेदयामसि** - आ पूर्वक विद् धातु से णिच लट् उत्तमपुरुष बहुवचन का यह रूप है।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि॥२॥

पदपाठ - प्रियम्। श्रद्धे। ददतः। प्रियम्। श्रद्धे। दिदासतः॥ प्रियम्। भोजेषु। यज्वऽसु। इदम्। मे। उदितम्। कृधि॥२॥

अन्वय- (हे) श्रद्धे, ददतः प्रियम् (कृधि), (हे) श्रद्धे, दिदासतः प्रियं (कृधि), भोजेषु यज्वसु प्रियं (कृधि), मे इदम् उदितं (प्रियं) कृधि।

टिप्पणियाँ

व्याख्या – हे श्रद्धा घी पुरोडाश आदि देने वाले यजमान का प्रिय अभीष्टफल को पूर्ण करो। और देने की इच्छा वाले का कल्याण करो। मेरे सम्बन्धियो में भोगार्थियो में और यज्ञ कर्ताओं को मनचाह फल देने की अनुकम्पा करे अथवा कल्याण करो।

सरलार्थ – इस मन्त्र में श्रद्धा के प्रति कहा गया है की हे श्रद्धा घी पुरोडाश आदि देने की इच्छा वाले उदारयजमान की अभीष्टपूर्ति करो। हे श्रद्धा हमारे इस वचन की अभीष्टपूर्ति करो।

व्याकरण

- **ददतः** – दा–धातु से शतृप्रत्ययान्त षष्ठी एकवचन का रूप है। ददत् यह प्रातिपदिक है। यहाँ बार –बार दो इस अर्थ में है।
- **दिदासतः** – दा–धातु से सनऔर शतृप्रत्यय करने पर दिदासत् प्रातिपदिक बनता है। उसका षष्ठी एकवचन में यह रूप बनता है। देने की इच्छा यह उसका अर्थ है।
- **उदितम्** – वद् व्यक्तायां वाचि इस अर्थ वाली धातु से क्तप्रत्ययान्त का रूप है। अथवा उत्–उपसर्ग से इण् गतौ इस धातु से क्तप्रत्यय करने पर उदित यह रूप होता है।
- **कृधि** – कृधातु से लुङ मध्यमपुरुष एकवचन का रूप है। कुरु इस अर्थ में ही प्रयोग होता है।

यथा॑ दे॒वा असु॑रेषु श्र॒द्धामु॒ग्रेषु॑ चक्रि॒रे।
ए॒वं भो॒जेषु॒ यज्व॑स्व॒स्माक॑मु॒दि॒तं कृ॑धि॥३॥

पदपाठ – यथा॑। दे॒वाः॑। असु॑रेषु। श्र॒द्धाम्। उ॒ग्रेषु॑। च॒क्रि॒रे॥ ए॒वम्। भो॒जेषु॑। यज्व॑ऽसु। अ॒स्माक॑म्। उ॒दि॒तम्। कृ॒धि॒॥३॥

अन्वय – देवाः यथा उग्रेषु असुरेषु श्रद्धां चक्रिरे, एवं भोजेषु यज्वसु (त्वं श्रद्धां कृधि) अस्माकम् उदितं कृधि।

व्याख्या – देव इन्द्र आदि ने असुरो के विषय में मारने का निश्चय किया उसी प्रकार तुम भी भक्तो को मनचाह फल प्रदान करो। इसी प्रकार श्रद्धावान भजन करने वाले भक्तो का, भोगार्थियो का और यजमानो का भी प्रिय करो।

सरलार्थ – जैसे देव असुरो को मारने का निश्चय किया उसी प्रकार श्रद्धा उदार भावना वाले यजमाननो का भी कल्याण करे। हमारी वाणी के इस वचन की अभीष्टपूर्ति करो।

व्याकरण

- **असुरेषु** – असुर इस प्रातिपदिक का सप्तमी एकवचन में यह रुप बनता है।
- **चक्रिरे** – कृञ् करणे इस धातु से लिट्–लकारप्रथमपुरुष बहुवचन का यह रूप है। (आत्मनेपदपक्ष में)

- **उदितम्** – वद् व्यक्तायां वाचि इस अर्थ वाली धातु से क्तप्रत्ययान्त का रूप है।
- **कृधि** – कृधातु से वैदिक रूप बनता है। कुरु इस अर्थ में ही प्रयोग होता है।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्यं१याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥४॥

पदपाठ – श्रद्धाम्। देवाः। यजमानाः। वायुऽगोपाः। उप। आसते॥ श्रद्धाम्। हृदय्यया। आऽकूत्या। श्रद्धया। विन्दते। वसु॥४॥

अन्वय – वायुगोपाः देवाः यजमानाः च श्रद्धाम् उपासते, हृदय्यया आकूत्या श्रद्धाम् (उपासते)। श्रद्धया वसु विन्दते।

व्याख्या – वायु देवों की और मनुष्यो की रक्षा करता है, उसी प्रकार वे लोग अपने हृदय मंत मन में सकल्प करके श्रद्धा देवी की उपासना करते है, उस विधि रूप संकल्प से सभी मनुष्य श्रद्धा के समान ही आचरण करते है। किस प्रकार करते है कहा की –जिस कारण से श्रद्धा के द्वारा विशाल धनकोष को श्रद्धावानमनुष्य प्राप्त करे यह अर्थ है।

सरलार्थ – वाय के द्वारा रक्षित सभी देव तथा यजमानअपने हार्दिक सङ्कल्प से केवल श्रद्धा की उपासना करते है। श्रद्धा के द्वारा ही मनुष्य सम्पत्ति को प्राप्त करते है।

व्याकरण

- **वायुगोपाः** – वायुः गोपा (रक्षिता) जिनकी उनको वायुगोपाः कहते है।
- **उपासते** – उपपूर्वक आस्- धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष बहुवचनान्त का यह रूप है।
- **यजमानाः** – यज् –धातु से शानच्-प्रत्ययान्त का यह रूप है।
- **आकूत्या** – आकूति इस प्रातिपदिक का यह तृतीयान्त का रूप है। संकल्प यह इसका अर्थ है।
- **विन्दते** – विद्-धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥५॥

पदपाठ – श्रद्धाम्। प्रातः। हवामहे। श्रद्धाम्। मध्यन्दिनम्। परि॥ श्रद्धाम्। सूर्यस्य। निऽम्रुचि। श्रद्धे। श्रत्। धापय। इह। नः॥५॥

अन्वय – (वयं) प्रातः श्रद्धां हवामहे, मध्यन्दिनं परि श्रद्धां (हवामहे), सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धां (हवामहे)। (हे) श्रद्धे इह नः श्रत् धापय।

व्याख्या – श्रद्धा देवी की प्रात:काल उपासना करते है। तथा मध्यन्दिनं परि यहाँ पर लक्षण परे होंने पर कर्मप्रवचनीय हुआ। मध्यन्दिन को परिलक्षित करके। मध्यन्दिन यह अर्थ है। दोपहर में भी श्रद्धा की उपासना करते है। सभी का प्रेरक सूर्य के अस्त होने पर भी उसी श्रद्धा की उपासना करते है। इस रूप वाली हे श्रद्धा हमे इस लोककार्यो में श्रद्धा से युक्त बनाओ।

सरलार्थ–हम प्रात:काल मध्याह्ण में और सूर्यास्तसमय में श्रद्धा की उपासना करते है। हे श्रद्धा इस लोक में हमे श्रद्धा से युक्त बनाओ।

व्याकरण

- **हवामहे** – हू– धातु से लट्–लकार उत्तमपुरुष बहुवचन का यह रूप है।
- **धापय** – धा–धातु से णिच लोट्–लकार मध्यमपुरुष एकवचन का यह रूप है।
- **श्रद्धे** – श्रद्धाशब् का सम्बोधन एकवचन में श्रद्धे यह रूप है।
- **निम्रुचि** – नि+म्रुच् धातु से निष्पन्नशब्द है।

पाठगत प्रश्न 19.3

1. श्रद्धासूक्त का ऋषि छन्द और देवता कौन है?
2. श्रद्धयाग्नि: यहाँ पर अग्निपद से किस अर्थ की विवेचना की गई है?
3. मूर्धनि इसका क्या अर्थ है?
4. क्या देकर के यजमान का कल्याण करते हैं?
5. यज्वसु इसका क्या अर्थ है?
6. कृधि इसका लौकिक रूप क्या है?
7. आकूत्या इसका क्या अर्थ है?
8. वसु इसका क्या अर्थ है?
9. किस प्रकार का धन मनुष्य प्राप्त करते है?
10. समिध्यते इसका क्या अर्थ है?

19.6 श्रद्धासूक्त का सार

ऋग्वेद के दशममण्डल में श्रद्धासूक्त है (१०।१५१)। इस सूक्त में श्रद्धा की स्तुति देवतारूप से की गई है। यहाँ पर पाँच ही मन्त्र है, और इसका विषय पूर्व से ही कम होने पर भी इस सूक्त का अत्यन्त महत्व है। श्रद्धा–इस शब्द का अर्थ ही कही पर कार्यविशेष में अथवा वचनविशेष में अपने कार्य को आदर सहित प्रकट करता है। वस्तुत: श्रद्धा के द्वारा सम्पादित कार्य ही लाभदायक होता है। श्रद्धा से विहीनकार्य कभी भी इच्छित फल नहीं देता है।

सोम का अभिसेचन कर यजमान की श्रद्धा को प्रकट करता है **(श्रद्धां वदन् सोमराजन् ९।११३।४)**। ऋषियो के द्वारा की गई स्तुति श्रद्धापूर्ण मन से इन्द्र के द्वारा सुनी गई **(श्रद्धामनस्याा शृणुतेदभीतये)**। **वाक्सूक्त में (ऋग् १०।१४५)** कहा गया है- **श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।** यहाँ पर श्रद्धा पद का सायण के द्वारा किया गया अर्थ- **श्रद्धाबलेन लभ्यं ब्रह्मात्मकं वस्तु** अर्थात् ब्रह्म को श्रद्धा के द्वारा ही जान सकते है अथवा प्राप्त कर सकते है। अन्य मन्त्रों में भी ऋषियो का श्रद्धा के प्रति अत्यन्त आदर की भवना है। श्रद्धासुक्त में तो देवतास्वरूप से ही श्रद्धा का चित्रण किया है। इस मन्त्र की ऋषिका श्रद्धा है, जो कामगोत्र में उत्पन्न हुई। उसके कारण से ही वह कामायनी इस नाम से विख्यात है।

इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही स्पष्ट किया गया है की श्रद्धा के द्वारा ही अग्नि प्रज्वलित होती है। श्रद्धा के द्वारा ही आहवनीय अग्नि में आहुति दी जाती है। इसका यह तात्पर्य है की यज्ञीय कार्यो में श्रद्धा की अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ अग्निज्ञान अग्नि का प्रतीक रूप भी कह सकते है। ज्ञान अग्नि की समिधा श्रद्धा के द्वारा ही पूर्ण होती है। इस श्रद्धा की उपासना केवल मनुष्य नहीं करते, अपितु देवता भी असुरो के साथ युद्धकाल में श्रद्धा के आश्रित होकर के ही अपने मनोरथ को पूर्ण किया। अन्य मन्त्र में मनोवैज्ञानिक तथ्य का रोचक विश्लेषण है -

श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु। इति।।

हृदय में उत्पन्न सङ्कल्प से श्रद्धा की उपासना होती है। प्रथम तो साधक के चित्त में सङ्कल्प का उदय होता है, उसके बाद ही वह किसी कार्य को करने में अपने को प्रवृत होता है। श्रद्धा के द्वारा धन की प्राप्ति होती है। यहाँ वसु इस पद से भौतिकद्रव्य का सङ्केत नहीं है, किन्तु आध्यात्मिककल्याण का है। अज्ञान का विनाशकरके अमरत्व की प्राप्ति ही आध्यात्मिक धन है। अमरता को प्राप्त करने का प्रधान साधन यह श्रद्धा ही है। अन्तिम में प्रार्थना है - **श्रद्धे श्रद्धापये ह नः। इति।।** उपनिषदों में श्रद्धातत्त्व की जो महानता प्रकट की गई उसका बीज इस प्रसिद्ध सूक्त में ही प्राप्त होता है।

पाठ का सार

इस पाठ में श्रद्धासूक्त के पाच मन्त्र लिखे गये है। इन पांच मंत्रों में जो साररूप से कहा गया है उसको ही यहाँ पर साररूप से कहते है। इन पांच मंत्रों में श्रद्धा के मुख्यरूप से क्या क्या कर्तव्य होने चाहिए उसको कहा गया है। श्रद्धा के विविध रूप और प्रयोजन को प्रदर्शित किये गए है। यज्ञ में भोजन में दान दक्षिणा में श्रद्धा का विधान किया गया है, श्रद्धा से ही वह उस फल को प्राप्त करता है इत्यादि विषय प्रथममन्त्र कहे गए है। द्वितीय मन्त्र में श्रद्धा के प्रति कहा गया है की हे श्रद्धा मेरे द्वारा इस कहे गये वचन को, दानदेकर के मनुष्यों का कल्याण करो, हे हमेशा रहने वाली श्रद्धा ! देने की इच्छा वालो का कल्याण करो, दान के भोक्ता का दक्षिणा में प्राप्त ऋत्विग के समान कल्याणकरो। तृतीय मन्त्र में कहा गया है की जैसे क्रूर अथवा दुष्ट मनुष्यों पर सन्यासी विद्वान उचित को धारण करने वाली दैवीशक्ति को प्रेरित करती है, इसी प्रकार

टिप्पणियाँ

भोजनदाताओं में तथा यजमानो में हमारा इस आशीर्वाद को कल्याणप्रद करो इस प्रकार श्रद्धा के प्रति प्रार्थना की गई है। चतुर्थ मन्त्र मर कहा गया की सन्यासी विद्वांन श्रद्धा को हृदय में स्थित करके उसका सेवन करते है, यजनशील प्राणायाम वायूरक्षक है जिनका वे उसके समान होकर के श्रद्धाका हमेशा सेवन करते है, वह सेवन करते हुए धन को प्राप्त होते है। अन्तिममन्त्र में श्रद्धा के प्रति कहा गया है की जो प्रातः काल में उसकी उपासना करते हुए परमात्मा से प्रीति करने के लिये उसको आमन्त्रित करते है, दिन के मध्ये में भी परमात्मा से प्रीति के लिए उसको आमंत्रित करते है, और सांयकाल में भी परमात्मप्रीति के लिये उसको आमन्त्रित करते है, हे श्रद्धा आस्तिकभावना होने पर परमात्मा से प्रीति होने पर ! हमारे इस जीवन को श्रद्धामय बना दो।

पाठांत प्रश्न

(देवीसूक्त में)

1. देवीसूक्त का सार लिखो।
2. वागाम्भृणीदेवी की महिमा का वर्णन करो।

   अहमेव स्वयमिदम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
3. अहं रुद्राय धनुरा ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
4. अहं सुवे पितरमस्य ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
5. अहमेव वतइव ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
6. अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चङ्ग इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
7. अहं सोममाहनसंङ्ग ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
8. मया सो अन्नमत्तिङ्ग ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
9. अतिसंक्षेप से देवीसूक्त का वर्णन करो।

(श्रद्धासूक्त में)

10. श्रद्धासूक्त का सार लिखो।

    श्रद्धा के द्वारा क्या क्या करना चाहिए इस विषय का मन्त्र लिखकर सायनभाष्य के अनुसार व्याख्यान करो।

    यथा देवा असुरेषु ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

    प्रियं श्रद्धे ददतः ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

    श्रद्धां प्रातर्हवामहे ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

देवीसूक्त में

19.1

1. वाक् ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, २ जगती, वाक् देवता।
2. सूक्त की द्रष्टा वागाम्भृणी।
3. अश्विना।
4. उभौ।
5. रुद्रेभिः।
6. रुद्र के समान होकर के।
7. मारना चाहिए।
8. सुपूर्वक प्रपूर्वक अव्-धातु से ईप्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में।
9. धनो का।
10. यज्ञ को चाहने वालो का।
11. किद्-धातु से क्वसुप्रत्ययऔर ङीप करने पर प्रथमा एकवचन में।
12. जो नहीं मानते या जानते नहीं है।
13. प्रपूर्वक अन्-धातु से लट प्रथमपुरुष एकवचन में।
14. शृणु।
15. पुरुशब्द सेसप्तमी अर्थ में त्राप्रत्यय करने पर।

19.2

1. देवैः।
2. सेवा करना।
3. वेद में।
4. शोभना मेधा यस्य तम् यहाँ बहुव्रीहि समास है।
5. षष्ठी अर्थ में।
6. करोमि।
7. शृ-धातु से उप्रत्यय करने पर शरुः यह चतुर्थी एकवचन में हुआ।

टिप्पणियाँ

8. हन्-धातु से तुमुन्प्रत्यय अर्थ में वैदिक तवैप्रत्यय करने पर।
9. विविध रूपों में व्याप्त होकर रहती हूँ।
10. सू-धातु से लट आत्मनेपद उत्तमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।
11. भुवनानि।
12. ऊपर अर्थ में।
13. तृतीया विभक्ति में।
14. अदस्-शब्द का तृतीया एकवचन में वैदिक रूप है।
15. वेद में।

श्रद्धासूक्त में

19.3

1. श्रद्धा कामायनी ऋषिका, अनुष्टुप् छ्न्द, और देवता श्रद्धा है।
2. गार्हपत्य आदि को कहा गया है।
3. सबसे ऊच स्थान पर।
4. घी पुरोडाश आदि देकर के।
5. किये गए यज्ञो में।
6. कुरु लौकिक रूप है।
7. संकल्परूप से किया गया कार्य।
8. धन।
9. श्रद्धावान मनुष्य धन को प्राप्त करते है।
10. प्रज्वलित करते है।

॥ उन्नीसवां पाठ समाप्त ॥

20

विष्णुसूक्त और मित्रावरुणसूक्त

वेदों में ज्ञानराशि और शब्दराशि है। वेद: अपौरुषेय परम्परा से ही है। प्राणिमात्र के लिये इष्टप्राप्ति के लिये और अनिष्ट परिहार के लिये अलौकिक उपाय वेद ही बताते है। वेद के द्वारा बताये गये उपाय प्रत्यक्ष से अथवा अनुमान प्रमाण से नही जाने जा सकते है। केवल वेद शब्दों के द्वारा ही उन उपायों को जान सकते है। ईश्वर भी सृष्टि की रचना करने में वेद ज्ञान को आश्रित करके ही जगत् का निर्माण किया। वह यह वैदिक ज्ञान भ्रान्तियों से और प्रमाद से रहित है। और वह वेद प्रयोग भेद से यज्ञ निर्वाहक होने से ऋक् यजु साम से तीन भेद किये गए है। और वह ही त्रयी कहलाते है। प्रतिवेद को पुन: मन्त्र और ब्राह्मण इन दो भागो में विभक्त किया गया है वेद विद्वानों के द्वारा। मन्त्र ही संहिता यह भी प्रचार किया गया है। मन्त्र तो यज्ञ आदि अनुष्ठान कारणभूत द्रव्यदेवता आदि का प्रकाशक है। ब्राह्मण तो विधि अर्थवाद आदि प्रतिपादक करने से अनेक प्रकार के है। स्तुति करने वाला ऋग्वेद है। उस ऋग्वेद का मण्डलरूप से और अष्टकरूप से दो भागो में विभाजित किया है। वहा मण्डल रूप से विभाग होने पर यह सूक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में एक सौ चौवनवाँ (१.१५४) सूक्त है। यह मन्त्रात्मक ऋग्वेद का अंश है।

इस पाठ में विष्णुसूक्त और मित्रावरुणसूक्त को पाठ्य के रूप में लिया गया है। पूर्व भाग में विष्णुसूक्त विद्यमान है, और उत्तरार्ध भाग में मित्रावरुणसूक्त लिया गया है।

विष्णुसूक्त में भी विष्णुदेवता की स्तुति की गई है। यहाँ विष्णु की महानता का वर्णन किया गया है। इस सूक्त के ऋषि दीर्घतमा औचथ्य, छन्द विराट् त्रिष्टुप्, और देवता विष्णु है। इस सूक्त में विष्णु की शक्ति को प्रकट किया गया है। विष्णु के निकट होने के लिये जो कोई भी प्रार्थना करता है तो वे प्रकट हो जाते है। इस पाठ में विष्णुसूक्त में विद्यमान छ: मन्त्रों का वर्णन किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- सूक्त में स्थित मन्त्रों के संहिता पाठ को जान पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों के पदपाठ को समझ पाने में;
- सूक्तस्थ मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- सूक्तस्थ मन्त्रों की व्याख्या कर पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों का सरलार्थ जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण पदों को समझ पाने में;
- सूक्त का तात्पर्य और सूक्त के तत्त्व जान पाने में;
- सूक्त के अर्थ को जानकर सूक्त की महिमा समझ पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक और लौकिक के भेद को समझ पाने में;
- कुछ वैदिक रूपों को जान पाने में।

विष्णुसूक्त

20.1 मूलपाठ विष्णुसूक्त

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥१॥

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥२॥

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः॥३॥

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा॥४॥

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥५॥

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि॥६॥

20.1.1 मूलपाठ (विष्णुसूक्त) की व्याख्या

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥१॥

पदपाठ - विष्णोः। नु। कम्। वीर्याणि। प्र। वोचम्। यः। पार्थिवानि। विऽममे। रजांसि॥ यः। अस्कभायत्। उत्ऽतरम्। सधऽस्थम्। विऽचक्रमाणः। त्रेधा। उरुऽगायः॥१॥

अन्वय - हे मनुष्या यः पार्थिवानि रजांसि नु विममे य उरुगाय उत्तरं सधस्थं त्रेधा विचक्रमाणोऽस्क भायत्तस्य विष्णोर्वीर्याणि प्रवोचमनेन कं प्राप्नुयां तथा यूयमपि कुरुत ॥१॥

व्याख्या - हे मनुष्यों विष्णु के व्यापकशीलदेव के पराक्रम को हम बहुत शीघ्र ही कहते है। वे किसकी रचना करता है तो कहते है की तीनो लोक अग्नि, वायु आदित्यरूप लोकों का विशेष रूप से निर्माण करता है। यहाँ पर तीनो लोक भी पृथिवीवाची शब्द है। उससे तीनो लोक का पृथिवीशब्दवाच्यत्व है। और जो विष्णु प्रलय के अनन्तर एक साथ के स्थान को तीन प्रकार से विशेष कर कम्पाता हुआ रोकता है, यह अर्थ है। इसके द्वारा ही अन्तरिक्ष आश्रित तीनो लोक की रचना की। अथवा जो विष्णु पृथिवीसंबन्धि पृथिवी के नीचे के सात लोकों को अनेक प्रकार से निर्मित किया है। रज: शब्द लोकवाची, 'लोका रजांस्युच्यन्ते' ये यास्क ने कहा। और जिसने प्रलय के बाद एक साथ के स्थान को तीन प्रकार से विशेष कर कम्पाता हुआ पुण्यकृत मनुष्यों के साथ निवासयोग्य भू आदि सात लोकों की रचना की। स्कम्भे: 'स्तम्भुस्तुम्भु' इससे विहित श्न: को 'छन्दसि शायजपि' इससे व्यत्यय के द्वारा शायजादेश हुआ। अथवा पृथिवीनिमित्तलोको का निर्माण किया। भू आदि तीन लोक यह अर्थ है। भूमि पर अर्जित किया गया कर्मभोग के लिए अन्य लोकों का कारण है। और जो सबसे उत्कृष्टतर सभी लोकों के ऊपर है। अपुनरावृत्ति से उसकी उत्कृष्टत्व को कहते है। एक साथ के स्थान को उपासकों का सत्यलोक का निर्माण किया अथवा स्थिर करता है। क्या किया। तीन प्रकार से विशेष कर कम्पाता हुआ रोकता है। विष्णु के तीन क्रम है 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' (ऋ० स० १.२२.१७) इत्यादि श्रुतियों में प्रसिद्ध है। इसलिए ही विष्णु के पराक्रम को अच्छी प्रकार से कहू और उससे सुख को प्राप्त करू। इस प्रकार के जिसने कार्य किये उस प्रकार के विष्णु के पराक्रम को कहता हूँ।

टिप्पणी - नु -शीघ्र। कम् यह पादपूरण अर्थ में निपात है। यद्यपि नु कम् ये भिन्न निपात है, फिर भी निघण्टू में हिकम् नुकम् सुकम् आहिकम् आकीम् नकि: माकि: नकीम् आकृतम् इन नौ का एक पद के द्वारा गणना की। निपातो का समास नही होता है। इसलिये पदपाठ में दो अलग निपात दिखाए गये।

टिप्पणियाँ

सरलार्थः – शीघ्र ही मै विष्णु के शक्ति पूर्वक पराक्रमो का वर्णन करूँगा, जो महान गति सम्पन्न तीन पैरो के द्वारा जाकर के पार्थिव लोक आदि की रचना की। और जो (पवित्रात्मा के लिये) विशाल मेलस्थान का निर्माण किया था। इसका यह भाव है की जैसे सूर्य अपने आकर्षण से सभी भूगोलो को धारण करता है वैसे ही सूर्य आदि लोकों का कारण और जीव को जगदीश्वर धारण करते है जो इन असंख्यलोकों का निर्माण किया, जिसमे ये प्रलय को प्राप्त होते है, वह ही सबको उपासना करने योग्य है।

व्याकरण

- **अस्कभायत्** – स्कभि प्रतिबन्धे इस धातु से लङ्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है। रोकता है यह अर्थ है।
- **उत्तरम् सधस्थम्** – सहशब्द से उत्तरपद हो तो वेद में सहशब्द के स्थान में सध इसका प्रयोग होता है। उत्तरम् इसका प्रलय के बाद यह अर्थ है। पुण्यकृत लोक।
- **विचक्रमाणः** – विपूर्वक क्रमु पादविक्षेपे इस धातु से कानच्-प्रत्यय के योग से विचक्रमाण यह शब्द निष्पन्न होता है।
- **उरुगायः** – ऊर्णु आच्छादने इस धातु से उण्-प्रत्यय के योग से उरुशब्द प्राप्त होता है। गा गतौ इस धातु से अण्-प्रत्यय के योग से गाय शब्द प्राप्त होता है। विष्णु उरुगाय कहलाते है। बहुत स्थानों पर जिनकी गति हो यह उसका अर्थ है। कहा से यह हुआ। तीन पादों में लोकों का अतिक्रमण किया इसलिये ऐसा कहते है।

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे-ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥२॥

पदपाठ – **प्र। तत्। विष्णुः। स्तवते। वीर्येण। मृगः। न। भीमः। कुचरः। गिरिऽस्थाः॥ यस्य। उरुषु। त्रिषु। विऽक्रमणेषु। अधिऽक्षियन्ति। भुवनानि। विश्वा॥२॥**

अन्वय – हे मनुष्या यस्य निर्मितेषूरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा भुवनान्यधिक्षियन्ति तत् स विष्णुः स्ववीर्येण कुचरो गिरिष्ठा मृगो भीमो नेव विश्वाँल्लोकान् प्रस्तवते ॥२॥

व्याख्या – हे मनुष्यों जिस जगदीश्वर के निर्माण किये हुए जन्म नाम और स्थान इन तीनो का विविध प्रकार के सृष्टि के कर्मो में समस्त लोक लोकान्तर आधार रूप में निवास करते है। वह महानुभावशक्ति से अपने पराक्रमो की ऊपर कहे गए सभी के द्वारा स्तुति करते है। शक्ति से स्तुति करते है यहाँ पर उदाहरण दिया गया है। हिरनों के लिए शेर के समान। जैसे अपने विरोधियों को हिरण के समान भयभीत करता है जैसे शेर से हिरण भयभीत होते है वैसे ही डरपोक मनुष्य कुटिलगामी अर्थात ऊचे नीचे नाना प्रकार विषम स्थलों में चलने और पर्वत कन्दराओं में स्थिर होने वाले हिरण के समान भंयकर समस्त लोक लोकान्तरो को प्रशासित करता है। इस अर्थ में निरुक्त में कहा गया – 'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः'। हिरण के समान भंयकर समस्त लोक लोकान्तरो को प्रशसित करता है। कुचर इति कुटिलकर्म देवताभिधानकुटिल कर्म करते है। गिरिस्थायी

गिरि पर्वत होते है पर्ववान् पर्वत को कहते है। उसी प्रकार हम भी हिरणों को खोजने वाला शत्रुओ के समान वह भंयकर है। परमेश्वर से भय 'भीषास्माद्वात: पवते' (तै० आ० ८.८.१) इत्यादिश्रुतियों में प्रसिद्ध है। और कुचर:कुटिलगामी शत्रुवध आदिकुत्सितकर्म को कर्ता सभी भूमियों में अथवा तीनो लोक में संचार करता है अथवा पर्वत के समान ऊचे स्थान होते है। अथवा गिरि मन्त्रादिरूप में वाणी सभी वर्तमान है। इस प्रकार यह अपनी महिमा से स्तुति करते है।और जिस विष्णु के जांघो से विस्तीर्णतीन संख्याओ में विक्रम पैर प्रक्षेप में विश्व के सभी भुवनउत्पन्न आश्रित होकर के निवास करते है वह विष्णु की स्तुति करता है।

टिप्पणी - इस मन्त्र में तीनो लोक का विस्तार किया उसके पराक्रमो का इस प्रकार यहाँ अनेक प्रकार के मत आचार्यो के है। विक्रमशब्द का पादचलाना अर्थ है। उरुशब्द का विस्तार अर्थ है। विस्तृत तीनो लोक में पादप्रक्षेप करके सभी लोकों को आश्रित करके रहता है। विश्व इस सर्वनाम का विश्वानि यह रूप है। वेद में तो विश्वा यह रूप है। विष्णु के तीन पाद जितने ही सभी लोक है। अर्थात् विष्णु ने तीन पैर के द्वारा सभी भुवन अर्थात् रचित जगत् को सम्पूर्ण रूप से अतिक्रमण करते है। यहाँ भुवन क्या है। और वे पादप्रक्षेप क्या है। यहाँ यह विष्णु क्या है। उसका क्या स्वरूप है। पूर्वमन्त्र में जो कहा गया की विष्णु ने ऊपर के लोक और अधोलोक की रचना की। शाकपूणिने किसी की व्याख्या करते हुए कहा -विष्णु ने तीन पैर के द्वारा तीनो भवनों को पार कर लिया तीन भाव के द्वारा पृथिवी अन्तरिक्ष और दिव में। और्णनाभ इति आचार्य का मत है की विष्णु यहाँ पर सूर्य है। पूर्व में ऊगता हुआ प्रथमपाद को धारण करते है। मध्याह्न में आकाश पर चढ़कर द्वितीय पाद को रखता है। और सांयकाल में घर जाने के लिये तीसरा पद को रखता है।

उसकी इस प्रकार व्याख्या भी सम्भव है - जो सृष्टिकर्ता है वह विष्णु है। वह ही तीन पाद में सृष्टि को अतिक्रमण करके रहता है। अर्थात् सृष्टिकाल में एक पाद को रखा। स्थितिकाल में द्वितीय पाद रखा। प्रलयकाल में तीसरा पाद रखा। इस प्रकार वह सृष्टि को अतिक्रमण करता है। यद्यपि एक ही ईश्वर सृष्टिकाल में ब्रह्मा, पालनकाल में विष्णु, संहार में प्रवृत्त महेश्वर इन तीन नामो से जाने जाते है। फिर भी वेद से उत्तरसाहित्य में भी विष्णु को ही सृष्टिस्थितिसंहार कर्ता अधिकाश रूप से कहा गया है।

सरलार्थ - विष्णु जिसके तीनो पाद में समस्तप्राणी निवास करता है, जो पराक्रम युक्तकार्य के लिये स्तुति की। जैसे पर्वत में निवास करने वाले और स्वेच्छा से विचरण करने वाले भयङ्कर पशु रहते है। यहाँ पर यह भाव है की यहाँ पर उपमालङ्कार है। कोई भी पदार्थ ईश्वरसृष्टिनियमक्रम का उल्लङ्घन कर सकता है, जो धार्मिकका मित्र के समान आनन्द देने वाला दुष्टो का शेर के समान भयप्रदान करने वाले न्याय आदिगुण को धारण करने वाले परमात्मा है, वह ही सभी का अधिष्ठाता न्यायाधीश है ऐसा जानना चाहिए।

व्याकरण

- **स्तवते** - स्तु प्रशंसायाम् इस धातु से कर्म में यह आत्मनेपद का। प्रथमपुरुष एकवचन का है।
- **मृग:** - मृज् गतौ इस धातु से कप्रत्यय करने पर मृगशब्द से निष्पन्न होता है।

टिप्पणियाँ

- **भीमः** – भी भये इस धातु से मक् प्रत्यय करने पर कहा गया है।
- **अधिक्षियन्ति** – अधिपूर्वक क्षि निवासे इस धातु से लट प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप है। आश्रितकरके निवास करता है यह उसका अर्थ है।
- **गिरिष्ठाः** – गिरिशब्द से स्था गतिनिवृत्तौ इस धातु से क्विपप्रत्यय करने पर गिरिष्ठाः यह रूप हुआ। वहा गिरि इस पद में भी गि यह वाणी है। उसका सप्तमी में गिरि है। स्थिर रहने पर वह गिरिष्ठाः कहलाती है। अर्थात् वाणी का वह स्वामी है। गिरिशब्द पर्वतवाची है। तब पर्वत में स्थिर रहता है वह यह अर्थ आता है। अर्थात् पर्वतजैसे उच्छ्रित तथा उन्नतलोकवासी यह अर्थ है।

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षितं उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थ-मेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः॥३॥

पदपाठ – प्र। विष्णवे। शूषम्। एतु। मन्म। गिरिऽक्षितेे। उरुऽगायाय। वृष्णे॥ यः। इदम्। दीर्घम्। प्रऽयतम्। सधऽस्थम्। एकः। विऽममे। त्रिऽभिः। इत्। पदेभिः॥३॥

अन्वय – हे मनुष्या य एक इत् त्रिभिः पदेभिरिदं दीर्घ प्रयतं सधस्थं प्रविममे तस्मै वृष्णे गिरिक्षित उरुगायाय विष्णवे मन्म शूषमेतु ॥३॥

व्याख्या – हे मनुष्यों जो एक ही परमात्मा तीन अर्थात स्थूल सूक्ष्म जानने योग्य अंशो से इस बड़े हुए ऊतम यत्न साध्य सिद्धांतावयवो को एक साथ के स्थान को विशेषता से रचता है उस अनन्त पराक्रमी को अपने में स्थिर रखने वाले बहुत प्राणियों से वा बहुत प्रकार से प्रशसित व्यापक परमात्मा के लिए विज्ञान और मन्त्र प्राप्त हो। कर्म में संप्रदान होने से चतुर्थी। किस प्रकार की। पर्वत के समान वाणी उन्नतप्रदेश हो अथवा अनेक रूपों में उसकी स्तुति करते हुए उसकी कामना करते है। इस प्रकार के महानुभाव को हम शीघ्र प्राप्त हो। कौन इसमें विशेष है यह कहलाता है। जो यह विष्णुप्रसिद्ध दिखाई देने वाले अतिविस्तृतलोको में निवास करता हुआ एकही अद्वितीय होता हुआ तीन पैर के द्वारा विशेष रूप से इन लोक का निर्माण किया।

सरलार्थ – (मेरी) शक्तिशाली प्रार्थना, विस्तृत लोक में वास करने वाले, विशाल पैरो से युक्त, इच्छा को पूर्ण करने वाला, विष्णु के प्रति (जाये) जो आत्मा को साधना के लिये प्रशस्तमेलस्थान को तीन पैरो से उस परमात्मा ने धारण किया। इसका ही यह भाव भी अनन्तबल से युक्त जगदीश्वर के अन्तर से इस विचित्रजगत का स्रष्टा धारण करने वाला और पालन करने वाले उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिए उसको छोड़कर अन्य किसी की उपासना नही करनी चाहिए।

व्याकरण

- **शूषम्** – शूषधातु से घञ करने पर शूष यह रूप बना। उसका द्वितीयान्त रूप शूषम् है।
- **गिरिक्षिते** – क्षि निवासे इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर। तुक आगम। गिरि+क्षिते रूप बनता है।

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदा-न्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्या-मेको दाधार भुवनानि विश्वा॥४॥

पदपाठ - यस्य। त्री। पूर्णा। मधुना। पदानि। अक्षीयमाणा। स्वधया। मदन्ति॥ यः। ऊँम् इति। त्रिऽधातु। पृथिवीम्। उत। द्याम्। एकः। दाधार। भुवनानि। विश्वा॥४॥

अन्वय - हे मनुष्या यस्य रचनायां मधुना पूर्णाऽक्षीयमाणा त्री पदानि स्वधया मदन्ति य एक उ पृथिवीमुत द्यां त्रिधातु विश्वा भुवनानि दाधार स एव परमात्मा सर्वैर्वेदितव्यः ॥४॥

व्याख्या - जो विष्णु मधुर आदि गुणों से युक्त दिव्य अमृत के द्वारा पूर्णतीन पैर पादप्रक्षेप विनाश रहित अपने अन्न से अपने आश्रित लोगो को प्रसन्न करने वाला। और जो एक ही अद्वैत परमात्मा पृथिवी प्रख्यात भूमिद्यौ प्रकाशित अन्तरिक्षऔर विश्वके चौदह भुवनऔर लोकों का कर्ता है। अथवा पृथिवीशब्द से नीचे के अतलवितल आदि सात भुवन को कहा गया है। द्युशब्द से उसके अंतर्गत सात भुव आदिभुवन है। इस प्रकार चौदह लोकों को विश्व भुवनसभी उसके अन्तर्गत आते है। जिसमे सत्व रजस और तं ये तीन हो। तीन धातुओ का समाहार त्रिधातु कहलाता है। पृथिवी जल अग्नि तीन रूपों जैसा विशिष्टहोता है और उसको धारण करने वाला धृतवान् कहलाता है। तुजादि होने से अभ्यास को दीर्घत्व हुआ। उत्पन्न किया अर्थ है। छन्दोगारण्यक में कहा गया है - 'तत्तेजोऽसृजत तदन्नमसृजत ता आप ऐक्षन्त' इति भूतत्रयसृष्टिमुक्त्वा 'हन्ताहमिमास्तिस्रो देवतास्तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि' (छा० उ० ६.३.२-३) इत्यादि के द्वारा तीन कारणों से सृष्टि को उत्पन्न किया। अथवा। तीन धातु से तीन काल से अथवा तीन गुण से धारण किया हुआ है।

सरलार्थ - जिसका कभी विनाश नही होता है, जिसके मधुर से पूर्ण तीन पैर (मनुष्यों के लिये) अपनी शक्ति से आनन्द देता है, जो एक होता हुआ भी तीनधातुओ को, पृथिवी को, आकाश को तथा सम्पूर्ण लोक को धारण करता है (उस विष्णु के प्रति मेंरी शक्तिशाली स्तुति जाये)। इसका यह भावजो अनादिकारण से सूर्य आदिप्रकाश के समान शीघ्र उत्पन्न करने वाला सभी के द्वारा भोग्य पदार्थो के साथ जोड़ता है आनंद प्रदान करता है, उसके गुणकर्म उपासना से ही आनन्दकी प्राप्ति होती है।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥५॥

पदपाठ - तत्। अस्य। प्रियम्। अभि। पाथः। अश्याम्। नरः। यत्र। देवऽयवः। मदन्ति॥ उरुऽक्रमस्य। सः। हि। बन्धुः। इत्था। विष्णोः। पदे। परमे। मध्वः। उत्सः॥५॥

अन्वय - (अहं) यत्र देवयवो नरो मन्दति तदस्योरुक्रमस्य विष्णोः प्रियं पाथोभ्यश्यां यस्य परमे पदे मध्व उत्सइव तृप्तिकरो गुणो वर्त्तते स हि इत्था नो बन्धुरिवास्ति ॥५॥

व्याख्या - जिस प्रिय विष्णु का प्रियभूत होकर के सभी के सेवन करने योग्य प्रसिद्ध मार्ग को बनता है। उसका यह अन्तरिक्षनाम है, 'पाथोऽन्तरिक्षं पथा व्याख्यातम्' (निरु० ६.७) इति यास्क के द्वारा कहा गया है। अविनश्वर ब्रह्मलोक को कहते है। इस में व्याप्त होता है। उसको ही विशेष

टिप्पणियाँ

रूप से कहते है। जिस स्थान पर दिव्य लोगो की कामना करने वाले देव के प्रकाशशील स्वभाव को विष्णु आत्मा को चाहने वाले यज्ञदान आदि के द्वारा प्राप्त करने की इच्छा वाले मनुष्य प्रसन्नता का अनुभव करते है। सब और से उसको प्राप्त हो यह उसका अन्वय है। फिर भी उसको विशेष रूप से कहा गया है। अनन्त पराक्रम युक्त अत्यधिकसभी जगत का कारण वह व्यापक शक्तिशाली विष्णु ही है, वह केवलसुखात्मक स्थान पर मधुर की अनुभूति करता है। उसको प्राप्त होऊ। जहा पर भूख प्यास जन्म मरण आदि की दुबारा आवृत्ति नही हो केवल संकल्पमात्र से ही अमृत आदिभोग प्राप्त हो उस प्रकार इसका अर्थ है। उससे अधिक नही है ऐसा कहा गया है। इस प्रकार वह ही सभी का भाई है सभी के लिये भाई के समान हितकारी अथवा उसके पदको प्राप्त होता है। 'न च पुनरावर्तते' इति श्रुति से उसको मित्र के समान माना गया है। हिशब्द सभी श्रुतिस्मृतिपुराण आदि में प्रसिद्धद्योतन अर्थ में है।

सरलार्थ – विष्णु के उस लोक को प्राप्त करना चाहता हूँ जहा देवताओ की इच्छा से मनुष्य आनन्द करते है। महान गतिशील विष्णु का एकमधुसरोवर है। इस प्रकार निश्चय से ही वह सभी के मित्र के समान ही है। यह इसका भावहै यहाँ उपमावाचक और लुप्तोपमालङ्कार। जो परमेश्वर से वेदद्वारा दी हुई आज्ञा के अनुसार जाता है, वे मोक्षसुख को प्राप्त होते है। जैसे मनुष्य भाई से सहायता को प्राप्त करते है उसी प्रकार प्यासे मधुरजल कुए को प्राप्त करके तृप्त होते है, तथा परमेश्वर को प्राप्त करके पूर्ण आनन्द को प्राप्त करते है।

व्याकरण

- देवयवः – देव+यु क्विप्
- इत्था – इत्थम् इस अर्थ में आत्व

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि॥६॥

पदपाठ – ता। वाम्। वास्तूनि। उश्मसि। गमध्यै। यत्र। गावः। भूरिऽशृङ्गाः। अयासः। अत्र। अह। तत्। उरुऽगायस्य। वृष्णः। परमम्। पदम्। अव। भाति। भूरि॥६॥

अन्वय – (हे आप्तौ विद्वांसौ) यत्रायासो भूरिशृङ्गा गावः सन्ति ता तानि वास्तूनि वां युवयोर्गमध्यै वयमुश्मसि। यदुरुगायस्य वृष्णः परमेश्वरस्य परमं पदं भूर्यवभाति तदत्राह वयमुश्मसि ॥६॥

व्याख्या – हे शास्त्रवेता विद्वानों अथवा यजमान तुम्हारे लिये प्राप्त करने योग्य प्रसिद्ध वस्तुओ को सुखनिवास के योग्य स्थानजाने को हम लोग चाहते है। उसके लिये विष्णु से प्रार्थना करते है यह अर्थ है। उन किनको यहाँ पर कहते हो। जहा वस्तुओ में बहुत उत्तम सींगो के समान किरने के द्वारा उन वस्तुओ को हम जान सकते है अथवा वे किरणों द्वारा अत्यधिक विस्तृत होती है। अथवा। उन गए हुए को प्राप्त हो। इस प्रकार अत्यन्तप्रकाश से युक्त यह अर्थ है। यहाँ कहा गया है की वस्तु के आधारभूत द्युलोक में अनन्त विस्तृत सूर्य की किरने सुख की वर्षा करने वाले सभी पुराण आदि में समझने योग्य प्रसिद्ध परमात्मा के विशेष स्थान को अत्यन्त उत्कृष्टता को

अपनी महिमा से प्रकट करता है। इस मन्त्र में यास्क ने गोशब्द को किरणवाचक रूप में व्याख्या की है - उन वस्तुओ की कामना करता हूँ जहा जाने के लिये गायों के तीक्ष्ण सींग के समान जो तेज किरने है उनका प्रकाश वहा तक विस्तृत हो "शृङ्गं श्रयतेर्वा शृणातेर्वा शम्नातेर्वा शरणयोद्गतमिति वा शिरसो निर्गतमिति वायासोऽयना"। वहा अनन्त विष्णु की महिमा का उत्कृष्ट रूप से उसका वर्णन किया।

सरलार्थ - इस मन्त्र में ऋत्विग पत्नीयजमान के प्रति कहता है की हे पत्नीयजमानो तुम उस स्थान के प्रतिजाओ जहाँ तेज किरने हमेशा गतिशील रहती है। जहाँ महान गतिशील की, इच्छापूर्ति करने वाले विष्णु के परम धाम अधोलोक को प्रकाशित करता है। यह इसका भाव है की यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जहाँ विद्वांन मुक्ति को प्राप्त करते है, वहा कुछ भी अन्धकार नही है, और मोक्ष प्राप्त किरने प्रकाशित होती है उस विद्वान को ही मुक्तिपद ब्रह्म सभी और से प्रकाशित करते है।

व्याकरण

- **उश्मसि** - वश् कान्तौ इस धातु से लट् प्रथमपुरुष बहुवचन। वकार को उकार अर्थात् सम्प्रसारण छन्द में।
- **अयासः** - इण् धातु से अच जस असुक् इनके योग में अयास यह शब्दः निष्पन्न होता है। प्राप्त हुआ यह उसका अर्थ है।
- **वाम्** - युष्मद अर्थ में बहुत्व को द्विवचनस्थान में।
- **गमध्यै** - गम् धातु से तुमुन स्थान में शध्यै प्रत्यय करने पर। यह उसका रूप है।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. विष्णुसूक्त का ऋषि छन्द और देवता कौन है?
2. नु इस अर्थ में किन दो पद का प्रयोग किया गया है?
3. विष्णु शब्द का क्या अर्थ है?
4. वीर्याणि इसका क्या अर्थ है?
5. विममे इसका क्या अर्थ है?
6. रजः शब्द किस प्रकार का है?
7. विष्णु के कितने कार्य है?

टिप्पणियाँ

8. कुचरः इसका क्या अर्थ है?

9. शूषम् इसका क्या अर्थ है?

10. यस्य त्री पूर्णा... इत्यादिमन्त्र में पृथिवी शब्द का क्या अर्थ है?

11. दाधार इसका क्या अर्थ है?

12. त्रिधातु इसका विग्रह वाक्य लिखो।

13. पाथः इसका क्या अर्थ है?

14. स हि बन्धुरित्था ... इत्यादि मन्त्र अंश में हि शब्द का क्या अर्थ है?

15. उश्मसि इसका क्या अर्थ है?

20.2 विष्णु का स्वरुप

विष्णु एक द्युस्थानीय देव है। ऋग्वेद में उसकी स्तुति के लिए पांच सूक्तप्राप्त होते है। यद्यपि सूक्तो को संख्या कम है, तथापि महानता की दृष्टि से ये शीर्षस्थान पर है।

विष्णुशब्द विष्-धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थहोता है व्यापकशील। अर्थात् तीनो लोक में ही जिसकी कीर्तिप्रसिद्ध होती है वह विष्णु कहलाता है। विष्णुशब्द का अन्य अर्थ होता है क्रियाशील है। यह विष्णुसभी के अपेक्षा से अधिकक्रियाशील है। शरीर के अधिष्ठाता देव विष्णु है। पक्षियों के मध्य में इसका वाहनगरुड है। भीम-वृष्ण-गिरिजा-गिरिक्षत-सहीयान्-इत्यादिनाम से भी इस विष्णु का व्यवहार किया जाता है। विष्णु युवक तथा विशालकाय है ऐसा ऋग्वेद में वर्णन किया गया है। वामन अवतार में उसके त्रिविक्रमरूप से परिचित है। उसका महत्त्वपूर्ण कार्य है, पाद की तीन बार से विस्तार किया है।

त्रीणि भान्ति रजांस्तस्य यत्पदानि तु तेजसा।
येन मेधातिथिः प्राह विष्णुमेनं त्रिविक्रममं॥२.६४॥

ऋग्वेद में बहुत बार ही विक्रम-उरुक्रम-उरुगाय-इत्यादिशब्द से उसके तीन पैर का वर्णन किया है। तीन पाद के विस्तार से भी सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। उसके दो विस्तार लौकिकमनुष्यों के लिये ज्ञान का विषय है, परन्तु तीसरी बार जो विस्तार किया है, बह साधारण रूप से नही जाना जा सकता है। अत ज्ञान के लिये तीसरे पद को देखने के लिए आकाश में ही दृष्टि को स्थापित करती है।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिदीव चक्षुराततम्॥ ऋग्वेद-१.२२.२०॥

जहा सज्जन निवास करता है, और पुन जहा मधुसरोवर वहा पर ही विष्णुनिवास करते है। विष्णु जहाँ निवास करते है, वहा देव हमेशा विचरण करते है। विष्णु के तीन पाद के विषय में प्राचीनकाल

से ही वर्णन प्राप्त होते है। विष्णु के प्रथम पाद से पृथ्वीलोक का सङ्क्रमणऔर द्वितीय पद से अन्तरिक्षलोक का तथा तृतीय पद से द्युलोकस्थसूर्यमण्डल को प्राप्त कर लेते है इत्यादिमतप्राप्त होते है। वस्तुत तो विष्णुसूर्य का एक प्रतिरूप है। अथर्ववेद में भी विष्णु से ही ऊष्णता प्रदातृत्व के रूप में विख्यात है। **(अथर्ववेद-५.२६.७)।**

विष्णु के सम्बन्ध मुख्यरूप से इन्द्र के साथ भी है। यह इन्द्र के मित्र है। पुराण में यह विष्णु उपेन्द्ररूप से भी (इन्द्र के छोटे भाई के रूप) में वर्णन किया गया है। वृत्रासुर के वधकाल में विष्णु ने इन्द्र की सहायता की। सुना जाता है की वृत्रासुरवध काल में इन्द्र ने पादविस्तार के लिये विष्णु को कहते है।

अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व॥ ऋग्वेद-४.१८.११॥

शतपथब्राह्मण के अनुसार वृत्रवध काल में विष्णु ने इन्द्र के साथ युद्धस्थल में ही थे। इन्द्र के साथ मित्रता के होने से मरुद्गण भी इसके मित्र थे।

विष्णु के चरित्र का एक विशेषहै की वह गर्भ के रक्षक है। गर्भाधाननिमित्त के लिये अन्य देवो के साथ विष्णु की भी स्तुति प्रसिद्ध है। इनको छोड़कर विष्णुहमेशा परोपकारी शरणागतरक्षक भक्तवत्सल दयालुऔर उदार है। वह ही विश्व को धारण और पालन करता है। गिरिक्षित-इत्यादि उपाधि से युक्त विष्णु सूर्य के प्रतिनिधि होने के रूप में वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में अनेक स्थान पर इन्द्रमित्रवरुण आदिदेवो के समान ही विष्णु को अभिहित किया गया है।

इन्द्रं मित्रे वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ (ऋग्वेद- १.१६४.४६)

20.3 विष्णुसूक्त का सार

विष्णु वैदिकदेवो में अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह ही सभी चर अचरजीवो का आधार है। यह ब्राह्मणप्रिय है, इसलिये कहते है की ब्राह्मनो में पदाघात के लक्षण विद्यमान है। इसके ही उदर से कमल की उत्पत्ति हुई जहा पर बैठकर के ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड की रचना की। इसके पैर से ही गङ्गा की सृष्टि हुई यह प्रसिद्ध ही है। और यह विश्व के पालनकर्ता भी कहलाता है। इस प्रकार वैदिकदेवो में भी अत्यधिकमहानता को धारण किये हुए यह विष्णु प्रसीद्ध ही है।

इस सूक्त के आदि श्रुतिमें विष्णु के प्रति कहा गया है की जो शीघ्र ही महान गति से युक्तविष्णु के पराक्रम पूर्ण कार्य का वर्णन करता हूँ, वह कैसे तीन पैर के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किया, सज्जनो के लिए उच्चस्थान का निर्माण किया इत्यादि कहा है। पर्वत में स्थित स्वेच्छा से गमन करने वाले भयानकपशु जैसे स्वतन्त्र है वैसे ही यह भी स्वतन्त्रइसके तीन पादभूमि के मध्य में सभी प्राणि जीवन बिताते है, इसलिये यह स्तुत्ति करते है। पुण्यात्मा के मिलनस्थान का तीन पाद से व्यापक उच्चस्थाननिवासी यह विष्णुहमारी रक्षा करे हमारी शरण को प्राप्त हो, और हमारी इच्छाको पूर्ण करो। हमारी स्तुति पृथिवीजलतेज स्वरूप शाश्वत आनन्ददायकआकाश का तथा विश्व के धाता विष्णु को प्राप्त हो। विष्णु का प्रिय लोक मेरा भी हो जहा मनुष्यबिना किसी बाधा के

आनन्द को प्राप्त करते है। विष्णु लोक में मनुष्यों की प्रसन्नता के लिये एक मधुसरोवर है, अत निश्चय से वह सभी का मित्र ही होता है। ऋत्विग पत्नी-यजमानके प्रति कहते है की वे दोनों भी विष्णुलोक को प्राप्त हो, जहा विस्तृत प्रकाश से सभी जगह ज्योतिफैली हुई है, तथा सभी मनोरथो का परिपूरक विष्णुअपने भाव से प्रकाशित करते है।

विष्णसूक्त अंश में पाठसार

इस पाठ में विष्णुसूक्त के छ मन्त्र है। इस विष्णुसूक्त में ऋषि कहते है की सभी जगह व्यापकशील विष्णु के पराक्रमो को शीघ्र कहते है। जो पृथिवी सम्बद्ध अग्नि, वायु आदि का निर्माण किया। और जिसने अतिविस्तृत अन्तरिक्ष का आधाररूप से निर्माण किया। भूमि विविध रूप से क्रम पूर्वक वह महद् आदि के द्वारा अनेक गीत गाती है। उस प्रकार के विष्णु के पराक्रम को कहता हूँ। पराक्रम कार्यो की स्तुति करता हुआ सिंह आदि के समान भयानक, शत्रुवधकर्त्ता, उन्नत वाचक के रूप मन्त्रों में स्थित है, जिस विष्णु के पादप्रक्षेप के द्वारा यह सभी भुवन को आश्रित किया हुआ है, उस विष्णु की प्रकर्षरूप से स्तुति करते है। उन्नतप्रदेश में रहता हुआ अनेक प्रकार से किये गये कार्यो के चारो और सर्वव्यापक विष्णु के लिये हमारे कर्मजन्यफल अथवा हमारे स्तोत्रजन्यबल हो। जो विष्णु ने इस अतिविस्तृततीन लोक को अद्वितीय होता हुआ तीन पैरो के द्वारा विशेष रूप से निर्मित किया। विष्णु के मधुर से पूर्णतीन पादप्रक्षेप से अक्षयरूप से आश्रित मनुष्यों का अन्न के द्वारा रक्षित है। पृथिवी, द्युलोक और सभी भुवन पृथिवी जल तेजरूप से तिन धातुओ को धारण किया हुआ है। विष्णु के सभी प्रियतमो को उसके प्रसिद्ध अविनाशी ब्रह्मलोक को व्याप्त करके और जिसमे ब्रह्मलोक विष्णु को आत्मा से चाहने वाले मनुष्य विशाल तृप्ति का अनुभव करते है। अत्यन्तकर्मो के कर्ता विष्णु के उत्कृष्ट स्थान में मधुर सरोवर है। इस प्रकार से वह विष्णुसभी के भाई के रूप में रहते है। अन्तिम मन्त्र में दम्पति के प्रति कहा गया है की हे दम्पती (यागकर्म को करने वाले यजमान) तुम्हारे प्रसिद्ध सुख के योग्य स्थान की हम कामना करते है, उसके लिये विष्णु की प्रार्थना करते है। जिन स्थानो में किरने अत्यन्त उन्नतस्थान से जाने वाली हो, इस स्थानमें वस्तुओ के आधारभूत द्युलोक में अनेक प्रकार की स्तुति करने वाले कार्यो का सुख की वर्षा करने वाले विष्णु के समान उत्कृष्ट स्थान को अपनी महिमा से प्रकट करे।

मित्रावरुणसूक्त

इस प्रस्तुत पाठ के उत्तरार्ध में मित्रावरुणसूक्त को प्रस्तुत करते है। वेदों में कहे हुए प्रसिद्ध सूक्तों में यह प्रसिद्ध मित्रावरुणसूक्त है। वैदिक साहित्य में मित्रावरुण भाई के समान स्नेह के प्रतीक हैं। वैदिक व्याकरण के अनुसार से अर्थात् निरुक्त के अनुसार से मित्रावरुण वायु कहलाते है। मित्र प्राणरक्षक रूप से प्रतिपादित है। और वरुण जलधारक रूप से अथवा वर्षा करने वाले के रूप से प्रतिपादित किया है। ऋग्वेद के ऐतरेयब्राह्मणग्रन्थ के अनुसार से मित्र रात्रि रूप से और

वरुण दिन रूप से प्रतिपादित किया है। इस मित्रावरुण सूक्त के आत्रेय श्रुतिविद ऋषि, मित्रावरुण देव, त्रिष्टुप् छन्द है।

20.4 मूलपाठ मित्रावरुणसूक्त

ऋतेनं ऋतमपिंहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्॥१॥

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहंभिर्दुदुह्रे।
विश्वा पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त॥२॥

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू॥३॥

आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्ववर्वाक्।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति॥४॥

अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वी बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः॥५॥

अक्रंविहस्ता सुकृतें परस्या यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ॥६॥

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यः श्वाजनीव।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य॥७॥

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च॥८॥

यद्बंहिष्ठं नातिविधें सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा।
तेनं नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम॥९॥

20.4.1 मूलपाठ की व्याख्या (मित्रावरुणसूक्त)

ऋतेनं ऋतमपिंहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्॥१॥

पदपाठ - ऋतेनं। ऋतम्। अपिऽहितम्। ध्रुवम्। वाम्। सूर्यस्य। यत्र। विऽमुचन्ति। अश्वान्॥ दश। शता। सह। तस्थुः। तत्। एकम्। देवानाम्। श्रेष्ठम्। वपुषाम्। अपश्यम्॥१॥

टिप्पणियाँ

अन्वय – ऋतेन अपिहितम् ऋतं ध्रुवं वा सूर्यस्य यत्र वाम् अश्वान् विमुचन्ति। दश शता सह तस्थुः तत् एकं देवानां वपुषां श्रेष्ठम् अपश्यम्।

व्याख्या – ऋत से षष्ठ सूक्त को आत्रेयश्रुतविद आर्ष त्रैष्टुभ मैत्रावरुण है। और जैसा कहा गया है – 'ऋतेन नव श्रुतविन्मैत्रावरुणं वै तत्' इति। वै–तत इन दोनों के प्रयोग होने से तुह्यादिपरिभाषा के द्वारा ग्यारह सूक्तो में मित्रावरुणदेव की स्तुति की गई है। विनियोग लैङ्गिक है।

सूर्य का ऋत सत्यभूत मण्डल को ऋतजल से निश्चित रूप से ढके हुए अटल स्थिर शाश्वत को देखा। जहाँ पर तुम दोनों निवास करते हो यह अर्थ है। सूर्यमण्डल में मित्रावरुण की स्थिति 'चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः', 'उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोः', 'चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य' इत्यादियों में प्रसिद्ध है। जहाँ जिस मण्डल में स्थितघोड़ो को स्तोता मुक्त करता है। मन शरीर आदि द्वारा निरुद्ध किया यह अर्थ है। अथवा शीघ्र दौड़ने के लिये प्रेरित करते है। जिस मण्डल में दश, सौ, और हजार किरने रहती है, उस प्रकार के दिव्य लोक में देवो का निवास स्थान है, तेज अग्नि आदि के समान श्रेष्ठ कर्म करते है। मत्वर्थलक्षणा है। अथवा व्यधिकरणषष्ठी है। देवो का स्थान और शरीर श्रेष्ठ है। मण्डल को ही सूर्य का निवास स्थान कहते है। उस मण्डल को देखा। अथवा हम तुम दोनों के मध्य में सूर्य के मण्डल को देखते है ऐसी व्याख्या की 'मैत्रं वा अहः' इस श्रुत्ति से मित्र ही सूर्य आदित्य है ऐसा आशय है।

सरलार्थ – जल से ढका हुआ शाश्वत सूर्य के मण्डल को मै देखता हूँ। जहाँ तुम दोनों की स्थिति है वहां के घोड़ो को स्तोता मुक्त करता है। और वहा एक हजार किरने रहती है। और तेजस्वी देवो में से एकदेव की श्रेष्ठमूर्ति को मै देखता हूँ।

व्याकरण

- **ऋतेन** – ऋतशब्द का तृतीया एकवचन में ऋतेन यह रूप है।
- **अपिहितम्** – अपिपूर्वकधा–धातु से क्तप्रत्यय करने पर विकल्प से पिहितम् यह रूप बनता है। 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इस न्याय से अपीति उपसर्ग के अकार का लोप विकल्प से होता है। उससे पिहितम् और अपिहितं ये दो रूप बनते है।
- **विमुचन्ति** – विपूर्वकमुच्–धातु से लट्–लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में विमुचन्ति यह रूप है।
- **तस्थुः** – स्था–धातु से लिट्–लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में तस्थुः यह रूप है।
- **वपुषाम्** – वपुष्–शब्द का षष्ठीबहुवचन में वपुषाम् यह रूप है।
- **अपश्यम्** – दृश्–धातु से लङ्–लकार उत्तमपुरुष एकवचन में अपश्यम् यह रूप बनता है।

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे।
विश्वा पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त॥२॥

पदपाठ – तत्। सु। वाम्। मित्रावरुणा। महित्वम्। ईर्मा। तस्थुषीः। अहऽभिः। दुदुह्रे॥ विश्वाः। पिन्वथः। स्वसरस्य। धेनाः। अनु। वाम्।एकः। पविः। आ। ववर्त॥२॥

अन्वय – मित्रावरुणा वां तत् महित्वं सु ईर्मा अहोऽभिः तस्थुषीः दुदुह्रे स्वसरस्य विश्वाः धेनाः पिन्वथः अनु वाम् एकः पविः आववर्त।

व्याख्या – हे मित्रावरुणहम तुम्हारे उस महिमा को या उस महत्व को अच्छी प्रकार से कहते है। और क्या कहते हो। इस सम्पूर्ण चर अचर जगत का प्रेरक सूर्य दिन बर्षा ऋतू के स्थावर जलो का दोहन करता है। और तुम गतिशील सूर्य की सभी किरणों को चमकीला बनाते हो। अथवा तुम दोनों एकसंसार का आधार हो। पवि रथ की नेमि को कहते है श्पवी रथनेमिर्भवतिश ऐसा यास्क का वचन, यहाँ पर लक्षितलक्षणणा के द्वारा रथ में हो, केवलचक्र के घुमने के योग से। तुम्हारा अकेला रथ धीरे धीरे चले।

सरलार्थ – हे मित्रावरुणतुम्हारा महत्व इसलिये प्रसिद्ध है कि उसके द्वारा सदा घुमने वाले सूर्य ने वर्षा ऋतु को स्थावर जलो को दुहा है। तुम सूर्य की सभी किरणों को चमकीला बनाते हो। तुम्हारा अकेला रथक्रम पूर्वक धीरे धीरे चले।

व्याकरण

- **मित्रावरुणा** – मित्रश्च वरुणश्चेति मित्रावरुणौ इति द्वन्द्वसमास।
- **तस्थुषीः** – स्था-धातु क्वसुन्प्रत्यय करने पर स्त्रियाम् ङीप्प्रत्यय करने पर द्वितीयाबहुवचन में तस्थुषीः यह रूप है।
- **अहभिः** – अहन्-शब्द का तृतीयाबहुवचन में अहभिः रूप है।
- **दुदुह्रे** – दुह्-धातु से लिट्-लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुषबहुवचन में दुदुह्रे यह रूप है।
- **धेनाः** – धे-धातु से शब्द से इसकी उत्पति हुई। धेनाशब्द का द्वितीयाबहुवचन में धेनाः यह रूप है।
- **पविः** – पू-धातु से 'अच इः' इस औणादिकसूत्र से इप्रत्यय करने पर पविः यह रूप बना।
- **आववर्त** – आपूर्वकवृत्-धातु से लिट्-लकार प्रथमाबहुवचन में आववर्त यह रूप बना।

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू॥३॥

पदपाठ – अधारयतम्। पृथिवीम्। उत। द्याम्। मित्रऽराजाना। वरुणा। महःऽभिः॥ वर्धयतम्। ओषधीः। पिन्वतम्। गाः। अव। वृष्टिम्। सृजतम्। जीरदानू इति जीरदानू॥३॥

अन्वय – मित्रराजाना वरुणा महोभिः पृथिवीम् उत द्याम् अधारयतम्। ओषधीः वर्धयतं, गाः पिन्वतं जीरदानू वृष्टिम् अवसृजतम्।

व्याख्या – हे मित्रराजन स्तोताओं को राजा स्वामी बनाने वाले मित्रवरुण आप ही है जिनकी उपासना करते है वे आप मित्रराजन। हे वरुण। प्रतियोगी की अपेक्षा से द्विवचन है। यहाँ पाद आदि के होने

टिप्पणियाँ

से पद का हनन नही किया गया। हे देव, तुम अपने तेजअपने सामर्थ्य के द्वारा पृथिवी और द्यौ को धारण किया हुआ है। हे देवो, तुम ओषधियों का विस्तार करो। गायों की संख्या बढाओ। उसके लिए वर्षा की रचना करके शीघ्र जीवन प्रदान करो।

सरलार्थ – हे दोनों स्वामी, मित्र और वरुण तुम दोनों तेज से पृथिवी और द्युलोक को धारण किये हुए हो। तुम औषधी समूह को बढाओ, गाय आदि पशुओ को बढाओ। और शीघ्र जीवन प्रदान करने वाले तुम वर्षा करो।

व्याकरण

- **अधारयतम्** – धृ–धातु से णिच लङ्–लकार में मध्यमपुरुषद्विवचन में अधारयतम् यह रूप है।
- **महोभिः** – महस्–शब्द का तृतीयाबहुवचन में महोभिः रूप है।
- **वर्धयतम्** – वृध्–धातु से णिच लोट्–लकार मध्यमपुरुष द्विवचन में वर्धयतम् रूप है।
- **पिन्वतम्** – पिव्–धातु से लोट्–लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में पिन्वतम् रूप है।
- **जीरदानू** – जीरं दानू ययोस्तौ इति बहुव्रीहिसमास में जीरदानू रूप बना।

आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक्।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति॥४॥

पदपाठ – आ। वाम्। अश्वासः। सुऽयुजः। वहन्तु। यतऽरश्मयः। उप। यन्तु। अर्वाक्॥ घृतस्य। निःऽनिक्। अनु। वर्तते। वाम्।उप। सिन्धवः। प्रऽदिवि।क्षरन्ति॥४॥

अन्वय – सुयुजः अश्वासः वाम् आवहन्तु यतरश्मयः अर्वाक् उपयन्तु घृतस्य निर्णिक वाम् अनुवर्तते। प्रदिवि सिन्धवः उपक्षरन्ति।

व्याख्या – हे मित्र और वरुण रथ में ठीक प्रकार से जुड़े हुए तुम्हारे घोड़े तुम दोनों को ढोवे। और सारथि द्वारा लगाम खीचने पर शीघ्र रुके। घी और जल तुम दोनों का अनुसरण करते है। और बहते है। यह प्राचीन नदिया। प्राचीन सिन्धू आदि आप की कृपा से ही प्रवाहित होती है।

सरलार्थ – सज्जित घोड़े आप को लेकर चलते है। वे संयम किरने यहाँ रुके। जल की धारा के समान वे तुम्हारा अनुसरण करती है। प्राचीनकाल से ही नदिया बहती है।

व्याकरण

- **वहन्तु** – वह–धातु से लोट्–लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में वहन्तु रूप है।
- **यतरश्मयः** – यताः रश्मयः येषां ते यतरश्मयः यहाँ बहुव्रीहिसमास है।

- **निर्णिक्** – निर् पूर्वकनिज्-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर निर्णिज्-शब्दनिष्पन्न हुआ। उसका प्रथमा एकवचन में निर्णिक् रूप बना।
- **प्रदिवि** – प्रपूर्वकदिव्-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर प्रदिव्-शब्द निष्पन्न हुआ। उसका सप्तमी एकवचन में प्रदिवि रूप बना।
- **क्षरन्ति** – क्षर्-धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में क्षरन्ति रूप है।

पाठगत प्रश्न 20.2

1. मित्रावरुणसूक्त के ऋषि कौन, देवता कौन, छन्द क्या है?
2. ऋतम् इसका क्या अर्थ है?
3. अपिहितम् इसका क्या अर्थ है?
4. ऋतेन यहाँ पर ऋत् शब्द का क्या अर्थ है?
5. तस्थुः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
6. ईर्मा इसका क्या अर्थ है?
7. तस्थुषीः यहाँ पर प्रत्यय क्या है?
8. पविः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
9. धेनाः यह शब्द किस धातु से निष्पन्न हुआ?
10. जीरदानू इसका विग्रह और समास लिखो।
11. जीरदानू इस शब्द का क्या अर्थ है?
12. पिन्वतम् यह किस धातु से निष्पन्न हुआ?
13. अश्वासः इसका लौकिक रूप क्या है?
14. अधारयतम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः॥५॥

पदपाठ – **अनु। श्रुताम्। अमतिम्। वर्धत्। उर्वीम्। बर्हिःऽइव। यजुषा। रक्षमाणा॥ नमस्वन्ता। धृतऽदक्षा। अधि। गर्ते। मित्र। आसाथे इति। वरुण। इळासु। अन्तरिति॥५॥**

अन्वय – श्रुताम् अमतिम् अनुवर्धत्। बर्हिः यजुषा उर्वी रक्षमाणा नमस्वन्ता धृतदक्षा मित्र वरुण इळासु अन्तः गर्ते अधि आसाथे।

टिप्पणियाँ

व्याख्या – हे शरीर के तेज को बढाने वाले। रूप को बढाने वाले। शरीर को सुंदर बनाने वाले यह अर्थ है। उनको अन्नादि के द्वारा बढाने वाले। बर्हि यज्ञ को कहते है। वह जैसे ऋत्विग मंत्रों के द्वारा यज्ञ की रक्षा करते है उसी प्रकार तुम यज्ञ के द्वारा धरती की रक्षा करो, हे पालक, हे प्रकाशमान, हे अन्न के धाता अत्यधिक बलशाली हे मित्र हे वरुण हे मित्रावरुणौ तुम ऊपर कहे लक्षण वाले होने से पूजा में यागभूमि पर अन्त मध्य में रथ पर बैठते हो। ''रथोऽपि गर्त उच्यते'' (नि० ३।५) इति यास्क ने कहा। ''आ रोहथो वरुण मित्र गर्तम्'' (ऋ० सं० ५।६२।८) इति।

सरलार्थ – हे मित्रवरुणतुम विशेषशरीर के दीप्ति को बढाने वाले हो। जैसे यज्ञीयकुशापर बैठा यज्ञ में यजु मन्त्र के द्वारा रक्षित होते है, वैसे ही पृथिवी के रक्षकतुम अन्न से बलबान होकर के यज्ञभूमि पर मध्यस्थल में स्थित रथ पर बैठते है।

व्याकरण

- **वर्धत्** – वृध्-धातु से शतृप्रत्यय करने पर नपुंसकलिङ्गप्रथमा एकवचन में वर्धत् रूप बना।
- **उर्वीम्** – उरुशब्द से स्त्रीप्रत्यय करने पर उर्वीशब्द निष्पन्न हुआ। उसका द्वितीया एकवचन में उर्वीम् रूप बना।
- **यजुषा** – यजुष्-शब्द का तृतीया एकवचन में यजुषा रूप बना।
- **धृतदक्षा** – धृतः दक्षः ययोस्तौ धृतदक्षौ इति बहुव्रीहिसमास। सम्बुद्धि प्रथमा के द्विवचनका आकार है।
- **आसाथे** – आस्-धातु से आत्मनेपद में लट्-लकार में मध्यमपुरुषद्विवचन में आसाथे रूप बना।

अक्रंविहस्ता सुकृतें परस्पा यं त्रासांथे वरुणेळांस्वन्तः।
राजांना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रंस्थूणं बिभृथः सह द्वौ॥६॥

पदपाठ – अक्रंविऽहस्ता। सुऽकृतें। परःऽपा। यम्। त्रासांथे इति। वरुणा। इळांसु। अन्तरिति॥ राजांना। क्षत्रम्। अहृणीयमाना। सहस्रंऽस्थूणम्। बिभृथः। सह द्वौ॥६॥

अन्वय – वरुणा! युवां यम् इळासु अन्तः त्रासाथे सुकृते अक्रविहस्ता परस्पा। राजाना अहृणीयमाना द्वौ सह क्षत्रम् सहस्रस्थूणं विभृथः।

व्याख्या – हे उदार हाथो वाले दानशूर वीर यह अर्थ है। किसके लिये। सुंदर स्तुति करने वाले के लिए। पाप से रक्षा करने वाले हे वरुण मित्रावरुणतुम उस यजमान की यज्ञभूमि में याग के मध्य और अन्तमें रक्षा करते हुए उसके लिए दानवीर बनकर उसकी पाप से रक्षा करो। और तुम दोनों राजा के समान बुलाने पर क्रोध रहित होकर सम्पत्ति एवं हजार खम्भों वाले भवन को धारण करते हो। यजमान की रक्षा के लिए। अथवा क्षत्र बल को अपरिमित खम्भे वाले यज्ञ भवन को और जाने के लिए रथ को साथ में धारण करते है।

सरलार्थ – हे मित्रावरुण यज्ञभूमि में उस यजमान की मध्यभाग में रक्षा करते हो, उस स्तुति करने वाले यजमान के प्रति उदार हाथ से उसके पालनकारी हो। हे दोनों राजन, तुम क्रोध से रहित होकर के एक हजार खम्भे वाले यज्ञशाला को धारण करते हो।

व्याकरण

- **अक्रविहस्ता** – न क्रविः अक्रविः, अक्रवी हस्तौ ययोस्तौ अक्रविहस्तौ इति बहुव्रीहि, सुप डा आदेश।
- **सुकृते** – शोभनं करोति इस विग्रह में सुपूर्वककृ-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर सुकृत् यह शब्द निष्पन्न हुआ। उसका चतुर्थी एकवचन में सुकृते रूप बना।
- **अहृणीयमाना** – हृणीङ्-धातु से शानच्प्रत्यय करने पर हृणीयमाना रूप बना। न हृणीयमाना अहृणीयमाना इति नञ्समास।
- **सहस्रस्थूणम्** – सहस्रं स्थूणाः यस्य तं सहस्रस्थूणम् इति बहुव्रीहिसमास।
- **विभृथः** – भृ-धातु से परस्मैपद लट्-लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में विभृथः रूप बनता है।

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१ श्वाजनीव।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य॥७॥

पदपाठ – हिरण्यनिर्णिक्। अयः। अस्य। स्थूणा। वि। भ्राजते। दिवि। अश्वाजनीऽइव॥ भद्रे। क्षेत्रे। निऽमिता। तिल्विले। वा। सनेम। मध्वः। अधिऽगर्त्यस्य॥७॥

अन्वय – हिरण्यनिर्णिक् अस्य स्थूणाः अयः, दिवि अश्वाजनीव विभ्राजते। भद्रे क्षेत्रे तिल्विले वा निमिता, मध्वः गर्तस्य अधि सनेम।

व्याख्या – इन दोनों का रथ सोने का बना हुआ है। वह बिजली के समान चमकता है। इस रथ के खम्भे किल आदि भी सोने के ही निर्मित है। ये सभी सोने के बने हुए है। यह उसके विकार है। उस प्रकार का रथ दिन में अन्तरिक्ष में घुमता है। यह क्या है। घोड़े के समान है। घोड़े व्यापकशील मेघ को कहते है। उनके द्वारा उत्पन्न की गई विद्युत्। और भद्र कल्याण स्तुत्ति में अथवा क्षेत्र में देवयजन में अथवा प्रसन्नता में। वा शब्द और अर्थ में, तिल स्नेहने (धा० ६।७६, १०।७३)। तिलु स्निग्धा भूमि है जिसकी वह क्षेत्र तिल्विल देवयजन का कहलाता है। घी सोम आदि के द्वारा स्निग्ध और कल्याणकारी क्षेत्र में निर्मित लकड़ी के खम्भे स्थित है। मधुर पूर्णगति से रथ अपने नेमी सहित घुमे। कर्म में षष्ठी। अधीपूरण को कहते है। अथवा रथ के ऊपर मधु सोमरस को स्थापित कर दो।

सरलार्थ – सोने से निर्मित इनके रथ की थुन लौह निर्मित है। वह रथ विद्युत् के समान अन्तरिक्षलोक में शोभित होता है। कल्याणकारी स्थान में अथवा देवपूजित स्थान में निश्चल स्तम्भ के समान मधुमय रथ के ऊपर सोम रस को स्थापित करते है।

टिप्पणियाँ

व्याकरण

- **हिरण्यनिर्णिक्** – हिरण्यस्य निर्णिक् इव निर्णिक् यस्य तत् हिरण्यनिर्णिक् इति बहुव्रीहिसमास।
- **भ्राजते** – भ्राज्–धातु से लट्–लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुष एकवचन में भ्राजते रूप है।
- **निमिता** – निपूर्वकमि–धातु से क्तप्रत्यय करने पर सुप और डा आदेश होने पर निमिता रूप बना।
- **अधिगर्त्यस्य** – गर्ते इति अधिगर्तम् इति अव्ययीभावसमास, अधिगर्ते भवः इति अधिगर्त्यः, उस अधिगर्त का।

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च॥८॥

पदपाठ – हिरण्यऽरूपम्। उषसः। विऽउष्टौ। अयःऽस्थूणम्। उत्ऽइता। सूर्यस्य॥ आ। रोहथः। वरुण। मित्र। गर्तम्। अतः। चक्षाथे इति। अदितिम्। दितिम्। च॥८॥

अन्वय – वरुण मित्र उषसः व्युष्टौ सूर्यस्य उदिता हिरण्यरूपम् अयःस्थूणं गर्तम् आरोहथः। अतः अदितिं दितिं च चक्षाथे।

व्याख्या – उषस और व्युष्टौ का प्रातःकाल में यह अर्थ है। सूर्य के उदय होने के काल को कहते है। वह ही काल प्रकारान्तर से कहते है। उस काल में हिरण्यरूप वाले रथ में बैठकर के हे वरुण हे मित्र तुम दोनों यज्ञ स्थल को प्राप्त होते हो। इसलिये अदिति अखण्डनीय भूमि को और दिति खण्डित प्रजादि को देखो।

सरलार्थः – हे मित्रवरुण तुम उषा के प्रारम्भ में सूर्य के उदय होने पर सोने से निर्मित लौहदण्डयुक्त रथ में बैठते हो। और अदितिऔर दिति को देखते हो।

व्याकरण

- **व्युष्टौ** – विपूर्वकोच्छ–धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर व्युष्टि रूप हुआ। उसका सप्तमी एकवचन में व्युष्टौ रूप बना।
- **आरोहथः** – आङ्पूर्वकरुह–धातु से लट्–लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में आरोहथः रूप बना।
- **चक्षाथे** – चक्ष्–धातु से लट्–लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में चक्षाथे रूप बना।

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम॥९॥

पदपाठ – यत्। बंहिष्ठम्। न। अतिऽविधे। सुदानू इति सुऽदानू। अच्छिद्रम्। शर्म। भुवनस्य। गोपा॥ तेन। नः। मित्रावरुणौ। अविष्टम्। सिषासन्तः। जिगीवांसः। स्याम॥९॥

अन्वयः – मित्रावरुणौ! सुदानू भुवनस्य गोपा वंहिष्ठं यत् अच्छिद्रं न अतिविधे शर्म नः अविष्टं सिषासन्तः जिगीवांसः स्याम।

व्याख्या – दाक्षायणयज्ञ में 'यद् बंहिष्ठम्' इति नवमी द्विताया अमावस्या में मैत्रावरुण की हवि के द्वारा अर्चना की जाती है। और सूत्र में कहा 'आ नो मित्रावरुणा यद्' बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू (आ० श्रौ० २।१४।११) इति। मैत्रावरुण में पशु हवि के द्वारा इनकी ही पूजा की जाती है। और सूत्र में कहा गया है 'यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' (आ० श्रौ० ३।८।१) इति।

हे शोभन दानियों, हे भुवन के रक्षक, तुम दोनों अतिशय महाँन बलशाली युक्त बाधा रहित और निर्दोष सुख को धारण करते हो। उस प्रकार के सुख को धारण करते हो, उसी प्रकार का सुख हमको विशेष रूप से प्रदान करो। हे मित्रावरुणहम इच्छित धन को पाने वाले और शत्रुओ को जितने वाले बने।

सरलार्थ – हे दानशील विश्व के रक्षक मित्रवरुणतुम दोनों अतिशय महान, बाधा रहित तथा विनाश हीन सुख के द्वारा हमारी रक्षा करो। इस प्रकार इच्छित धन को प्राप्त करके हम शत्रु को जितने वाले बने।

व्याकरण

- **बंहिष्ठम्** – बहुलशब्द से इष्ठन्प्रत्यय करने पर बहुलस्थान में बंहादेशे द्वितीया एकवचन में बंहिष्ठम् रूप बना।
- **सुदानू** – सु(शोभनम्) दानु ययोस्तौ सुदानू इति बहुव्रीहिसमासः।
- **अच्छिद्रम्** – अविद्यमानं छिद्रं यस्मिन् तत् अच्छिद्रम् इति बहुव्रीहिसमासः।
- **शर्म** – शृणाति हिनस्ति दुःखमिति शर्म।
- **सिषासन्तः** – सन्-धातु से सन्-प्रत्यय शतृप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में सिषासन्तः रूप बना।
- **जिगीवांसः** – जि-धातु से क्वसुन्प्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में जिगीवांसः रूप बना।
- **स्याम** – अस्-धातु से विधिलिङ उत्तमपुरुषबहुवचन में स्याम रूप बना।

पाठगत प्रश्न 20.3

1. बर्हिः इस शब्द का क्या अर्थ है?
2. उर्वी शब्द का क्या अर्थ है?

3. इळासु इसका क्या अर्थ है?
4. धृतदक्षा इसका विग्रह क्या है और समास क्या है?
5. आसाथे ये रूप कैसे सिद्ध हुआ?
6. अक्रविहस्ता इसका क्या अर्थ है?
7. अक्रविहस्ता इसका विग्रह और समास क्या है?
8. सहस्रस्थूणम् इसका विग्रहऔर समास क्या है?
9. निर्णिगिति क्या है?
10. तिल्विलम् क्या है?
11. तिल्विलम् इसका विग्रह क्या है?
12. अधिगर्त्यः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
13. सुदानू इसका क्या अर्थ है?
14. बंहिष्ठम् इसका क्या अर्थ है?
15. शर्म इसका क्या अर्थ है?

20.5 मित्रावरुण का स्वरूप

वैदिकयुग में प्रसिद्ध देवताओ में अन्यतमही वरुणदेवता है। वैदिकदेवता मण्डल में विशिष्ट स्थान में एक को यह वरुण सुशोभित करते है। फिर भी वरुणदेव को उद्दिश्य करके केवल बारह सूक्त ही सम्पूर्ण ऋग्वेद में वर्णन किया गया है। आच्छादन अर्थक वृधातु से वरुण शब्द निष्पन्न होता है। इसलिये भगवान् यास्क ने कहा – वरुणो वृणोतीति सतः। अर्थात् मेघ द्वारा यह देवता आकाश को ढकता है, उससे इसका नाम वरुण है। अथर्ववेद के भाष्य में सायणाचार्य ने कहा है – वरुण को रात्री के देवता के रूप में उनका वर्णन किया। मित्रशब्द की व्युत्पत्ति दिखाने के लिए भगवान यास्क ने कहा – मित्रः प्रमीतेस्त्रायते इति। अर्थात् मित्ररक्षा करते है मृत्यु से वर्षा के द्वारा सम्पूर्ण मनुष्यों की रक्षा करते है। अन्यत्र पुन उसी के द्वारा कहा गया है – मित्र जल को फैक करके अन्तरिक्षलोक को जाता है। मित्र ही जल वर्षा कारी देवता ऐसा यास्क व्याख्या से जाना जाता है। मित्र और वरुण यथाक्रम दिन और रात्रि के मान्य देवता है ऐसा आचार्य सायण ने कहा। उनकी उक्ति है –'मित्रः अहरभिमानिनी देवता वरुणः रात्र्यभिमानिनी। मैत्रं वा अहः वारुणी रात्रिः' ऐसी श्रुति है। ऋग्वेद में मित्र और वरुण का सम्मिलित रूप से अनेक स्तुति करते है। ये दोनों युग्म रूप से मित्रावरुण कहलाता है। मित्र और वरुण दोनों सूर्यरूप से ही ग्रहण किया है क्योंकि सूर्य ही दिन रात्री का स्रष्टा है। सूर्य की किरणें मेघ की रचना करती है और आकाश को मेघ आच्छादित करता है। यह मेघ अथवा अन्धकार ही वरुण का पाश के समान है। जिस सूर्यमण्डल में मित्रवरुण स्थित है, वह मण्डल हमेशा सत्यावृत होती है। उस स्थान से ही ऋत्विग अश्वगणों को अर्थात् सूर्य रश्मि को छोड़ता है।

मित्रवरुण जहाँ रहते है, उस स्थान में प्राय दस हजार किरणें एक साथ स्थित होकर के रहती हैं। मित्रवरुण की महानता से ही निरन्तर भ्रमणरत सूर्य दैनिक गति के द्वारा बन्ध जलराशि को छुडाने में समर्थ होती है। ये दोनों स्वय भ्रमण करने वाले सूर्य के प्रीतिदायक प्रकाश समूह को बढाता है। ये दोनों एक ही रथ और बे दोनों निरन्तर भ्रमण करते है। मित्रवरुण अपने सामर्थ्यवश से इस पृथिवी और स्वर्ग को धारण किया हुआ है। जलसमूह विग्रह को धारण करके इनका अनुसरण करते है, और प्राचीन नदियां इनके अनुग्रह से ही पुन प्रवाहित होती है। मित्रवरुण के रथ सोने से निर्मित है। यह रथ अन्तरिक्ष में विद्युत के समान शोभामान है। प्रत्येक ऊषा में मित्रवरुण सूर्य उदय से पूर्व लोहकील के साथ जुडा हुआ सुवर्ण रथ में आरूढ़ होकर के अदिति और दिति का अवलोकन करते है। दानशील विश्वरक्षक ये मित्रवरुण सुख को प्रदान करने में समर्थ हुए।

20.6 मित्रावरुणसूक्त का सार

मित्र और वरुण यथाक्रम दिन के रात्री के मान्य देवता है ऐसा आचार्य सायण ने कहा। उसको कहा गया है की – 'मित्र: अहरभिमानिनी देवता वरुण: रात्र्यभिमानिनी। मैत्रं वा अह: वारुणी रात्रि:' इति। ऋग्वेद में मित्र का और वरुण का सम्मिलित रूप से अनेक स्तुति की गई है। ये दोनों युग्मरूप से मित्रवरुण कहलाते है। मित्र और वरुण दोनों सूर्यरूप से ही ग्रहण किया जाता है, क्योंकि सूर्य ही दिन और रात्री के स्रष्टा है। आत्रेय-ऋषिदृष्टा मित्रावरुणसूक्त में उन दोनों वर्णन किया गया है। ऋत से ढके हुए मित्रवरुण का निवासस्थानभूत सूर्यमण्डल को मै देखता हूँ। वहा स्थित घोड़े के समूह के उपासक के स्तोता के रूप से वर्णन किया गया है। प्राय दश हजार सूर्य की किरने इकट्ठे रूप से उस स्थान में रहते है। देवो के रूपसमूह में श्रेष्ठ रूप को मै देखता था –इस प्रकार यजमानस्तुति करते है। मित्रवरुण की महानता से महानता अत्यन्त प्रशसा से, जो वश से ही निरन्तरभ्रमणरत सूर्य दैनिक गति से बन्ध जलराशी को आकर्षण करने में समर्थ होते है। ये दोनों देव स्वय भ्रमण करने के लिये सूर्य की प्रीतिदायक दीप्तिसमूह को बढाते है। ये दोनों ही समान ही रथ निरन्तर भ्रमण करते है। जो मित्रवरुण की स्तुति करते है, वे स्तोता इनके अनुग्रह से राजपद को प्राप्त करते है। अपने सामर्थ्यवश से ये पृथिवी और स्वर्ग को धारण इन दोनों ने किया है। यजमान प्रार्थना करते है की – हे जल प्रदाता देवो ! आप ओषधियों को सूर्य किरणों से और बढाओ, और वर्षा को करो। निपुणता से रथ में जोड़े गये आप अश्वगण को ले जाते है। जलसमूह विग्रह को धारण करके मित्रवरुण का अनुसरण करते है, और प्राचीन नदियों को इन दोनों के अनुग्रह से पुन प्रवाहित होते है।

यजमान प्रार्थना करता है की – हे अन्नसम्पन्न बलशाली मित्रवरुण! आप बहुत ही प्रसिद्धअपने शरीर के प्रकाश को बढाकर के,मन्त्ररक्षितयज्ञ के समान सम्पूर्ण पृथिवी को इनके संरक्षण में करके यज्ञभूमि पर मध्यस्थ में रथ पर आरोहण करो। यज्ञभूमि पर आप के जो यजमान है, उनकी रक्षा करो, सुन्दर स्तुति करने के कारण उनके प्रति आप दानशाली हो। क्योंकि आप दोनों ही क्रोध से रहित होने पर धन को हजार स्तम्भ के समान धारण करो।। मित्रवरुण के रथसोने से निर्मितहै। यह रथ अन्तरिक्ष में विद्युत के समान शोभामान है। हम यजमान जैसे उपयुक्तस्थान पर दलिया और लकड़ी सहित यज्ञभूमि पर रथ के ऊपर सोमरस को स्थापित करने में समर्थ हो उस प्रकार

का अनुग्रह आप करो यह प्रार्थना की गई। दानशील विश्वरक्षक ये मित्रवरुणबिना किसी बाधा के सुख को प्रदान करने में समर्थ हो। प्रत्येक ऊषा पर मित्रवरुणसूर्योदय से परे लोहकील लगी हुई सुवर्णरथ पर आरूढ़ होकर के अदिति और दिति लोक का अवलोकन करते है। मित्रवरुणबिना किसी संकट के सुखप्रदान करने में समर्थ है। इसलिये यजमान प्रार्थना करते है की –आप हमारे लिये उस प्रकार का सुख दीजिये।

मित्रावरुणसूक्त का अंश में पाठसार

इस पाठ में दो सूक्तो की आलोचना करते है। उनमें विष्णुसूक्त का सार आदिपूर्वार्ध में कह दिया है। उत्तरार्थ में तो मित्रावरुणसूक्त की आलोचना की। इसलिए उसका संक्षेप से सार यहाँ प्रदान रूप से दिया गया है।

आदिसूक्त मित्रावरुणसूक्त। विश्व में भाई किस प्रकार का होना चाहिए उसको बताने के लिये इस सूक्त को लिखा गया है। यहाँ मित्र प्रानो की रक्षा करता है और वरुणजल को धारण करते है। और वरुणजलधारकरूप से अथवा वर्षा कर्ता रूप से प्रतिपादित किया है। ऋग्वेद के ऐतरेयब्राह्मणग्रन्थ के अनुसार से मित्र रात्रिरूप से और वरुण दिनरूप से प्रतिपादित किया। इस मित्रावरुणसूक्त के आत्रेय श्रुतिविद् ऋषि, मित्रावरुण देव, त्रिष्टुप् छन्द है।

पाठांत प्रश्न

विष्णुसूक्त

1. विष्णुसूक्त का सार लिखो।
2. विष्णोर्नु कं वीर्याणि ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
3. प्र तद्विष्णुः ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
4. प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
5. यस्य त्री पूर्णा ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
6. तदस्य प्रयमभि पाथो अश्याम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
7. ता वां वास्तून्युश्मसि ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

मित्रावरुणसूक्त

8. मित्रावरुणसूक्त का सार लिखो।
9. ऋतेन ऋतमपिहितम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
10. अक्रविहस्ता सुकृते ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
11. आ वामश्वास: ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
12. यद्बंहिष्ठं नातिविध`... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

20.1

1. ऋषिदीर्घतमा औचथ्य, छन्द विराट् त्रिस्टुप्, देवता विष्णु।
2. नु, कम्।
3. व्यापकशील।
4. पराक्रम कार्यो को।
5. अनेक रूप में निर्मित किया।
6. लोकवाची है।
7. तीन प्रकार से।
8. कुत्सितहिंसादि का कर्ता अथवा दुर्गमप्रदेश में रहने वाला।
9. हमारे द्वारा उत्पन्न किये गये बल महत्त्व को।
10. नीचे के अतलवितल आदि सात भुवन की उत्पत्ति।
11. धारण किया।
12. त्रयाणां धातूनां समाहार।
13. अन्तरिक्ष को।
14. सभी श्रुतिस्मृतिपुराण आदि में प्रसिद्धद्योतन अर्थ है।
15. कामना करता हूँ।

टिप्पणियाँ

20.2

1. आत्रेय श्रुतविद् ऋषि, मित्रावरुण देवता, त्रिष्टुप् छन्द।
2. ध्रुव स्थिर।
3. ढका हुआ।
4. जल को।
5. स्था-धातु से लिट्-लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में।
6. निरन्तर गमन करना।
7. ङीप् प्रत्यय है।
8. पू-धातु से 'अच इः' इस औणादिकसूत्र से इप्रत्यय करने पर।
9. धे-धातु से।
10. जीरं दानू ययोस्तौ इति बहुव्रीहिसमास।
11. शीघ्र प्रदान करना।
12. पिव-धातु से।
13. अश्वाः लौकिक रूप है।
14. धृ-धातु से णिच लङ्-लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में।
15. निर् पूर्वकनिज्-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में।

20.3

1. यज्ञ।
2. पृथिवी।
3. यागभूमि में।
4. धृतः दक्षः ययोस्तौ धृतदक्षौ इति बहुव्रीहिसमासः।
5. आस्-धातु से आत्मनेपद लट्-लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में।
6. उदार हाथो से।
7. न क्रविः अक्रविः, अक्रवी हस्तौ ययोस्तौ अक्रविहस्तौ इति बहुव्रीहिः।

8. सहस्रं स्थूणाः यस्य तं सहस्रस्थूणम् इति बहुव्रीहिसमासः।

9. रूपनाम।

10. देवयजनस्थान को।

11. तिलुः स्निग्धा इला भूमिर्यस्य तत् क्षेत्रम।

12. गर्ते इति अधिगर्तम् इति अव्ययीभावसमासः, अधिगर्ते भवः इति अधिगर्त्यः।

13. शोभनदान वाले।

14. बहुल रूप से।

15. सुख अथवा घर को।

॥ बीसवाँ पाठ समाप्त ॥

21

अक्षसूक्त

ऋग्वेद में एक प्रसिद्ध देव की स्तुति विधान करने के लिये अभीष्ट सिद्धि के लिये वह देव की प्रार्थना करते है। इसी प्रकार मनुष्यों के सामाजिक दुर्व्यवहार के निराकरण के लिये सूक्तो का सङ्कलन किया गया है। जब समाज में भोगविलास की शक्ति बढ़ जाती है, तब द्युत कार्य भी बढ़ता है। वैदिक काल से ही जुआ खेल बहुत प्रचलित सामाजिक कुत्सित खेल है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में चौतींसवे सूक्त में इस विषय को आधार करके लिखा गया। यह ही अक्षसूक्त इस नाम से विख्यात है। इस सूक्त के ऐलूषकवष ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सातवें मन्त्र का जगती छन्द, और देवता अक्ष ऋषि है। इस सूक्त में मुख्य रूप से कहा गया है कि जुआ खेल कभी नही खेलना चाहिये, उसके स्थान पर कृषि इत्यादि कार्य करना चाहिए। जैसे मन्त्र में ही कहा गया है की – अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व इत्यादि। इस प्रकार से सूक्त की महिमा प्रकट की गई है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढने के बाद आप सक्षम होंगे :

- अक्षसूक्त के संहिता पाठ, पदपाठ का अन्वय और व्याख्या कर पाने में;
- द्युत कार्य के बुरे फल को जान पाने में;
- द्युत कर्म से होने वाले दुष्परिणामों को समझ पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक लौकिक शब्दों के मध्य में भेद को जान पाने में;
- द्युत कर्म के स्थान पर क्या-क्या करना चाहिए, इसे समझ पाने में।

21.1 मूलपाठ

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे ववृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्॥१॥

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतो-रनुव्रतामप जायामरोधम्॥२॥

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्॥३॥

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहु-र्न जानीमो नयता बद्धमेतम्॥४॥

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽवं हीये सखिभ्यः।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रत एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव॥५॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि॥६॥

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणोमध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा॥७॥

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति॥८॥

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताःशीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति॥९॥

जाया तप्यते कितवस्य हीनामाता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो-ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति॥१०॥

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद॥११॥

यो वः सेनानीर्महतो गणस्यराजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मिदशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि॥१२॥

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जायातन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥१३॥

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु॥१४॥

टिप्पणियाँ

21.1.1 मूलपाठ की व्याख्या (श्लोक 1-5)

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे ववृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्॥१॥

पदपाठ - प्रावेपाः। मा। बृहतः। मादयन्ति। प्रवातेऽजाः। इरिणे। ववृतानाः॥ सोमस्यऽइव। मौजऽवतस्य। भक्षः। विऽभीदकः। जागृविः। मह्यम्। अच्छान्॥१॥

अन्वय - प्रवातेजाः बृहतः इरिणे वर्वृतानां प्रावेपाः मा मादयन्ति। मौजवतस्य सोमस्य भक्ष इव जागृविः विभीदकः मह्यम् अच्छन्।

व्याख्या - बडे बड़े पासे जिस समय नक्शे (पासा खेलने के स्थान) के ऊपर इधर-उधर चलते है, उस समय उन्हें देखकर मुझे बड़ा आनंद मिलता है। मुजवान पर्वत पर सोम उत्पन्न उत्तम सोमलता का रस पीकर जैसी प्रसन्नता होती है, वैसे ही प्रसन्नता बहेरे वृक्ष के काठ से बने अक्ष मेरे लिए हो जयपराजय आनंद दु:ख को उत्पन्न करने वाले जुआरी मुझे आनंद प्रदान करते है। वहाँ दृष्टान्त है। जैसे सोम के लिए मौजवत पर्वत है। मूजवत पर्वत पर उत्पन्न होने वाली मौजवत कहलाती है। वहाँ पर उसका ही सोम उत्तम माना जाता है। खाने पीने वाले यजमान और देवो को आनन्द प्रदान करती है यह उसका अर्थ है। और यास्क ने कहा - 'प्रवेपिणो मा महतो विभीतकस्य फलानि मादयन्ति। प्रवातेजाः प्रवणेजा इरिणे वर्तमाना इरिणं निर्ऋणमृणातेरपार्ण भवत्यपरता अस्मादोषधय इति वा। सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो मौजवतो मूजवति जातो मूजवान् पर्वतो मुञ्चवान् मुञ्जो विमुच्यत इषीकामिषीकैषतेर्गतिकर्मण इयमपीतरेषीकैतस्मादेव विभीतको बिभेदनाज्जागृवि र्जागरणन्मह्यमवच्छदत्' (निरु० ९.८) इति।

सरलार्थ - प्रवण देश में उत्पन्न बड़े बड़े पासे जुआ खेलने के तख्ते पर इधर-उधर बिखरते हुए मुझे आनन्दित करते है, जीत हार में हर्ष शोक जगाने वाला पासा मुझे उसी प्रकार सुख देता है जिस प्रकार मुंज पर्वत पर उत्पन्न सोमलता का रस पीकर सुख मिलता है।

व्याकरण

- **ववृतानाः** - वृद्-धातु से लङ, उस लङ के लुक होने पर शानच प्रथमाबहुवचन में।
- **मादयन्ति** - मद्-धातु से णिच लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **अच्छन्** - छन्द्-धातु से लुङ प्रथमपुरुष एकवचन में।

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतो-रनुव्रतामप जायामरोधम्॥२॥

पदपाठ - न। मा। मिमेथ। न। जिहीळे। एषा। शिवा। सखिऽभ्यः। उत। मह्यम्। आसीत्॥ अक्षस्य। अहम्। एकऽपरस्य। हेतोः। अनुऽव्रताम्। अप। जायाम्। अरोधम्॥२॥

अन्वय – एषा मा न मिमेथ, न जिहीळे, सखिभ्य उत मह्यम् शिवा आसीत्, अहम् एकपरस्य अक्षस्य हेतोः अनुव्रताम् जायाम् अप अरोधम्।

व्याख्या– मेरी यह रूपवती पत्नी कभी मुझसे उदासीन नही हुई, और न कभी मुझसे लज्जित हुई। वह पत्नी मेरे परिवार की विशेष रूप से सेवा करती थी। और भी वह मेरी भी सेवा करती थी। इस प्रकार की देवी को केवल पास के कारण मैने उस परम अनुरागिणी भार्या को छोड़ दिया।

सरलार्थ – इस मन्त्र में पत्नी न मुझसे कभी अप्रसन्न हुई और न इसने कभी मुझसे लज्जा की, यह मेरे मित्रो और मेरे प्रति सुखकारी थी, इस प्रकार सर्वथा अनुकूल पत्नी को भी मैने एकमात्र पासों के कारण त्याग दिया।

व्याकरण

- ममेथ – मिथ्–धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- जिहीळे – हीड्–धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- अरोधम् – रुध्–धातु से लुङ उत्तमपुरुष एकवचन में (वैदिक)।

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्॥३॥

पदपाठ – द्वेष्टि। श्वश्रूः। अप। जाया। रुणद्धि। न। नाथितः। विन्दते। मर्डितारम् अश्वस्यऽइव। जरतः। वस्न्यस्य। न। अहम्। विन्दामि। कितवस्य। भोगम्॥३॥

अन्वय – श्वश्रूः द्वेष्टि, जाया अप रुणद्धि, नाथितः मर्डितारं न विन्दते। अहं वस्न्यस्य जरतः अश्वस्य इव कितवस्य भोगं न विन्दामि।

व्याख्या – जो जुआरी जुआ खेलते है उसकी सास उसकी निंदा करती है। और उसकी पत्नी उसको त्याग देती है। और जुआरी किसी से कुछ मागता है तो उसे कोई कुछ नही देते है। उसे उसी प्रकार छोड़ दिया जाता है, जैसे वृद्ध घोड़े को कोई नही खरीदते है, ठीक उसी प्रकार उसको भी कोई कुछ नही देते है।

सरलार्थ – सास जुआ खेलने वाले की निन्दा करती है, एवं पत्नी उसे छोड़ देती है, यदि वह धन मागे तो उसे कोई धन नही देता है। जिस प्रकार बूढ़े घोड़े का कुछ भी मूल्य नही लगता उसी प्रकार मुझ जुआरी का कही आदर नही होता है।

व्याकरण

- **द्वेष्टि** – द्विष्–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **रुणद्धि** – रुध्–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **नाथितः** – नाथ–धातु से क्तप्रत्यय करने प्रथमा एकवचन में।

टिप्पणियाँ

- **मर्डितारम्** – मृड्–धातु से तृच्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।
- **विन्दति** – विद्–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में (वैदिक)
- **जरतः** – जृ–धातु सेशतृप्रत्यय करने पर षष्ठी एकवचन में।
- **विन्दामि** – विद्–धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में।

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहु-र्न जानीमो नयता बद्धमेतम्॥४॥

पदपाठ – अन्ये। जायाम्। परि। मृशन्ति। अस्य। यस्य। अगृधत्। वेदने। वाजी। अक्षः॥ पिता। माता। भ्रातरः। एनम्। आहुः। न। जानीमः। नयत। बद्धम्। एतम्॥४॥

अन्वय – यस्य वेदेन अक्षः अगृधत्, अस्य जायाम् अन्ये परिमृशन्ति, पिता माता भ्रातरम् एनम् आहुः न जानीमः बद्धम् एनं नयत।

व्याख्या – पासे का आकर्षण बड़ा कठिन है, यदि किसी का धन के प्रति अक्ष की लोभ दृष्टि हो जाए, तो पास वाले की पत्नी व्यभिचारिणी हो जाती है, उस पर चालक जुआरियो की दृष्टि पड़ी रहती है, अन्ये जुआरी उसके वस्त्रकेश आदि के आकर्षण से उसका स्पर्श करते है। और उसके माता–पिता और सहोदर भाई कहते है की हम इस जुआरी को नही जानते है। इस जुआरी को तुम रस्सी से बाँध करके ले जाओ और तुम्हे जैसा उचित लगे वैसा ही करो।

सरलार्थ – शक्तिशाली पासे जिस जुआरी के धन को लालच की दृष्टि से देखते है, उसकी व्याभिचारिणी पत्नी का दुसरे लोग स्पर्श करते है। जुआरी के माता, पिता एवं भाई कर्ज मागने वालों से कहते है – हम इसे नही जानते हैं, आप इसे बांधकर ले जाओ।

व्याकरण

- **अगृधत्** – गृध्–धातु से लङ प्रथमपुरुष एकवचन में (वैदिक)।
- **मृशन्ति** – मृश्–धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **आहुः** – ब्रू–धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **जानीमः** – ज्ञा–धातु से लट् उत्तमपुरुषबहुवचन में।
- **नयत** – नी–धातु से लोट मध्यमपुरुषबहुवचन में (छान्दसदीर्घ)।
- **वाज्य अक्ष** – वाजी+अक्ष, क्षैप्रसन्धि।

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽवं हीये सखिभ्यः।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रत एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव॥५॥

पदपाठ – यत्। आऽदीध्ये। न। दविषाणि। एभिः। परायत्ऽभ्यः। अवं। हीये। सखिऽभ्यः॥ नऽउप्ताः। च। बभ्रवः। वाचम्। अक्रत। एमि। इत्। एषाम्। निःऽकृतम्। जरिणीऽइव॥५॥

अन्वय – यत् आदीध्ये एभिः न दविषाणि परायद्भ्यः सखिभ्यः अव हीये, बभ्रवः न्युप्ताः वाचम् अक्रमत, एषां निष्कृतं जारिणी इव एमि इत्।

व्याख्या – जिस समय मैं इच्छा करता हूँ की अब मैं इस समय से जुआ नही खेलूँगा उस समय साथी जुआरियो से हट जाता हूँ। अथवा उनके पास नही बैठता हूँ। उनसे द्वेष नही करके उनसे स्वयं ही दूर चला जाता हूँ। मैं इन प्रथम अक्षो को छोड़ता हूँ। किन्तु पीले रंग के पासों को देखकर ठहरा नही जाता है। उस समय सङ्कल्प का परित्याग करके जैसे भ्रष्टा नारी उप पति के पास जाती है वैसे ही मैं भी जुआरियो के घर पर जाता हूँ।

सरलार्थ – जब मैं निश्चय कर लेता हूँ की जुआ नही खेलूंगा, तब मैं आए हुए जुआरी मित्रो का त्याग देता हूँ, किन्तु जब जुआ खेलने के तख्ते पर फेंके हुए पीले रंग के पासों को शब्द करते हुए देखता हूँ, तो मैं उस स्थान की तरफ चला जाता हूँ जैसे व्याभिचारिणी स्त्री संकेत स्थान पर पहुँच जाती है।

व्याकरण

- **आदीध्ये** – आपूर्वक आत्मनेपद धी-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में।
- **दविषाणि** – दिव्-धातु से लेट उत्तमपुरुष एकवचन में।
- **हीये** – हा-धातु से कर्म लट् उत्तमपुरुष एकवचन में।
- **न्युप्ताः** – निपूर्वकात्वप्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।
- **अक्रत** – कृ-धातु से लुङ आत्मनेपदप्रथमपुरुषबहुवचन में (वैदिक)।
- **एमि** – इ-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में।

पाठगत प्रश्न 21.1

1. अक्षसूक्त के ऋषि कौन, छन्द क्या, और देवता कौन है?
2. इरिणे इसका क्या अर्थ है?
3. प्रावेपाः इसका क्या अर्थ है?
4. अच्छन् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
5. जिहीळे यहाँ पर क्या धातु है?
6. मर्डिता इसका क्या अर्थ है?
7. कितव की पत्नी के प्रति अन्यजुआरी क्या करते है?

टिप्पणियाँ

8. न्युप्ताः इसका क्या अर्थ है?

9. आदीध्ये यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

10. वेदने इसका क्या अर्थ है?

21.1.2 मूलपाठो की व्याख्या (श्लोक 6-10)

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वाᳬ शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि॥६॥

पदपाठ - सभाम्। एति। कितवः। पृच्छमानः। जेष्यामि। इति। तन्वा। शूशुजानः॥ अक्षासः। अस्य। वि। तिरन्ति। कामम्। प्रतिऽदीव्ने। दधतः। आ। कृतानि॥६॥

अन्वयः - तन्वा शूशुजानः कितवः जेष्यामि इति पृच्छमानः सभाम् एति, अक्षासः प्रतिदीव्ने कृतानि दधतः अस्य कामं वि तिरन्ति।

व्याख्या - जुआरी अपनी छाती को फुलाकर कूदता हुआ जुए के अड्डे पर आता है और कहता है की कौन यहाँ धनिक उसको मैं जीतूँगा, ऐसा पूछता हुआ उस चोपट में कूद जाता है। वहाँ पर कुछ पासे जुआरी के पक्ष में गिरते है तो उसकी मनोकामना को पूर्ण करते है, और कुछ उसके विपक्ष में गिरते है तो उसके विपक्षी के मनोरथो को पूर्ण करते है इस प्रकार जुआ उन दोनों को लोभ के चक्कर में डाले रखता है।

सरलार्थ - जुआरी शरीर से दीप्त होकर एवं यह कहता हुआ जुआघर में जाता है की कौन धन वाला आया है। मैं उसे जीतूँगा कभी-कभी पासे जुआरी की कामना पूरी करते है और उसके विरोधी जुआरी के अनुकूल कर्म धारण करके उसकी इच्छा पूरी करते हैं।

व्याकरण

- **शूशुजानः** - शुज्-धातु से कानच प्रथमा एकवचन में।
- **पृच्छमानः** - प्रच्छ्-धातु से शानच प्रथमा एकवचन में।
- **अक्षासः** - अक्षा का (वैदिक रूप है)।
- **दधतः** - धाधातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में। और षष्ठी एकवचन में।
- **तिरन्ति** - तृ-धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा॥७॥

पदपाठ - अक्षासः। इत्। अङ्कुशिनः। निऽतोदिनः। निऽकृत्वानः। तपनाः। तापयिष्णवः॥ कुमारऽदेष्णाः। जयतः। पुनःऽहनः। मध्वा। सम्ऽपृक्ताः। कितवस्य। बर्हणा॥७॥

अन्वय – अक्षासः इत् अङ्कुशिनः नितोदिनः निकृत्वानः तपनाः तापयिष्णवः कुमारदेष्णाः पुनर्हणः कितवस्य बर्हणा मध्वा सम्पृक्ताः।

व्याख्या – किन्तु कभी कभी वह ही पासा बे हाथ हो जाता है, अङ्कुश के समान चुभता है बाण के समान छेदता है, छुरे के समान काटता है, तप्त पदार्थ के समान संताप देता है। जो जुआरी विजय होता है, उसके लिए पासे पुत्रजन्म के समान आनंद दाता होता है। और भी मधुरिमा से युक्त होता है और मानो मीठे वचन से सम्भाषण करता है, किन्तु हारे हुए जुआरी को तो मार ही डालता है।

सरलार्थ – इस मन्त्र में कभी-कभी पासे अंकुश के समान चुभने वाले, हृदय को टुकड़े टुकड़े करने वाले एवं गरम पदार्थ के समान जलाने वाले बन जाते है, पासे जीतने वाले जुआरी के लिए पुत्र जन्म के समान आनंदाता एवं मधु से लिपटे ही लगते है, पर हारने वाले की तो जान निकाल लेते है।

व्याकरण

- **अक्षासः** – अक्षशब्द का प्रथमाबहुवचन में वैदिक रूप है।
- **अङ्कुशिनः** – अङ्कुशशब्द से इनि प्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।
- **निकृत्वानः** – निपूर्वक कृद्-धातु से क्वनिप्प्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।
- **तपनाः** – तप्-धातु से ल्युट प्रथमाबहुवचन में।
- **तापयिष्णवः** – तप्-धातु से णिच इष्णुच्प्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।
- **जयतः** – जिधातु से शतृप्रत्यय करने पर पञ्चमी एकवचन में अथवा षष्ठी एकवचन में।
- **सम्पृक्ताः** – सम्पूर्वक पृच्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति॥८॥

पदपाठ – त्रिऽपञ्चाशः। क्रीळति। व्रातः। एषाम्। देवःऽइव। सविता। सत्यऽधर्मा॥ उग्रस्य। चित्। मन्यवे। न। नमन्ते। राजा। चित्। एभ्यः। नमः। इत्। कृणोति॥८॥

अन्वय – सत्यधर्मा सविता देव इव एषाम् त्रिपञ्चाशः व्रातः क्रीळति, उग्रस्य मन्यवे न नमन्ते। राजा चित् एभ्यः नमः कृणोति।

व्याख्या – तिरपन पासे नकश के ऊपर मिलकर विहार करते है, मानो सत्य स्वरूप सूर्यदेव संसार में विचरण करते है। जुआरी प्राय से उस प्रकार के पास से ही खेलते है। वहाँ दृष्टान्त है। सत्यधर्म। सविता सभी जगत के प्ररेक सूर्य देव के समान। जैसे सविता देव जगत में विचरण करता है उसी प्रकार पास उस जुआरियो के संघ में विचरण करता है। किन्तु पासा किसी के वश में नही आता है, उग्रचित क्रूरमन वाले क्रोध मनुष्य के भी वश में ये पास नही होते है। उनके वश में नही होते

टिप्पणियाँ

है। उनको विजय नही बनाते है। राजा स्वरूप जगत के स्वामी भी इनको नमन करते है जुआ हेलने के समय इनका अपमान नही करते है।

सरलार्थ – सूर्यदेव जिस प्रकार आकाश में विचरण करते है, उसी प्रकार तिरेपन पासे जुआ खेलने के तख्ते पर क्रीडा करते है, ये पासे उग्र एवं क्रोधी के भी वश में नही आते, राजा तक इन पासों के सामने झुकता है। उनकी अवज्ञा नही करते है यह अर्थ है।

व्याकरण

- **क्राळति** – क्रीड्–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में। (दो स्वर के मध्यस्थ होने से डकार के स्थान पर ळकार)
- **नमन्ते** – नम्–धातु से लट् प्रथमपुरुष बहुवचन में वैदिक रूप है।
- **कृणोति** – कृ–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताःशीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति॥९॥

पदपाठ – नीचा। वर्तन्ते। उपरि। स्फुरन्ति। अहस्तासः। हस्तऽवन्तम्। सहन्ते॥ दिव्याः। अङ्गाराः। इरिणे। निऽउप्ताः। शीताः। सन्तः। हृदयम्। निः। दहन्ति॥९॥

अन्वय – नीचाः वर्तन्ते उपरि स्फुरन्ति। अहस्तासः हस्तवन्तं सहन्ते। इरिणे न्युप्ताः दिव्याः अङ्गाराः शीताः सन्तः हृदयं निर्दहन्ति।

व्याख्या – पासे कभी नीचे उतरते है तो कभी ऊपर उठते है। इनके हाथ नही है परन्तु जिनके हाथ है वे उनसे पराजय होते है। जुआरी यदि एक बार जीत भी जाता है तो भी उसके मन में भय बना रहता है की अगली बार हार नही जाऊ। जले हुए अङ्गार के समान ये नकश के ऊपर बैठे हुए अग्नि से रहित और इन्धन से रहित होने पर भी शीतस्पर्श वाले सन्त के हृदय में जुए के कारण प्राप्त पराजय से उनके हृदय में पराजय द्वारा उत्पन्न अग्नि जलती है। ये स्पर्श में ठंडे है किन्तु हृदय को जलाता है।

सरलार्थ – पासे कभी नीचे गिरते है और कभी ऊपर उछलते है, ये बिना हाथ के होकर भी हाथवालो को पराजित करते है, ये दिव्य पासे जुआ खेलने के तख्ते पर फेंके जाते समय अंगार बन जाते है ये छूने में ठंडे है, पर हारने वाले के मन को जलाते है।

व्याकरण

- **अहस्तासः** – प्रथमाबहुवचन में, (वैदिक)लोक में तो अहस्ताः, न विद्यते हस्तौ येषां ते अहस्तासः नञ्तत्पुरुष समास।
- **सहन्ते** – आत्मनेपद सह–धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।

- **दिव्याः** – दिवि भवाः दिव्याः, दिव्-धातु सेर यत्प्रत्यय करने पर, प्रथमाबहुवचन में।
- **न्युप्ताः** – निपूर्वकवप्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।
- **निर्दहन्ति** – नि पूर्वक दह्-धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।

जाया तप्यते कितवस्य हीनामाता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो-ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति॥१०॥

पदपाठ – जाया। तप्यते। कितवस्य। हीना। माता। पुत्रस्य। चरतः। क्व। स्वित्॥ ऋणऽवा। बिभ्यत्। धनम्। इच्छमानः। अन्येषाम्। अस्तम्। उप। नक्तम्। एति॥१०॥

अन्वय – कितवस्य हीना जाया तप्यते, क्व स्वित् चरतः पुत्रस्य माता, ऋणावा बिभ्यत् धनम् इच्छमानः नक्तम् अन्येषाम् अस्तम् उप एति।

व्याख्या – जुआरी की स्त्री दीन-हीन वेश में यातना भोगती रहती है, पुत्र कहाँ कहाँ घुमा करता है, ऐसा सोचकर जुआरी की माता व्याकुल रहा करती है, त्यक्ता के रूप में उसकी पत्नी वियोग सन्ताप से सन्तप्त रहती है। माता और इसके सम्बन्धि कष्ट को प्राप्त करते है। पुत्र शोक से सन्तप्त होती है। जो जुआरी को उधार धन देता है, वह इस संदेह में रहता है की मेरा धन फिर मिलेगा अथवा नही मिलेगा। 'अस्तं पस्त्यम्8 इति गृहनाम में पढ़ा हुआ है। और रात में भी वह जुआरी बेचारा दूसरे के घर में रात काटा करता है।

सरलार्थ – अनिश्चित स्थान में घुमने वाले जुआरी की पत्नी उसके बिना दुखी होती है एवं माता परेशान रहती है, दूसरो के कर्ज चढ़ जाने से जुआरी डरता है, वह दूसरो के धन को चुराने की इच्छा करता है रात में घर आता है।

व्याकरण

- **हीना** – हाधातु से क्तप्रत्यय और टाप करने पर प्रथमा एकवचन में।
- **तप्यते** – आत्मनेपद तप्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **चरतः** – चर्-धातु से शतृप्रत्यये करने पर षष्ठी एकवचन में।
- **बिभ्यत्** – भीधातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में वैदिक रूप है।
- **इच्छमानः** – इष्-धातु से शानच प्रथमा एकवचन में।

पाठगत प्रश्न 21.2

1. जुआरी क्या बोलता हुआ मण्डली में प्रवेश करता है।
2. अक्षासः इसका लौकिक रूप क्या है।

टिप्पणियाँ

3. शूशुजानः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ।
4. मध्वा इसका लौकिक रूप क्या है।
5. तापयिष्णवः ये रूप कैसे सिद्ध हुआ।
6. निकृत्वानः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ।
7. किसके समान पासों का संघ स्वच्छंद रूप से विचरण करते है।
8. कितने पासे स्वच्छंद रूप से विचरण करते है।
9. कैसे जुआरी की पत्नी सन्तप्त होती है। तुला
10. किस प्रकार का जुआरी ब्राह्मण आदि के घर में प्रवेश करता है।

21.1.3 मूलपाठ की व्याख्या (श्लोक 11-14)

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद॥११॥

पदपाठ - स्त्रियम्। दृष्ट्वाय। कितवम्। ताप। अन्येषाम्। जायाम्। सुऽकृतम्। च। योनिम्॥ पूर्वाह्णे। अश्वान्। युयुजे। हि। बभ्रून्। सः। अग्नेः। अन्ते। वृषलः। पपाद॥११॥

अन्वय - कितवं स्त्रियम् अन्येषां जायां सुकृतं योनिं दृष्ट्वाय ततापं पूर्वाह्णे बभ्रून् युयुजे, वृषलः अग्नेः अन्ते पपाद।

व्याख्या - कितवं कितवः यहाँ पर विभक्ति का व्यत्यय। अपनी स्त्री की दशा को देखकर जुआरी का ह्रदय फटा करता है, अन्यो की स्त्रियों का सौभाग्य को देखकर के उनकी प्रसन्नता को देखकर उस जुआरी को सन्ताप होता है। जो जुआरी प्रातःकाल में घोड़े की सवारी कर आता है, वाही संध्या के समय दरिद्र के समान जाड़े से बचने के लिए आग से तपाता है, उसके शरीर पर वस्त्र भी नही रहता है।

सरलार्थ - जुआरी दुसरो की सुखी पत्नियों को देखकर और अच्छी प्रकार से बने हुए घरों को देखकर दुखी होता है। जो जुआरी प्रातःकाल घोड़े पर बैठकर जाता है वही शाम को कपड़ो के अभाव में व्याकुल होकर अग्नि के समीप रात्री व्यतीत करता है।

व्याकरण

- **दृष्ट्वाय** - दृश्-धातु से कत्वाय(वैदिक) लोक में तो दृष्ट्वा।
- **तताप** - तप्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **युयुजे** - युज्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **पपाद** - पद्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में (लडर्थे लिट्)।

यो वः सेनानीर्महतो गणस्यराजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मिदशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि॥१२॥

पदपाठ – यः। वः। सेनाऽनीः। महतः। गणस्य। राजा। व्रातस्य। प्रथमः। बभूव॥ तस्मै। कृणोमि। न। धना। रुणध्मि। दश। अहम्। प्राचीः। तत्। ऋतम्। वदामि॥१२॥

अन्वय – वः महतः गणस्य यः सेनानीः बभूव, व्रातस्य प्रथमः राजा, तस्मै अहम् दश प्राचीः कृणोमि, धना न रुणध्मि, तत् ऋतं वदामि।

व्याख्या – हे पासों तुम्हारे दल में जो प्रधान है, सेनापति है अथवा राजा है, उसको मैं अपनी दसों अगुलियाँ जोडकर प्रणाम करता हूँ। गणव्रत में थोडा ही भेद है। राजा ईश्वर प्रथम मुख्य उस पासों को मैं पासों के लिए हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। इसलिए मैं सच कहता हूँ मुझे दुसरों का धन नही चाहिए, मैं धन को प्राप्त करने के लिए नही खेलता हूँ। ऐसे ही देखना चाहते है। मैं दशसंख्या अङ्गुली को आप के सम्मुख जोड़कर प्रणाम करता हूँ। वह यह मैं ऋत सत्य ही बोलता हूँ। झूठ नही बोलता हूँ।

सरलार्थ – इस मन्त्र में पासों के प्रति कहते है की हे पासों तम्हारे समूह के प्रधान अथवा राजा को मैं उसके लिए नमस्कार करता हूँ। मैं दसों अंगुलियों वाले हाथ को जोड़कर सत्य कहता हूँ की भविष्य में मैं जुए से धन नही कमाऊंगा।

व्याकरण

- **बभूव** – भूधातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **कृणोमि** – कृधातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।
- **रुणध्मि** – रुध्-धातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में।
- **धना** – द्वितीयाबहुवचन में वैदिक रूप है।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जायातन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥१३॥

पदपाठ- अक्षैः। मा। दीव्यः। कृषिम्। इत्। कृषस्व। वित्ते। रमस्व। बहु। मन्यमानः॥ तत्र। गावः। कितव। तत्र। जाया। तत्। मे। वि। चष्टे। सविता। अयम्। अर्यः॥१३॥

अन्वय – कितव! अक्षैः मा दीव्यः कृषिम् इत् कृषस्व। बहु मन्यमानः वित्ते समस्व, तत्र गावः, तत्र जाया तत् मे अयम् अर्यः सविता विचष्टे।

व्याख्या – हे जुआरी कभी जुआ नही खेलना। मेरे वचनों का विश्वास करो जुआ मत खेलो। कृषि- खेती ही करो। खेती से कमाया हुआ जो धन है उससे ही संतुष्ट रहो। वहाँ गाय होती है। वहाँ पत्नी होती है। वह ही धर्म रहस्य को श्रुति स्मृतिकर्त्ता सविता सभी के प्रेरक यह दृष्टिगोचर सूर्य देव ने मुझे विशेष रूप से ऐसा कहा।

टिप्पणियाँ

सरलार्थः- सविता जुआरियो के प्रति कहती है की हे जुआरियों पासों से मत खेलो। खेती से बहुत से कृषिकार्य को करो। उससे जितना धन प्राप्त करोगे उससे ही आनन्द का अनुभव करो। उस धन से ही तुम गायो और अपनी स्त्री को प्राप्त करो।

व्याकरण

- दीव्यः-दीव्-धातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन में।
- कृषस्व-कृष्-धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचने में (वैदिक)।
- रमस्व-रम्-धातु से लोट् मध्यमपुरुषै एकवचने में।
- चष्टे-चक्ष्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु॥१४॥

पदपाठ - **मित्रम्। कृणुध्वम्। खलु। मृळत। नः। मा। नः। घोरेण। चरत। अभि। धृष्णु॥ नि। वः। नु। मन्युः। विशताम्। अरातिः। अन्यः। बभ्रूणाम्। प्रऽसितौ। नु। अस्तु॥१४॥**

अन्वय - मित्रं कृणुध्वम्, खलु नः मृळत, धृष्णु, घोरेण मा अभिचरत। नु वः मन्युः अरातिः नि विशतां, नु अन्यः बभ्रूणां प्रबन्धने प्रसितौ अस्तु।

व्याख्या - हे पासों हमे बन्धु जानो। हम से मैत्री करो। खलु यह पादपूरण है। हमको प्रसन्नता और सुख दो। हमको धृष्णु धृष्णुना तृतीय अर्थ में प्रथमा। हमारे ऊपर घोरदुर्द्धष प्रभाव का प्रयोग नही करना। और हमारे शत्रु ही तुम्हारे क्रोध के भाजन बने, आप हमारे शत्रु में ही निवास करो। हमारे शत्रु अन्य लोग ही तुम्हारे कोप दृष्टि में फंसे रहे।

सरलार्थः - इस मन्त्र में जुआरी पासों के प्रति कहते है की हे पासों तुम हमारे साथ मित्रता करो। हम पर दया करो। तुम्हारे भयङ्कर प्रभाव से हमारी रक्षा करो। तुम्हारे क्रोध को शत्रुओ पर अब स्थिर करो। अब किसी भी अन्य मनुष्य को अपने पास में मत गिराओ।

व्याकरण

- **कृणुध्वम्** - आत्मनेपद कृधातु से लोट मध्यमपुरुषबहुवचने में।
- **मृळत** - मृड्-धातु से लोट मध्यमपुरुषबहुवचन में।
- **विशताम्** - विश्-धातु से लोट प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **प्रसितौ** - प्रपूर्वक सि धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर सप्तमी एकवचन में।
- **अरातिः** - न रातिः अरातिः नञ्तत्पुरुषः, नपूर्वक राधातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में।

पाठगत प्रश्न 21.3

1. जुआरी क्या देखकर के दुखी होता है?
2. कृणोमि इसका लौकिक रूप क्या है?
3. धना इसका लौकिक रूप क्या है?
4. दृष्ट्वाय यह रूप क्या सही है?
5. कैसे कृषिमित्कृषष्व ये जुआरी के प्रति कहते है?
6. दीव्यः यह रूप कैसे सिद्ध हुए?
7. मित्रं कृणुध्वं खलु... इत्यादि मन्त्र में खलु इसका क्या अर्थ है?
8. मृळत इसका क्या अर्थ है?
9. धृष्णु यहाँ पर किस अर्थ में प्रथमा है?
10. पपाद यहाँ पर किस अर्थ में लिट् है?

21.2 अक्षसूक्त का सार

ऋग्वेद में अक्षसूक्त से अक्षनामदेव की अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रार्थना करते है। सामाजिक कुरीतियों का, मनुष्यों में वर्तमान के दुर्व्यसनों का सम्पूर्ण रूप से नाश के लिए इस सूक्त का आरम्भ किया गया है। समाज में जब भोगविलास की शक्ति का उदय होने पर उसी ही काल में जुए खेल का भी बहुत प्रचार और प्रसार दिखाई देती है। ऋग्वेद के युग में जुआ खेला जाता था, समाज में स्थित भयंकर बीमारी थी। अब अक्षसूक्त में उस विषय की ही आलोचना करते हैं। इस सूक्त के अन्त में कृषि करनी चाहिए, ऐसा मनुष्यों को उपदेश दिया गया है।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल का चौतीसवाँ सूक्त अक्षसूक्त है। इस सूक्त के ऋषि ऐलूष कवष मूजवत्पुत्र अथवा अक्ष है। यहाँ सूक्त में प्रथम-सात, नौ और बारहवें मन्त्र का अक्षा देवता है। दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, आठवें, दसवें, ग्यारहवें, और चौदहवें मन्त्र का कितव और अक्ष देवता है। और तेरहवें मन्त्र का कृषि देवता है। केवल सातवें मन्त्र को छोडकर सभी में त्रिष्टुप्छन्द है। सातवे मन्त्र में तो जगतीच्छन्द है। इस अक्षसूक्त में मूलरूप से अक्ष खेलने के बुरे फल को ही कहा गया है। इस सूक्त में एक जुआरी का जीवन कैसे होता है इस विषय में कहा गया है। जुआरी कैसे जीवन बीताते है। उनकी पत्नियो की अवस्था किस प्रकार होती है। किस प्रकार उनका घर का वैभव होता है इत्यादि चौदह मन्त्रो में कहा गया है। मन्त्रो में जो कहा गया है उसको साररूप से कहा गया है।

टिप्पणियाँ

द्यूतक्रीडा का दुष्परिणाम ही लोक में जुए में आसक्त मनुष्य को निन्दा प्राप्त होती है। उसकी पत्नी, श्वश्रू, और अन्य शुभ आकाङ्क्षि उससे द्वेष करते है। उसके प्रति कोई भी दयाभाव नही दिखाता है। बहुमूल्य धन स्थविर घोड़े के समान जुआरी के प्रिय पात्र नही होती है। द्यूतकार पतिव्रता अपनी पत्नी को भी द्यूत क्रीडा में मुद्रा के रूप से स्थापित करता है। और अन्य घर की पत्नी को देखकर द्यूत से उन्मत्त मनुष्य खेद करते हैं। द्यूत क्रीडा का कठिन दुष्परिणाम उसी प्रकार दिखाई देते हैं, जब पराजित की पत्नी को कोई भी आलिङ्गन करता है। जब द्यूतकार उसकी धनराशि को पणरूप से प्रतिज्ञा के लिये भी उसको देने के लिए नही चाहते है, तब राजा के सिपाही रस्सी के द्वारा बान्ध करके राजा के समीप ले जाते हैं। तब उसकी दुर्दशा को देखकर के अपने मनुष्य भी करुणा नही करते हैं, और उसकी रक्षा नही करना चाहते हैं।

इस सूक्त में अक्षक्रीडा का प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। अक्षसूक्त में कितवनाम का कोई जुआरी अक्षक्रीडा में मद रहता था। वह बहुत वार पराजित होकर के भी उस आसक्ति से मुक्त नही होता है। आज विजय होऊंगा ऐसा चिन्तन करके द्यूत खेलता यद्यपि जीतता परन्तु, दिन के अन्त में वह सभी और खाली दरिद्र भिक्षुक के समान घर को प्राप्त करके अग्नि के समीपवर्ति स्थान का आश्रय लेता है। 'सः अग्नेरन्ते वृषलः पपाद' (१०-३४-११)। कितव की स्त्री यद्यपि अक्षक्रीडा से पूर्व झगडा नही किया, कितव के मित्रो के लिये अनुकूल ही थी। परन्तु, अक्षक्रीडा के बाद वह परित्यक्ता होती है। जो यहाँ कितव होता है उस की पत्नी अन्य जुआरियों के लिए केश आदि के आकर्षण से स्पृश करते है। इस प्रकार जैसे कितव के प्रतिकूला अवस्था होती है, वैसे ही उसकी पत्नी की भी थी। जहाँ अन्य मनुष्यों की पत्नी सौभाग्य सुख से जीवन बिताती है, वहीं उसकी पत्नी हीन और दीन होकर के अन्तदुख जलती रहती है। और माता मार्ग में झगडती है। वह पाशक्रीडा में पराजित होने पर ऋण लेता है, अन्य घर में आत्मा को छुपाता है। इस प्रकार हृदय विदारक चित्रण इस मन्त्र में चित्रित किया है।

'जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित॥
ऋणावा विभ्यद् धनमिच्छमानः अन्येषामस्तमुप नक्तमेति'॥ इति। (१०-३४-१०)

और अन्त में द्यूतकार को बोध हो जाता है। वह सभी जगह पराजय को अनुभव करके अन्त में इस शिक्षा प्राप्त किया की जुआ अकल्याणकारी और धन को हरने वाला है। उसने जान लिया की कृषि कर्म ही प्रकृत और सुखकारी कार्य है। द्यूतप्रभृति खेल मनुष्यो को जीवनस्रोत से हटाते है। उनमे द्यूत आदि में अर्जित धन बहुत परिश्रम से उपार्जित है। कितव ने इस शिक्षा को मनुष्यों में प्रचार किया की - 'अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः' इति। स्वयं सविता देव इस सत्य के साक्षिरूप से है। 'तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः' (१०-३४-१३)। और अन्त में कितव अक्षाभिमानी देवता को प्रणाम करते है।

अमर सन्देश

अक्षसूक्त का अधिक से अधिक स्थानों में द्यूतक्रीडा का दुष्परिणाम कहा गया है। वैदिक ऋषि ने अमर सन्देश का मनुष्यों में प्रचार किया की जुए में कभी भी आसक्त मत हो, और अपना

नाश मत करो। और जैसा वेद में कहा गया ऋग्वेद के अक्षसूक्त में 'अक्षैः मा दिव्यः कृषिमित् कृषस्व' इति। (१०-३४-१३) कृषिद्वारा प्राप्त धन में आदरभाव को प्रदर्शित किया गया, उससे ही सुख को प्राप्त होते है। कृषिकार्य में गाय जैसे पालतु पशु रहते है। और उनसे हमारी समृद्धि होती है। अतः हे! अक्ष भगवन् मेरे साथ मित्रता करो। तेरी मोहिनी शक्ति को मुझ पर मत फैलाओ। हमेशा मेरे सहायक हो। इसलिये ही इस सूक्त में अक्षदेव से प्रार्थना की गई- 'प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा।

21.3 अक्ष स्वरूप

मानव सामाजिक में दुर्व्यवहार के निराकरण करने के लिए सूक्तो का सङ्कलन किया गया है। अक्षसूक्त भी इसी प्रकार का एक सूक्त है जहाँ अक्षक्रीडा के दुष्परिणाम का वर्णन किया है। अक्षसूक्त में अक्षस्वरूप को वर्णित किया है। अक्ष द्यूतक्रीडा के देवता रूप से विख्यात है। वह देव अक्ष उसी प्रकार श्रद्धा को धारण करते है जैसे शिल्पकार अपने उपकरण को धारण करते है। अथवा जैसे लेखक अपनी लेखनी को धारण करते है, और वाणिज्य अपने तुलादण्ड को धारण करते है। अक्ष किसी भी फल के बीज से निर्माण किया जाता है। ये भूरे रंग के होते है। ये किसी पात्र में रखकर हाथों के द्वारा उनको खेला जाता है। जुआ खेलना ही बुरा कर्म है। मनुसंहिता के राजधर्म प्रसङ्ग में (७.४७) जिन दस काम व्यसनों का उल्लेख प्राप्त होता है वहाँ पर जुआ खेल का भी उल्लेख है। और श्लोक भी है -

'मृगयाक्षः सुरापानं दिवास्वप्नः स्त्रियो मदः।
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः'॥ इति।

महाभारत के सभापर्व में भी इस कर्म की अच्छी प्रकार से निन्दा की। 'द्यूते क्षतः कलहो विद्यते, न को वै द्यूतं रोचते बुध्यमानः' यह पङ्क्ति महाभारत के सभापर्व में आती है। परन्तु कुछ अज्ञात आसक्ति वैदिककाल से ही मनुष्यों को इस द्यूतकर्म में लगाती है। इस अक्षसूक्त में उस द्यूत के विषय में तथा उससे मनुष्यों को कैसे छुडाये इस विषय में कहा गया है।

पासे दिव्य अङ्गार के समान महाशक्तिशाली है। यह अक्ष द्यूतक्रीडा को प्रसन्न वैसे ही करता है जैसे सोमरस देवो को आनन्दित करता है। यह अक्ष द्यूत आसक्त मनुष्य को सम्पूर्ण रात्रि को जगाये रखता है। द्यूत में मद मनुष्य चिन्ता आसक्ति में लगा हुआ पूरी रात जगा रहता है। अक्ष के पीछे कोई मोहित करने वाली शक्ति रहती है। द्यूतक्रीडा उसी शक्ति के वश में होकर रहती है। द्यूत आसक्त मनुष्य द्यूतकार्य से विमुख होऊंगा ऐसा सोचता हुआ भी द्यूतस्थल पर अपने संकल्पं को भूल जाता है। द्यूत आसक्त मनुष्य उस खेल में कुशल मनुष्य को देखकर अपनी पराजय को देखकर भी उससे नही डरता है। अक्षक्रीडा का शब्द से आसक्त मनुष्य द्यूतस्थल के प्रति दौड़ता है जैसे कुलटा स्त्री अपने संकेतस्थल के प्रति दौड़ती है।

द्यूतस्थल में फेके हुए पासे मर्मस्थल को प्रसन्न और भयभीत करते है। स्वयं शक्तिशाली से रहित होने पर भी हजारों को पराजित करता है। पासे शीतलस्पर्श से विशिष्ट होने पर भी द्यूतकार के

हृदय को जलाते रहते है। प्रकृति से लकड़ी के होने पर भी द्यूत के समय में वह कभी किसी द्यूतकार को गिरा देता है और कभी किसी को उठाता है। विजय करने वाले को वह आनन्द देने वाला होता है और दु:ख देने वाले को दु:ख देता है।

ऋग्वेद में पासों की संख्या विषय में सूचना देने के लिए त्तिरेपन शब्द प्रयुक्त हुआ। विद्वांन इस शब्द के अनेकों अर्थ किये हैं। जैसे –पन्द्रह, तिरेपन, पच्चीस, एक सौ। प्राचीन काल में संहिताग्रन्थों में और ब्राह्मणग्रन्थो में द्यूतचलन सम्बन्धियों की उक्तीयों की तालिका प्राप्त होती है। द्यूतक्रीडा के लिए भूमि पर एक निम्न स्थान का निर्माण किया जाता है।

पाठ का सार

इस अक्षसूक्त में मूल रूप से अक्षक्रीडा के बुरे फल को ही कहा। इस सूक्त में एक जुआरी का जीवन कैसे होता है इस विषय,में कहा गया है। कैसे जुआरी जीवन को बीताते है। उनकी पत्नियो की अवस्था किस प्रकार होती है। उनके घर का वैभव कैसे होता है। इन विषयो को चौदह मंत्रो के द्वारा कहा गया है। मन्त्रो में जो कहा गया है उस की ही यहाँ पर साररूप से कहते है। जो जुआरी की स्त्री होती है, वह यद्यपि अक्षक्रीडा से पूर्व झगडा नही करती थी, कितव मित्रो के लिए अनुकूल ही था। परन्तु, अक्षक्रीडा के बाद वह ही अनुकूल स्त्री परित्यक्ता होती है। जो कितव होता है, उसकी सास भी उसको छोड़ देती है। पत्नी भी हमेशा दु:खी होती है। और जो कितव होता है, उसकी पत्नी को भी अन्ये जुआरी केश आदि आकर्षण से स्पृश करते है। इसी प्रकार जैसे जुआरी की प्रतिकूल अवस्था होती है वैसे ही उसकी पत्नी की भी होती है। यद्यपि कितव सोचता है की अब नही खेलूंगा, फिर भी पीले पासों को देखकर पतित व्यभिचारिणी स्त्री के समान ही चला जाता है। इसी प्रकार उसकी दुरवस्था होता है। पास के कुछ विशेषण भी है। और वे अङ्कुशिन, नितोदिन, विनाशिन, सन्तापदा, पुत्रतुल्यधनदा। इस प्रकार के पासे होते है। केवल इसी प्रकार ही नही अपितु वे क्रोधि के सामने भी नही झुकते है। वे अङ्गार के समान ही जुआरी के हृदय को जलाते है। राजा भी उनकी अवज्ञा नही करता है। उन जुआरी की स्त्रियों की स्थिति क्या होती है कहते है। जो जुआरी होते है उनकी पत्नियाँ दु:खी होती है। और उन जुआरियो को ऋण देने में भी भी लगता है। जुआरी रात में दूअरो के घर में चोरी के लिए प्रवेश करते है। जुआरी अपनी स्त्री घर वैभव को और अन्य की पत्नियों को और घर वैभव को देखकर दु:खी होता है। इस प्रकार जुआरी का जीवन चलता है। वहाँ अक्षसूक्त के चौदहवे मन्त्र को पास के प्रति जुआरी ने प्रार्थना की है। और तेरहवे मन्त्र में अक्षक्रीडा को छोड़कर खेती करने के लिए कहा गया है। इसी प्रकार सम्पूर्ण अक्षसूक्त में पासों का विवरण, उनका बुरा फल, और जुआरी के परिणाम दिए गए है।

पाठांत प्रश्न

1. अक्षसूक्त का सार लिखिए।
2. पासों से खेलने से जुआरी क्या बनता है? इसकी मन्त्र सहित व्याख्या कीजिए।
3. जुए को छोडकर क्या करना चाहिए। इस विषय पर मन्त्र को लिखकर व्याख्या कीजिए।
4. मित्रं कृणुध्वं खलु ... इत्यादिमन्त्र को पूरा करके व्याख्या कीजिए।
5. नीचा वर्तन्त उपरि ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नो के उत्तर

21.1

1. ऐलूषकवष ऋषि, त्रिष्टुप् और ७ वे मन्त्र में जगती छन्द है, अक्ष ऋषि देवता है।
2. विचरण करते है।
3. चलायमान धर्म वाले।
4. छन्द्-धातु से लुङ प्रथमपुरुष एकवचन में।
5. हीड् धातु।
6. सुख को देने वाले।
7. वस्त्रकेश आदि के आकर्षण से स्पर्श करते है।
8. मुर्ख के समान।
9. आपूर्वक आत्मनेपद धीधातु से लट् उत्तमपुरुष एकवचन में।
10. धन।

21.2

1. यहाँ पर कौन धनवान है उसको मैं जीतुगा।
2. अक्षा: लौकिक रूप है।
3. शुज्-धातु से कानच प्रथम एकवचन में।

4. मधुना लौकिक रूप है।
5. तप्-धातु से णिच इष्णुच्प्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।
6. निपूर्वक कृद्-धातु से क्वनिप्प्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में।
7. जैसे सूर्य देव संसार में विचरण करता है।
8. तिरेपन।
9. वियोग सन्ताप और पुत्र शोक से।
10. पासों से पराजित ऋणी मनुष्य।

21.3

1. अपने से अन्य पुरुषों की पत्नियों को और उनके घर वैभव को देखकर और अपनी दुर्दशा को देखकर दुखी होता है।
2. करोमि लौकिक रूप है।
3. धनानि लौकिक रूप है।
4. वेद में उचित है।
5. उस कृषि से गाय होती है। वहाँ पत्नी होती है। वह ही धर्मरहस्य है।
6. दीङ्-धातु से लङ् मध्यमपुरुष एकवचन में।
7. पादपूरण अर्थ में।
8. सुख से।
9. तृतीय अर्थ में।
10. लड अर्थ में।

॥ इक्कीसवाँ पाठ समाप्त ॥

22

पर्जन्यसूक्त और मनुमत्स्य कथा

देववाणी और वेदवाणी संस्कृत है। संस्कृत भाषा में अत्यन्त प्राचीन साहित्य प्राप्त होता है। वह ही वेद है। संस्कृत वाङ्मय आकाश में वेद ही मृगराज है। भारतभूमि पर धर्म और अध्यात्म वेद से ही देव जाने जाते है। वेद धर्म निरूपण करने में स्वतन्त्र भाव से प्रमाण है। स्मृति आदि तो वेदमूलक होने से उसकी ही प्रमाण पदवी को धारण करते है। इसलिए श्रुति स्मृति में विरोध होने पर सभी आस्तिकों के द्वारा श्रुति को ही श्रेष्ठ रूप से अङ्गीकार करना चाहिए। भारत के अज्ञात इतिहास में मनुष्य जीवन का ज्ञान वेद ज्ञान के बिना सम्भव नही है। वहाँ धर्म आदि पुरुषार्थ जहाँ विद्यमान है वे वेद कहलाते हैं। सायण के मत से अपौरुषेय वाक्य वेद है। मनुष्य सुख में लिप्त रहना चाहता है। और दु:ख से पीछा छुडाना चाहता है। वहाँ इष्ट प्राप्ति के लिए और अनिष्ट परिहार के लिए अलौकिक उपाय जो बताता है वह वेद कहलाता है। वैसे ही श्लोक–

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।'' इति।

वेद चार हैं – ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद।

इस पाठ में पर्जन्यसूक्त और मनुमत्स्य कथा पाठ्य रूप से विद्यमान है। पूर्वार्ध में पर्जन्यसूक्त विद्यमान है, और उत्तरार्ध में मनुमत्स्य कथा लिखी गई है।

चार वेदों में वहाँ ऋग्वेद में अग्नि आदि देवों की स्तुति विद्यमान है, वैसे ही पर्जन्यदेव की भी स्तुति विद्यमान है। यह सूक्त ऋग्वेद के पाचवें मण्डल में विद्यमान तैयासीवाँ सूक्त है। इस सूक्त के पर्जन्य देवता, अत्रि ऋषि, प्रथम, पञ्चम षष्ठ, सप्तम, अष्टम, दशम,मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है, द्वितीय तृतीय चतुर्थ में जगती छन्द है, नवम में अनुष्टुप् छन्द है। प्रत्येक सूक्त में सायणभाष्य को व्याख्या रूप से दिया हुआ है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहिता पाठ कर पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों के पदपाठ को जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों की व्याख्या कर पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मंत्रो के सरलार्थ को जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को समझ कर पाने में;
- सूक्त के तात्पर्य और सूक्त के तत्त्व को जान पाने में;
- सूक्त के अर्थ को समझ कर सूक्त की महिमा को समझ पाने में;
- वैदिक शब्दो को समझ पाने में;
- वैदिक और लौकिक का भेद समझ पाने में;
- वैदिक रूपों को जान पाने में।

22.1 मूलपाठ (पर्जन्यसूक्त)

अच्छा॑ वद॒ तव॑सं॒ गीर्भि॒राभिः॒ स्तुहि॒ प॒र्जन्यं॑ नम॒सा वि॑वास।
कनि॑क्रदद्वृष॒भः जी॒रदा॑नू॒ रेतो॑ दधा॒त्योष॑धीषु॒ गर्भ॑म्॥१॥

वि वृ॒क्षान् ह॑न्त्यु॒त ह॑न्ति॒ र॒क्षसो॒ विश्वं॑ बिभाय॒ भुव॑नं म॒हाव॑धात्।
उ॒तानां॑गा ईषते वृष्ण्या॒वतो॒ यत्प॒र्जन्यः॑ स्तनय॒न् हन्ति॑ दु॒ष्कृतः॑॥२॥

र॒थीव॒ कशा॑याश्वाँ अभिक्षि॒पन्ना॒विर्दू॒तान्कृ॑णुते॒ व॒र्ष्या॑३ अह।
दू॒रात्सिं॑हस्य॒ स्तन॑था॒ उदी॑रते॒ यत्प॒र्जन्यः॑ कृ॒णुते॒ व॒र्ष्य१ नभः॑॥३॥

प्र वाता॒ वान्ति॒ पत॑यन्ति॒ विद्यु॑त॒ उदोष॑धीर्जिहते॒ पिन्व॑ते॒ स्वः।
इरा॒ विश्व॑स्मै॒ भुव॑नाय जायते॒ यत्प॒र्जन्यः॑ पृथि॒वीं रे॒तसा॑वति॥४॥

यस्य॑ व्र॒ते पृ॑थि॒वी नन्न॑मीति॒ यस्य॑ व्र॒ते श॒फव॒ज्जर्भु॑रीति।
यस्य॑ व्र॒त ओष॑धीर्वि॒श्वरू॑पाः॒ स न॑ः पर्जन्य॒ मह्यि॒ शर्म॑ यच्छ॥५॥

दि॒वो नो॑ वृ॒ष्टिं म॑रुतो ररीध्वं॒ प्र पि॑न्वत वृ॒ष्णो अश्व॑स्य धाराः॑।
अ॒र्वाङे॒तेन॑ स्तनयि॒त्नुने॒ह्यपो॒ निषि॑ञ्चन्नसु॒रः पि॒ता नः॑॥६॥

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सुकर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः॥७॥

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः॥८॥

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत् किंच पृथिव्यामधि॥९॥

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदः मनीषाम्॥१०॥

22.1.1 मूलपाठ की व्याख्या (पर्जन्यसूक्त) : श्लोक 1-5

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास।
कनिक्रदद्वृषभः जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम्॥१॥

पदपाठ - अच्छ। वद। तवसम्। गीःऽभिः। आभिः। स्तुहि। पर्जन्यम्। नमसा। आ। विवास। कनिक्रदत्। वृषभः। जीरऽदानुः। रेतः। दधाति। ओषधीषु। गर्भम्॥

अन्वय - आभिः गीर्भिः तवसम् अच्छ वद, नमसा पर्जन्यं स्तुहिः, आ विवास, जीरदानुः वृषभः कनिक्रदत् ओषधिषु गर्भं रेतः दधाति।

व्याख्या - हे स्तोता, तुम बलवान पर्जन्य देव के अभिमुख्यवर्ती होकर उनकी प्रार्थना करो। स्तुति वचनों से उनका स्तवन करो यास्क ने अनेक प्रकार से निरुक्त में कहा - 'पर्जन्यस्तृपेराद्यन्त विपरीतस्य तर्पयिता जन्यः परो जेता वा जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम्' (निरु० १०.१०) इति। हविर्लक्षण अन्न से से उनकी परिचर्या करो। जो जलवर्षक दानशील गर्जनकारी पर्जन्य वृष्टिपात द्वारा औषधियों को गर्भयुक्त करे।

सरलार्थ - (हे स्तोता) सामने जाकर बलवान पर्जन्य को अपना अभिप्राय ठीक से बताओ, स्तुति वचनों से उनकी प्रशंसा करो एवं हव्य अन्न द्वारा उनकी सेवा करो, गर्जन शब्द करने वाले, वर्षा कारक एवं शीघ्र दान करने वाले पर्जन्य ओषधियों में गर्भ धारण करते है।

व्याकरण विमर्श

- **विवास** - विपूर्वक वस्-धातु से मध्यम पुरुष एकवचन का यह रूप है।
- **कनिक्रदत्** - क्रन्द्-धातु से यङ् लुङन्त प्रथम पुरुष एकवचन का यह रूप है।
- **दधाति** - धा-धातु से लट् प्रथमा एकवचन का यह रूप है।

टिप्पणियाँ

वि वृक्षान् हंन्युत हंन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः॥२॥

पदपाठ – **वि। वृक्षान्। हन्ति। उत। हन्ति। रक्षसः। विश्वम्। बिभाय। भुवनम्। महाऽवधात्। उत। अनागाः। ईषते। वृष्ण्यऽवतः। यत्। पर्जन्यः। स्तनयन्। हन्ति। दुःऽकृतः॥**

अन्वय – पर्जन्यः वृक्षान् विहन्ति उत रक्षसकः हन्ति। महाबधात् विश्वं भुवनं विभाय यत् स्तनयन् दुष्कृतः हन्ति अनागाः वृष्ण्यावतः ईषते।

व्याख्या – इस मन्त्र में निरुक्त में स्पष्ट व्याख्या की है उसको ही यहाँ पर लिखते है, – 'पर्जन्य वृक्षों को नष्ट करता है, राक्षसों का वध करता है और महान वध द्वारा सम्पूर्ण भुवन को भय प्रदर्शित करते है। गरजने वाले पर्जन्य पापियों का संहार करते है। अतएव निरपराधि भी वर्षण करने वाले पर्जन्य के निकट से भयभीत होकर पलायमान हो जाते है (निरुङ्ग १०.११)' इति॥

सरलार्थ – पर्जन्यदेव वृक्षों और राक्षसों का नाश करते है। सारा संसार इनके महान वध से डरता है। वर्षा करने वाला पर्जन्य जब गर्जन करते हुए दुष्कर्मियो का नाश करते है, तो पाप रहित लोग भी उनसे डरते है।

व्याकरण विमर्श

- **स्तनयन्** – स्तन्धातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में यह रूप बनता है।
- **ईषते** – ईष् धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में यह बनता है।
- **विभाय** – भी धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृंणुते वर्ष्याँ३ अह।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्य१ नभः॥३॥

पदपाठ – **रथीऽइव। कशया। अश्वान्। अभिऽक्षिपन्। आविः। दूतान्। कृणुते। वर्ष्यान्। अह। दूरात्। सिंहस्य। स्तनथाः। उत्। ईरते। यत्। पर्जन्यः। कृणुते। वर्ष्यम्। नभः॥**

अन्वय – कशया अश्वान् अभिक्षिपन् रथी इव अहं वर्ष्यान् दूतान् आविष्कृणुते यत् पर्जन्यः नभः वर्षम् कृणुते, दूरात् सिंहस्य स्तनथाः उदीरते।

व्याख्या – रथी जिस प्रकार से कशाघात द्वारा घोड़ों को उत्तेजित करके योद्धाओं का अविष्कृत करता है उसी प्रकार पर्जन्य भी मेघो को प्रेरित करके वारिवर्षक मेघों को प्रकट करते हैं। जब तक पर्जन्य जलद समुह को अन्तरिक्ष में व्याप्त करते हैं तब तक सिंह की तरह गरजने वाले मेघ का शब्द दूर से ही उत्पन्न होता है।

सरलार्थ – रथी योद्धा जिस प्रकार कोड़े से घोड़ो को मारता हुआ योद्धाओं को प्रकट करता है, उसी प्रकार पर्जन्य जब आकाश को वर्षा से युक्त करते हैं, तब उनका गर्जन सिंह के समान दूर से उत्पन्न होता है।

व्याकरण विमर्श

- **अभिक्षिपन्** – अभि पूर्वकक्षिप्–धातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथम पुरुष एकवचन का यह रूप है।
- **उदीरते** – उत् पूर्वक ईर् धातु से लट् प्रथम पुरुष एकवचन का यह रूप है।
- **कशया** – कश् धातु से अच् प्रत्यय और टाप् प्रत्यय करने पर तृतीया बहुवचन का यह रूप है।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति॥४॥

पदपाठ – प्र। वाताः। वान्ति। पतयन्ति। विऽद्युतः। उत्। ओषधीः। जिहते। पिन्वते। स्व१रितिस्वः। इरा। विश्वस्मै। भुवनाय। जायते। यत्। पर्जन्यः। पृथिवीम्। रेतसा। अवति॥

अन्वय – यत् पर्जन्यः पृथिवीं रेतसा अवति, वताः प्रवान्ति, विद्युतः पतयन्ति, ओषधीः उज्जिहते. स्वः पिन्वते, विश्वस्मैस भुवनाय इरा जायते।

व्याख्या – 'प्र वाताः' यहाँ पर चतुर्थी पर्जन्यस्य चरोर्याज्या। और सूत्र में कहा गया है 'प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत् इत्यग्न्याधेय प्रभृति' (आश्व०२.१५) इति। जब तक पर्जन्य वृष्टि द्वारा भूमि की रक्षा करते है, तब तक वृष्टि के लिए हवा बहती है चारो तरफ बिजली चमकती रहती है, ओषधिया बढती रहती है। अन्तरिक्ष स्रावित होता रहता है और सम्पूर्ण भुवन की हित साधना में भूमि समर्थ होती रहती है।

सरलार्थ – जब पर्जन्यदेव पृथिवी को जल से सिचता है, तब वायु शीघ्र बहती है, बिजली गिरती है, ओषधी उत्पन्न होती है, आकाश टपकने लगता है, सम्पूर्णलोक के लिए पृथिवी (कल्याण प्रदान करने में) समर्थ होती है।

व्याकरण विमर्श

- **वान्ति** – वा–धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **पतयन्ति** – पत्–धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **उज्जिहते** – उत्पूर्वक आत्मनेपदहा–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **पिन्वते** – आत्मनेपद पिन्व्–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ॥५॥

पदपाठ – यस्य। व्रते। पृथिवी। नन्नमीति। यस्य। व्रते। शफऽवत्। जर्भुरीति। यस्य। व्रते। ओषधीः। विश्वऽरूपाः। सः। नः। पर्जन्य। महि। शर्म। यच्छ॥

टिप्पणियाँ

अन्वय – यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवत् जर्भुरीति, यस्य व्रते ओषधीः विश्वरूपाः स पर्जन्यः नः महि शर्म यच्छ।

व्याख्या – हे पर्जन्य तुम्हारे ही कर्म से भूमि अवन्नत होती है तुम्हारे ही कर्म से पाद युक्त या खुर विशिष्ट पशु पुष्ट होते है या गमन करते है। तुम्हारे ही कर्म से ओषधि विविध रूप धारण करती है। हे पर्जन्य तुम हम लोगो को महान सुख प्रदान करो।

सरलार्थ – जिसकी आज्ञा से पृथिवी झुकती है, जिसकी आज्ञा से खुरधारी पशु विचरण करते है, जिसकी आज्ञा से ओषधियाँ विविध रूपों में होती है। हे पर्जन्य देव! तुम हमारे लिए महान सुख प्रदान करो।

व्याकरण विमर्श

- **नन्नमीति** – नम्-धातु से यङ्लुक लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **जर्भुरीति** – भुर्-धातु से यङ्लुक लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **यच्छ** – यम्-धातु से लोट मध्यमपुरुष एकवचन में।

पाठगत प्रश्न 22.1

1. पर्जन्यसूक्त किस वेद के अन्तर्गत आता है?
2. पर्जन्यसूक्त का ऋषि कौन है?
3. पर्जन्यसूक्त का देवता कौन है?
4. विवास यह पद कैसे बना?
5. कनिक्रदत् यह पद कैसे बना?
6. पर्जन्य किसको मारता है?
7. ईषते इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?
8. विभाय यह पद कैसे बना?

22.1.2 मूलपाठ की व्याख्या (पर्जन्यसूक्त) : श्लोक 6-10

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः॥६॥

पदपाठ – दिवः। नः। वृष्टिम्। मरुतः। ररीध्वम्। प्र। पिन्वत। वृष्णः। अश्वस्य। धाराः। अर्वाङ्। एतेन। स्तनयित्नुना। आ। इहि। अपः। निऽसिञ्चन्। असुरः। पिता। नः॥

अन्वय – मरुतः दिवः न वृष्टिं ररीध्वम्, वृष्णः अश्वस्य धाराः प्रपिन्वतः। नः पिता असुरः अपः निषिञ्चन् एतेन स्तनयित्नुना अर्वाङ् एहि।

व्याख्या – हे मरुत! तुम लोग अन्तरिक्ष से हम लोगो के लिए वृष्टि प्रदान करो। वर्षणकारी और सर्वव्यापी मेघ की उदक धारा को क्षरित करो। वर्षाओं। हे पर्जन्य! तुम जलसेचन करके गर्जनशील मेघ के साथ हम लोगो के अभिमुख आगमन करो। तुम वारिवर्षक हो और हम लोगो के पालक हो।

सरलार्थ – हे मरुत, अन्तरिक्ष से हमारे लिए जल प्रदान करो। वर्षा करते हुए मेघ की धारो को नीचे की और प्रवाहित करो। हमारे पालक, प्राण देने वाले आप जलदेने कके लिए गर्जना करते हुए मेघो के साथ आओ।

व्याकरण विमर्श

- **ररीध्वम्** – आत्मनेपदि रा-धातु से लट् मध्यमपुरुषबहुवचन में।
- **प्रपिन्वत** – प्रपूर्वकपिन्व्-धातु से लोट मध्यमपुरुषबहुवचन में
- **निषिञ्चन्** – निपूर्वकसिञ्च्-धातु से शतृप्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में।
- **असुरः** – असून् प्राणान् राति ददाति इति असुरः।

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सुकर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः॥७॥

पदपाठ – अभि। क्रन्द। स्तनय। गर्भम्। आ। धाः। उदन्वता। परिऽदीय। रथेन। दृतिम्। सु। कर्ष। विऽसितम्। न्यञ्चम्। समाः। भवन्तु। उत्ऽवतः। निऽपादाः॥

अन्वय – अभि क्रन्द, स्तनय, गर्भम् आ धाः, उदन्वता रथेन परि दीय, विषितं दृतिं न्यञ्चम् सु कर्ष। उद्ववतः निपादाः समाः भवन्तु।

व्याख्या – पृथ्वी के ऊपर तुम शब्द करो गर्जन करो। जल के द्वारा औषधियों को गर्भ को धारण कराओ, वारिपूर्ण रथ द्वारा अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करो, उदकधारक मेघ को वृष्टि के लिए आकृष्ट करो या विमुक्त बंधन करो, उस बंधन को अधोमुख करो, उन्नत और निम्नतम प्रदेशो को समतल करो। अर्थात सभी को जल से परिपूर्ण करो।

सरलार्थ – (हे पर्जन्यदेव) (भूमि के) और अभिमुख करके गर्जना करो। (औषधियों में) गर्भ (जल को) स्थापित करो। जलयुक्त रथ के चारो और भ्रमण करो। विशिष्टरूप से बंधे हुए जलपात्र को नीचे की और मुख करके जल को खोलो। जिससे ऊर्ध्वस्थान औरनीचे के स्थानसमान हो।

व्याकरण विमर्श

- **क्रन्द** – क्रन्द्–धातु से लोट मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **स्तनय** – स्तन्–धातु से लोट मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **धाः** – धा–धातु से लुङ मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **दीया** – दी–धातु से लोट मध्यमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः॥८॥

पदपाठ – महान्तम्। कोशम्। उत्। अच। नि। सिञ्च। स्यन्दन्ताम्। कुल्याः। विऽसिताः। पुरस्तात्। घृतेन। द्यावापृथिवी इति। वि। उन्धि। सुऽप्रपानम्। भवतु। अघ्न्याभ्यः॥

अन्वय – महान्तं कोशम् उदच, निषिञ्च। कुल्याः विषिताः पुरस्तात् स्यन्दन्ताम्। घृतेन द्यावापृथिवी वि उन्धि। अघ्न्याभ्यः सु प्रपाणं भवतु।

व्याख्या – हे पर्जन्य तुम कोशस्थानीय जल भण्डार महान मेघ को ऊर्ध्व भाग में उद्वेलित करो। एवं और उसे वहाँ से नीचे की और क्षारित करो। अर्थात् वारिवर्षण कराओ। अप्रतिहत वेग्शालिनी नदियाँ पूर्वाभिमुख या पुरोभाग में प्रवाहित हो। जल द्वारा द्यावा पृथ्वी को आर्द्र करते हो। गायो के लिए पान योग्य सुंदर जल प्रचुर मात्रा में हो।

सरलार्थ – (हे पर्जन्यदेव) मेघ को ऊपर की और ले जाकर के जल को नीचे की और बरसाओ। नदियां बन्धन रहित होती हुई अच्छी प्रकार से बहे। जल से द्युलोक का तथा पृथिवीलोक का विशेषरूप से सेचन करो। गायो के लिए पीने योग्य जल को बरसाओ।

व्याकरण विमर्श

- **उदच** – उत्पूर्वक अच्–धातु से लोट मध्यमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।
- **निषिञ्च** – निपूर्वक सिञ्च्–धातु से लोट मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **स्यन्दन्ताम्** – स्यन्द्–धातु से लोट मध्यमपुरुषबहुवचन में।
- **उन्धि** – उद्–धातु से लोट मध्यमपुरुष एकवचन में।

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत् किंच पृथिव्यामधि॥९॥

पदपाठ – यत्। पर्जन्य। कनिक्रदत्। स्तनयन्। हंसि। दुःऽकृतः। प्रति। इदम्। विश्वम्। मोदते। यत्। किम्। च। पृथिव्याम्। अधि॥

अन्वय – पर्जन्य! यत् कनिक्रदत् स्तनयन् दुष्कृतः हंसि इदं विश्वं यत् किंच पृथिव्याम् अधि मोदते।

व्याख्या – हे पर्जन्य जब तुम गंभीर गर्जन करके पापिष्ठ मेघो को विदीर्ण करते हो, तब यह सम्पूर्ण विश्व और अधिष्ठाता चराचरात्मक पदार्थ ह्रष्ट होते है अर्थात वृष्टि होने से सम्पूर्ण जगत प्रसन्न होता है।

सरलार्थ – हे पर्जन्य देव जब आप तीव्र शब्द को करते हुए, गर्जना करते हुए दुष्कर्म करने वाले मनुष्यों को मारते हो उनका हनन करते हो तब जो ये पृथिवी पर रहते है वे आनन्दित होते है।

व्याकरण विमर्श

- **हंसि** – हन्–धातु से लट् मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **मोदते** – आत्मनेपद मुद्–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदः मनीषाम्॥१०॥

पदपाठ – अवर्षीः। वर्षम्। उत्। ऊँ इति। सु। गृभाय। अकः। धन्वानि। अतिऽएतवै। ऊँ इति। अजीजनः। ओषधीः। भोजनाय। कम्। उत। प्रऽजाभ्यः। अविदः। मनीषाम्॥

अन्वय – वर्षम् अवर्षी। उत् उ सु गृभाय। धन्वानि अति एतवै अकः। भोजनाय कम् ओषधीः अजीजनः उत प्रजाभ्यः मनीषाम् अविदः।

व्याख्या – इसने अत्यधिक वर्षा की। हे पर्जन्य तुम ने वर्षा की। अभी वृष्टि का संवरण करो। तुमने मरुभुमियों को सुगम बनाने के लिए जल युक्त किया है। मनुष्यों के भोग के लिए ओषधियों को उत्पन्न किया है। प्रजाओ के समीप से तुमने स्तुतिया प्राप्त की है। भोजन के लिए, धन के लिए अथवा भोग के लिए किसके लिए 'शिशिरं जीवनाय कम्' इतिवद् पादपूरण (निरु. १.१०)। और भी प्रजाओ के सुख के लिय स्तुति प्राप्त की।

सरलार्थ – (हे पर्जन्य देव) आप वर्षा करो। आप अब जल को पूर्णरूप से रोक लो। जलहीन प्रदेश का अतिक्रमण करके जाने योग्य हो। भोग करने के लिए औषधियों को उत्पन्न करो, तथा लोक से प्रशंसा को प्राप्त करो।

व्याकरण विमर्श

- **अवर्षीः** – वृष्–धातु से लुङ मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **गृभाय** – ग्रभ्–धातु से लट् अथवा लोट मध्यम पुरुष एकवचन में। कुछ का मत है की ग्रह–धातु से यह वैदिकरूप है।
- **एतवै** – इण्–धातु से तुमर्थक् तवैप्रत्यय करने पर।
- **अकः** – कृ–धातु से लुङ मध्यमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।

टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्न 22.2

1. ररीध्वम् यह रूप कैसे बना?
2. असुरः इसका निवर्चन लिखो।
3. दीया यह रूप कहाँ का है?
4. 'महान्तं कोशम्...' इस मन्त्र को पूर्ण करो।
5. गृभाय इसका क्या अर्थ है?
6. हंसि यह रूप कहाँ का है?

22.2 पर्जन्यसूक्त का सार

ऋग्वेद के पांचवे मण्डल में तेरासिवे सूक्त को पर्जन्यसूक्त कहते है। इस सूक्त के अत्रि ऋषि, पर्जन्य देवता, और जगति आदि छन्द है। इस सूक्त में सम्पूर्ण रूप से दश मन्त्र है। और उन मन्त्रों में पर्जन्यदेवता को उद्दिश्य करके अनेक प्रार्थना की गई है। इस सूक्त में प्रधान रूप से जलवर्षण के लिए प्रार्थना का विधान है। वैसे ही यहाँ पर्जन्यदेवता का माहात्म्य को प्रकट किया जाता है, वहाँ उसके भयङ्कर रूप का वर्णन किया जाता है, और इस पृथिवी पर उपयुक्त रूप से जलवर्षण के द्वारा धन धान्य से पूर्ण करने के लिए प्रार्थना करते है।

वहाँ आदि में सूक्ति के द्वारा कहा जाता है की उस महान् पर्जन्यदेव की स्तुति करनी चाहिए, और नमस्कार माध्यम से उसे प्रसन्न करना चाहिए। क्योकि वह ही जलवर्षा के द्वारा औषधियों में गर्भरूप से बीजो को धारण करते है। इसलिए वेद में कहते है –

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिःस्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम्॥ इति।

वह ही वृक्षों को खण्ड में विभक्त करता है, और भयङ्कर अस्त्र के द्वारा गर्जना करता हूँ इस संसार में पापि मनुष्यों का नाश करता है। रथ पर आरूढ स्वामी के समान जाता हुआ अपने दूत मेघो को प्रकट करता है। शेर के समान गर्जना करता हुआ सम्पूर्ण आकाश को मेघ से आच्छादित करता है। वह वायु को बहता है, बिजली को प्रकट करता है, और ओषधियों को उत्पन्न करता हुआ जल से पृथिवी पर स्थित प्राणियो की रक्षा करता है।

इसलिए यहाँ पर पर्जन्यदेव को उद्देश्य करके विविध प्रार्थना का उच्चारण करते हैं। जैसे –जिसकी आज्ञा से ओषधियाँ विविध रंग से युक्त होती हैं, वह पर्जन्य देव हमारी रक्षा करे। आकाश से हमारे लिए वर्षा को प्रदान करो, शक्तिशाली मेघों के द्वारा जलधारा को प्रवाहित करे, और जल सेचन करके पिता के समान हमारी रक्षा करे। महाजलपात्र से पृथिवी पर जल की वर्षा करे और

नदियाँ बन्धनरहित होकर आगे प्रवाहित होकर बहें, अवध्य गायों के लिए पर्याप्त जल हो। घृतरूप वर्षाजल से सम्पूर्ण पृथिवी का तथा आकाश का सेचन करो। इसलिए वेद में कहा गया है –

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः॥ इति।

और कहते है की – हे पर्जन्यदेव ! अत्यधिक गर्जना भयङ्कर शब्दो को करता हुआ जब आप पापी मनुष्य को मारते हो, तब सम्पूर्ण पृथिवी प्रसन्न होती है। और प्रार्थना करती है की जलवर्षा के अनन्तर, और औषधियों का उत्पादन करने के बाद, और हमारी स्तुति को सुनकर आप पूर्णरूप से स्थिर हों।

22.3 पर्जन्य देवता का स्वरूप

पर्जन्यसूक्त में पर्जन्यदेवता के स्वरूप को बताया गया है। पर्जन्य वृष्टि करने वाले देव हैं। इसका प्रधान वैशिष्ट्य यह है जल की वर्षा करते हैं, जलमय रथ से आरूढ होकर भ्रमण करते हैं। जलचर्म को लेकर वह जल को सीचता हैं। पर्जन्य शीघ्रवर्षा कराते है। जब यह आकाश को मेघयुक्त करता है, तब शेर के समान भीषण गर्जना करते हैं।

पर्जन्य सम्पूर्ण पिता और माता कहलाता है। वैसे ही वह वर्षा द्वारा पृथिवी पर जलरूपवीर्य को धारण करता हुआ प्राणियो के लिए अन्न आदि खाद्य पदार्थो को उत्पन्न करता है। इसलिए यह विश्व का पिता होता है। इसका प्रधान कार्य तो जल वर्षा ही करना है। वैसे भी अन्य भी कुछ कार्य उसके है। जैसे वह बुरे काल का नाश करता है, वज्रपात के द्वारा वृक्षों का नाश करता है, और भयङ्कर असुरो को भी अपने भयङ्कर अस्त्र के द्वारा मारता है। उसकी विशाल शक्ति के सामने सम्पूर्ण जगत् ही नतमस्तक होता है। पर्जन्य ही पृथिवी को सत्त्वयुक्त करता है, और औषधियों को अनेक पल्लव और फूल के द्वारा सुशोभित करते हैं।

इसके विविध देवों के साथ सम्पर्क हैं। वैसे मरुद् और वायुदेव के साथ इसके घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। ऋग्वेद में अग्निदेव के साथ इसकी स्तुति की गई है। वर्षा के देवता रूप इसका देवेन्द्र इन्द्र के साथ तुलना की गई है। पृथिवी इसकी पत्नी कहलाती है, परन्तु अन्य जगह वशा इनकी पत्नी है, ऐसा भी उल्लेख प्राप्त होता है। सोम पर्जन्यदेव का पुत्र है ऐसा प्रसिद्ध है।

यह पर्जन्यदेव भौतिक पर्जन्य का अर्थात् मेघ का मूर्तरूप है। प्राचीन ऋषियों ने वर्षा के तथा गर्जन शक्ति वाले मूर्तिरूप पर्जन्यदेव के दर्शन को प्राप्त करते है। और इस प्रकार पर्जन्यसूक्त में पर्जन्यदेव के अनेक महानता को जाना जाता है। जैसे –वह जलवर्षक औषधियों में गर्भरूप से बीज को धारणा करता है। वह ही वृक्षों को खण्ड के रूप में विभक्त करता है, और भयङ्कर अस्त्र के द्वारा गर्जना इस संसार में पापी मनुष्यों का नाश करते हैं। इसलिए वेद में कहते है –

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः॥ इति।

रथ पर आरूढ स्वामी के समान जाता हुआ अपने दूत मेघो को प्रकट करता है। शेर के समान गर्जना करते हुए सम्पूर्ण आकाश को मेघ से आच्छादित करता है। वह वायु को बहता है, बिजली को प्रकट करता है, औषधियों को उत्पन्न करते है और जल से पृथिवी के प्राणियो की रक्षा करता है। पर्जन्यदेव ही अन्न के उत्पादन करने में मूल कारण होता है। इसलिए गीता में कहा है –

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ इति।

पाठ सार (पर्जन्यसूक्त का)

इस सूक्त में ऋषि अत्रि कहते है की, हे स्तोता! बलवान पर्जन्य की गीतों के द्वारा स्तुति करो। जो पर्जन्यजल को शीघ्र बरसाता है गर्जना युक्त शब्द को करता है, औषधियों में गर्भस्थानीय शक्ति को जल के रूप में धारण करता है उसकी देव की स्तुति करो। पर्जन्य वृक्षों को काटता है और राक्षसों को मारता है। जब पर्जन्य बुरे करने वाले को पापी को मारता है, तब निर अपराधी भी डरकर पलायन कर जाता है। और जब पर्जन्य अन्तरिक्ष में वर्षा करता है, तब वह रथ में जुड़े हुए घोड़ो को तेजी से चलाता हुआ वर्षा के दूतो को अथवा मेघो को प्रकट करता है। वर्षा के लिए वायु बहती है, बिजली अच्छी प्रकार से चमकती है, औषधियाँ बढती हैं, अपने को अन्तरिक्ष में व्याप्त करता है, सभी भुवन के लिए भूमि अन्न को उत्पन्न करती है, जब पर्जन्य पृथिवी को जल से परिपूर्ण करता है। जिस पर्जन्य के कार्य से पृथिवी अन्न से परिपूर्ण होती है, जिसके व्रत से ही गाय आदि पशु गमन करते है, जिसके कार्यो से औषधियाँ अनेक रूप वाली होती है, हे पर्जन्य! वह अपने महान से हमको महान सुख प्रदान करे। इस प्रकार हे मरुत तुम अन्तरिक्ष से हमारी और अभिमुख करके आओ। हे पर्जन्य! तुम महान बढ़े हुए कोशस्थानीय मेघ का उद्गम है, वैसे करके हमारा सेचन करो, जिससे नदिया परिपूर्ण होकर प्रवाहित होकर बहती है। हे पर्जन्य! जब तुम बढकर बुरे कर्म को करने वाले को मेघ मारता है, तब यह विश्व प्रसन्न होता है, क्योंकि वर्षा ही सभी जगत के प्रीतिकारण के रूप में प्रसिद्ध है।

मनुमत्स्यकथा

शुक्लयजुर्वेद में एक ही ब्राह्मण विद्यमान है। उसका नाम शतपथब्राह्मण है। यह ब्राह्मणसाहित्य में सबसे विशाल है। शुक्लयजुर्वेद की दो शाखा है – काण्वशाखा और माध्यन्दिनशाखा। दोनों ही शाखा का यह ब्राह्मण प्राप्त होता है। माध्यन्दिनशाखा का ब्राह्मण के चौदह काण्डऔर सौ अध्याय है। इन शाखाओ में माध्यन्दिनशाखा बहुत ही प्रसिद्ध है। इसी ही शाखा के प्रथमकाण्ड के आठवे अध्याय में मनुमत्स्यकथा इस कथा को प्राप्त करता है। इस कथा में मनुमत्स्य की रमणीय कथा विद्यमान है। वह ही इस पाठ में प्रस्तुति करता है।

22.4 मूलपाठ मनुमत्स्यकथा

मनवे ह वै प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे॥ १॥

स हास्मै व्वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति कथं ते भृतिरिति॥२॥

स होवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यां माऽग्रे बिभरासि स यदा तामतिव्वर्धा अथ कर्षू खात्वा तस्यां मा बिभरासि स यदा तामतिव्वर्धाऽअथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति॥३॥

शश्वद्ध झषऽआस। स हि ज्येष्ठं व्वर्धतेऽथेतिथीं समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघ उत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति॥४॥

तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। स यतिथीं तत्समां परिदिदेष ततिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे स ऽऔघऽ उत्थिते नावमापेदे तं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव॥ ५॥

स होवाचापीपरं वै त्वा व्वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्वव्वसर्पासीति स ह तावत्तावदेवान्वव्वससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो हताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे॥६॥

22.4.1 मूलपाठ की व्याख्या (मनुमत्स्य कथा)

मनवे ह वै प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे॥ १॥

टिप्पणियाँ

व्याख्या – मनवे ह वै। यहाँ इडाब्राह्मण है। वहाँ ईडायां मानवीम् ईडां देवतां वक्तुं मानवी घृतपदी मैत्रावरुणी (तै०सं०२.६.७.६, तै०ब्रा० ३.४.८.१, २३.२, आ०श्रौ० १.७.७) इस वेद पद की व्याख्या करने में प्रवृत हुए।जल प्रलय भारतीय इतिहास में एक ऐसी घटना है जो मनु को देवो से विशिष्ट और मानवो की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया मनु भारत के इतिहास के आदि पुरुष है। मनवे वैवस्वताय तादर्थ्य अर्थ में चतुर्थी। हाथ आदि दोने के लिए। करण में कृत्य प्रत्यय करने पर। लाओ अब हाथ धोने के लिए जल को लाया। उस मनु के हाथ धोते समय मछली उसके हाथ को प्राप्त हुई। भाविनी पृथ्वी की सिद्धि के लिए देवता ही मत्स्यरूप से आये।।१।।

सरलार्थ– प्रातः मनु के समीप हाथ थोने के लिए जल लाये थे। जब मनु हाथ आदि साफ कर रहे थे, तब एक मछली उनके हाथ पर गिरी।

व्याकरण

- **अवनेग्यम्** – अवपूर्वक निज्–धातु से ण्यत्प्रत्यय करने पर।
- **अवनेनिजानस्य** – अवपूर्वक निज्–धातु से शानच करने पर।
- **आजह्रुः** – आङ्पूर्वक ह्र–धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **आपेदे** – आङ्पूर्वकपद्–धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

स हास्मै व्वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति कथं ते भृतिरिति॥२॥

व्याख्या – वह मछली मनु से कहती है। किसी प्रकार तुम मेरा भरण पोषण करो। किसलिए पालन करू, पाल रक्षण धातु में (धा १०.७५) अथवा तुम्हारी रक्षा करू। किससे वह भयहेतु में प्रश्न। वहतीति औघः जलसङ्घात। वह यह भारतवर्ष निवासी सभी प्रजानिःशेषदेशान्तर को प्राप्त करने के लिए उस भय हेतु से तुम्हारा पालन करुँगी। यह मछली का वचन है। कैसे यह मनु के प्रश्न। तुम्हारा भरण पोषण कैसे करते है।। २।।

सरलार्थ – वह मछली उनसे कहती है कि –आप मेरा पालन करो। मैं तुम्हारी रक्षा करुँगी। तब मनु ने कहा की तुम कैसे मेरी रक्षा करोगी। तब मछली ने कहा की विशालजल प्रलय के समय समस्त प्राणिमण्डल जल में लीन हो जायेगा। उससे तुम्हारी मैं रक्षा करुँगी।

व्याकरण

- **उवाद** – वद्–धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **निर्वोढा** – निर् पूर्वक वह–धातु से लुट एकवचन में वैदिक प्रयोग है।

स॒ होवाच। याव॒द्वै क्षुल्लका भ॒वामो बह्वी॒ वै नस्ता॒वन्नाष्ट्रा भवत्युत म॒त्स्य एव म॒त्स्यं गिलति कु॒म्भ्यां मा॒ऽग्रे बिभरासि स॒ यदा ता॒मतिव्वर्धा अ॒थ कर्षू॑ खात्वा त॒स्यां मा बिभरासि स॒ यदा ता॒मतिव्व॒र्धाऽअथ मा समुद्र॒मभ्यवहरासि त॒र्हि वा अतिनाष्ट्रो भविता॒स्मीति॥३॥

व्याख्या – क्षुद्रक कम। नाश यह। गृ निगरणे (धा० ६.१२९)। निगलना। भरण करो। अध्येषणा में लिङर्थे लेट् (३.४.७)। भरण पोषण करने के लिए। मैं ही उपासको से अभिव्यवृत होती हूँ जल आदि के द्वारा इस प्रकार व्याख्या की। अतिवर्द्धै अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त होने पर लिङर्थे लेट्(३.४.७) इससे जब योग में लेट्। कर्षू:- छोटा तालाब। "अतीतो नाष्ट्रान् नाशयितघ्न्" इति अतिनाष्ट्र:।। ३।।

सरलार्थ – उसने (मछली ने) कहा –जब तक हम छोटे है तब तक हमको बड़ा डर लगता है। (विशाल) मछली हमको निगल न जाए। सबसे पहले मुझे घड़े में रखो। जब उसका अतिक्रमण करुँगी तो, तब तालाब में मेरी रक्षा करना। जब उसका भी अतिक्रमण करुँगी तो मुझे समुद्र के प्रति ले जाना। तभी मैं विनाश का अतिक्रमण करुँगी।

व्याकरण

- **उवाच** – वच्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **नाष्ट्रा:** – नश्-धातु से ष्ट्रन्प्रत्यय करने पर बहुवचन में।
- **अतिवर्द्धै** – अतिपूर्वक वृध्-धातु से लेट उत्तमपुरुष एकवचन में।
- **अभ्यवहरासि** – अभिपूर्वक अवपूर्वक हृधातु से लेट मध्यमपुरुष एकवचन में।

श॒श्वद्ध झष॒ऽआस। स हि ज्येष्ठं व्व॒र्धते॒ऽथेतिथीं स॒मां त॒दौघ॒ आगन्ता त॒न्मा नाव॒मुपकल्प्योपासासै स॒ औघ॒ उत्थिते॒ नाव॒मापद्यासै त॒तस्त्वा पारयिता॒स्मीति॥४॥

व्याख्या – शश्व शब्द यहाँ पर सामर्थ्य होने से शीघ्र प्रवचन में। छोटी मछली जल्दी ही विशाल मछली बन गई। अथ कैसे वह विशाल मछली बनी। निश्चय रूप से वह विशाल रूप में वृद्धि को प्राप्त हुई। सभी ही जलचर अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त होते है, वह तो विशाल मछलियों से भी अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हुई यह श्रुतिवचन है। अथ इतिथीम् यह मत्स्य का वचन। इसका भी समुद्र के लिए व्यवहार किया जाता है। इतिथीम् यह अभिनय, उससे संख्येयां समान देखा। इतना दश को अथवा द्वादश को पूर्ण करने पर इतिथी। यह इशादेशश्छन्द में होने से, टित्त्व से ङीप् होने पर। इयत्यस्तिथयो यस्यां सा इतिथीति कुछ कोषो में। उनमे भी इयतिथीं यावतिथीं तावतिथीम् यह प्राप्त होने पर छान्दस में य शब्द व शब्द का लोप। समा संवत्सर: उन समा को अर्थात संवत्सर में यह अर्थ है। वह स यह लिङ्ग व्यत्यय है। वह पूर्व में कहा गया जल प्रलय जब आएगा तब नाव की रचना करके (मा) मुझे स्मरण करना। और जल प्रलय के बढ़ने पर उस नाव को तुम जल में उतार देना यह अर्थ है।।४।।

टिप्पणियाँ

सरलार्थ – वह मछली शीघ्र ही विशाल मछली बन गई। वह मछलियों में सबसे विशाल मछली हुई। उसके बाद उसने कहा की –जिस दिन जल प्रलय होगा तब नौका का निर्माण करके प्रतीक्षा करोगे। जल प्रलय के समय नौका में स्थिर होकर के प्रतीक्षा करो। तब मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी।

व्याकरण

- **उपासासै** – उपपूर्वक अस्-धातु से लेट मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **आपद्यासै** – आङ्पूर्वक पद्-धातु से लेट मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **भृतिः** – भृधातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में।

तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। स यतिथीं तत्समां परिदिदेष ततिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे स ऽऔघऽ उत्थिते नावमापेदे तं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव॥ ५॥

व्याख्या – जितने दिन अथवा तिथि नाव आदि की रचना करने के लिए, नाव आदि की रचना कर और मछली को स्मरण किया। और जल के उठने पर नाव में आरूढ हुए उस मनु को वह मछली उनको समुद्र से हिमालय की और लेकर जाने लगी। जल प्रलय आया। उस मछली के शृङ्ग पर उस निष्पादित नाव को पाश से (प्रतिमुमोच) बाँध लिया। उस पाश के साथ मछली ने इनको लेकर हिमालय को प्राप्त हुई (अतिदुद्राव)॥ ५॥

सरलार्थ – उस मछली का वैसे ही पालन करके मनु उसको लेकर के समुद्र को गए। वह मछली जिस दिन नौका निर्माण करने के लिए कहा उस दिन ही मनु ने नौका का निर्माण किया। उस जल प्रलय के समय पर वे नौका में चढ़ गए। वह मछली तैरती हुई उनके समीप आई। और उसके सींग के साथ नौका की रस्सी का बन्धन किया। उसके बाद उसको लेकर के उत्तर पर्वत (भाष्य के मत में हिमालय को) की और गई।

व्याकरण

- **अभ्यवजहार** – अभिपूर्वक अव पूर्वक हृधातु से लिट् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- **परिदिदेश** – परिपूर्वक दिश्-धातु से लिट् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- **उपकल्प्य** – उपपूर्वक कप्प्-धातु से ल्यप् करने पर।
- **प्रतिमुमोच** – प्रतिपूर्वक मुच्-धातु से लिट् प्रथम पुरुष एकवचन में।

स होवाचापीपरं वै त्वा व्वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो हताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे॥६॥

व्याख्या - उसने कहा। मत्स्यवचन-इस जल प्रलय से मैंने तुम्हारी रक्षा की है। अब तुम यहाँ वृक्ष में नाव को बांध दो। और कुछ काल बाद -पर्वत पर जो जल चढ़ गया है धीरे -धीरे वह नीचे की और उतरेगा तब तक तुम यही पर रहो। यह मेरा आदेश है। जैसे-जैसे जल नीचे की और लौटे वैसे ही तुम नीचे की और उतरना। वैसे-वैसे तुम भी नीचे की और लौटना। वह मनु समय के अनुसार उस उस काल में नीचे की और लौटने लगे (अन्तवससर्प) नीचे की और सर्पण करने लगे। और जिस स्थान पर मनु सबसे पहले उतरे उस हिमालय के स्थान को आज भी मानसरोवर के नाम से जाना जाता है। अवसृप्तोनेनेत्यवसर्पणम्।। ६।।

सरलार्थः - उस (मछली) ने कहा - मैंने तुम्हे इस जल प्रलय से पार कर दिया है। (अब) नौका को वृक्ष से साथ बाँध लो। पर्वत में विद्यमान (तुम्हारी) नौका समुद्रजल से छिन्न नही होगी। जब नौका जल के प्रति जाए, तब तुम भी वैसे ही नीचे की और गमन करना। तब (मनु) ऊपर से नीचे आये। उत्तरपर्वत का वह स्थान अवतरणमार्ग (अवसर्पण) इस नाम से प्रसिद्ध है। उस जल प्रलय से समस्त प्राणि विनाश को प्राप्त हुए, केवल मनु ही वहाँ शेष बचे थे।

व्याकरण

- **अपीपरम्** - पृ-धातु से लुङ उत्तमपुरुष एकवचन में।
- **निरुवाह** - निर् पूर्वक वह्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **परिशिशिषे** - परिपूर्वक शिष्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **समवायात्** - सम्पूर्वक अवपूर्वक इधातु से विधिलिङ प्रथमपुरुष एकवचन में।

पाठगत प्रश्न 22.3

1. किस समय मनु के हाथ आदि धोने के लिए जल लेकर के आये?
2. मछली मनु के किस अंग पर गिरी?
3. आजह्रुः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
4. अवनेग्यम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
5. निर्वोढा यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
6. गृधातु किस अर्थ में होती है?
7. भृतिः इसका क्या अर्थ है?
8. नाष्ट्राः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
9. अभ्यवहरासि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

टिप्पणियाँ

10. शश्वद्ध झष... इस मन्त्र के अंश में शश्वच्छब्द किस प्रकार का है?
11. परिदिदेश यह किस लकार में बनता है?
12. परिमुमोच यह किस लकार का रूप है?
13. अपीपरम् यहा पर क्या धातु है?
14. किसके साथ नौका को रस्सी से बाँधा?
15. उपासासै यह रूप कैसे हुआ?

22.5 मनुमत्स्य कथा

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। इस प्रकार वेद के प्रथम भाग देवस्तुतिमूलक मन्त्रभाग है। द्वितीयभाग में ब्राह्मण है। प्रत्येक वेदो के पृथक् पृथक् ब्राह्मण प्राप्त होते है। कृष्णयजुर्वेद के ब्राह्मण का नाम तैत्तिरीयब्राह्मण है। शुक्लयजुर्वेद के ब्राह्मण का नाम शतपथब्राह्मण है। इस शतपथब्राह्मण में मनुमत्स्य कथा प्राप्त होती है।

कथासार – कभी प्रातः काल हाथ धोने के लिए महर्षि मनु के लिए उनके सेवक जल को लेकर आये। तब हाथ धोते समय कोई छोटी मछली उनके हाथ पर गिरी। वह मछली मनु को कहती है की अब मेरे पालन करो, बाद में मैं तुम्हारा पालन करुँगी। ''कैसे तुम मेरा पालन करोगी'' ऐसा मनु के पूछने पर उस मछली ने कहा है की भविष्य में महा जल प्रलय होगा। पृथिवी की सभी ये प्रजा देशान्तर को प्राप्त होंगे। तब उस जल से मैं तुम्हे पार उतारूंगी। तब कैसे आप मछली का भरण करूंगा, ऐसा मनु के द्वारा पूछा गया। उत्तररूप से मछली ने कहा की जब तक हम छोटी रहती है तब तक हमारे ऊपर विपत्ति होती है। बड़ी मछलियाँ ही छोटी मछली को निगल लेती है। इसलिए प्रारम्भ में मुझे एक घड़े में रखकर मेरा पालन करो, उसके बाद जब मैं बड़ी होऊ तो गड्ढा खोदकर उसमे मेरा पालन करना। उस सरोवर में मेरा पालन करो। उसके बाद जब मैं और बड़ी हो जाऊ तो मुझे समुद्र में लेकर के चले जाना। उसके द्वारा जैसा कहा गया, मनु ने वैसे ही कार्य किया। शीघ्र ही वह मछली एक बड़ी मछली के समान हो गई। मछली ने मनु को कहा की शीघ्र ही जल प्रलय होने वाला है। उससे पहले एक नाव का निर्माण करके मेरी प्रतीक्षा करोगे। जल के ऊठने पर आप नाव में आरोहण करोगे। मैं आपको पार लेकर के जाऊँगी। पूरी बात सुनकर मनु उस मछली को समुद्र में लेकर के गए। समय पर मनु ने एक नाव का निर्माण करके समुद्रतट पर मछली की प्रतीक्षा करते हुए बैठा गये। जल के उठने पर मनु नाव में आरूढ हुए। वह मछली नौका को रस्सी से बांधकर उत्तर दिशा पर्वत की ओर चल दी। मछली ने मनु को कहा की ''अब आप विपत्ति से पार पा चुके हो। यहाँ जल की सीमा का अतिक्रर्मण करके किसी वृक्ष में अपनी नाव को बाँध लीजिए। जैसे जल नीचे की और उतरे उसी प्रकार आप भी उसके अनुरूप ही नीचे की ओर उतरें।'' इति। मनु भी उसी प्रकार नीचे की ओर उतरे। उस जल से सभी प्रजा निःशेष रूप से जलमग्न हो गई थी, मनु ही जीवित रहे और उसी मनु से मनुष्यों की उत्पत्ति हुई, ऐसे मनुष्य अथवा मानव कहलाते है।

तात्पर्यम् – आख्यानब्राह्मणसाहित्य को समृद्ध करते है। उनमे शतपथब्राह्मण के अन्तर्गत मनुमत्स्य कथा नाम का आख्यान अन्यतम है। यहाँ युग के अन्त में सृष्टि को ध्वंस करते हैं, पुनः प्राणियों की सृष्टि के विवरण प्राप्त होता है। यद्यपि बहुत जगह पुराण आदि में इस जल प्रलय की कथा प्राप्त होती है, फिर भी कुछ प्राणियों को जल प्रलय का पूर्वाभास हुआ, नाव का निर्माण किया, पाश से नाव को बन्धन किया, प्लावन के बाद सृष्टि इत्यादिविषयों का एक ही आख्यान में समावेश किया गया है, मनुमत्स्यकथाअन्यत्र नही दिखाई देता है। और यह मछली भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार इत्यादि पुराण आदि में प्रसिद्ध है। प्लावन के बाद मनु ने जिस स्थान पर शरण ली वह आज भी मानसरोवर कहलाता है।

पाठ सार (मनुमत्स्य कथा)

मनुमत्स्य कथा में मनु मछली की कथा को प्रतिपादित किया गया है। वहाँ हाथ आदि साफ करते समय एक मछली उनके हाथ पर गिरी। वह मछली अपनी से बड़ी मछलियों से अपनी रक्षा के लिए मनु से प्रार्थना करने लगी। वह मछली प्रतिदिन बढती थी। मनु ने उसकी रक्षा की। मछली ने भी बड़े जल प्रलय के समय मनु को कभी रक्षा के लिए कहा। इस प्रकार बड़े जल प्रलय होने पर वह मछली आई। मनु ने भी एक नौका का निर्माण करके स्वयं को उसमे स्थापित करके मछली के सींगे से बान्धकर उत्तर पर्वत की ओर गए। इस प्रकार संक्षेप से वर्णन किया है।

पाठांत प्रश्न

(पर्जन्यसूक्त में)

1. पर्जन्यसूक्त का सार संक्षेप से लिखो।
2. अच्छा वद तवसं ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
3. वि वृक्षान् हन्त्युत ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
4. रथीव कशयाश्वाँ ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
5. प्र वाता वान्ति ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
6. यस्य व्रते पृथिवी ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
7. अभि क्रन्द स्तनय ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
8. महान्तं कोशमुदचा ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
9. यत्पर्जन्य कनिक्रदत ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
10. अवर्षीर्वर्षमुदु ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

(मनुमत्स्य कथा में)

11. मनुमत्स्यकथा का सार लिखो।
12. स होवाच... इस कथा अंश की व्याख्या करो।
13. शश्वद्ध झषआस... इस कथा अंश की व्याख्या करो।
14. तमेव भृत्वा... इस कथा अंश की व्याख्या करो।
15. स होवाचापीपरम्... इसकी व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

22.1

1. ऋग्वेद में।
2. अत्रि।
3. पजर्न्य।
4. विपूर्वक वस्-धातु से मध्यमपुरुष एकवचन का यह रूप है।
5. क्रन्द्-धातु से यङ् लुङन्त में प्रथमापुरुष एकवचन का यह रूप है।
6. वृक्षों को गिराता है।
7. ईष्धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है।
8. विभाय-भीधातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है।

22.2

1. आत्मनेपद रा-धातु से लट् मध्यमपुरुषबहुवचन में।
2. असून् प्राणान् राति ददाति इति असुरः।
3. दीया- दी-धातु से लोट मध्यमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।
4. महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
   घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः।।८।।
5. धारण करता है।
6. हंसि- हन्-धातु से लट् मध्यमपुरुष एकवचन में।

22.3

1. प्रात।
2. हाथ में।
3. आङ्पूर्वक हृ-धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
4. अवपूर्वक निज्-धातु से ण्यत्प्रत्यय करने पर।
5. निर्पूर्वक वह्-धातु से लुट एकवचन में वैदिक प्रयोग है।
6. निगलने अर्थ में।
7. भरण पोषण करना।
8. नश्-धातु से ष्ट्रन्प्रत्यय करने पर बहुवचन में।
9. अभिपूर्वक अवपूर्वक हृ-धातु से लेट मध्यमपुरुष एकवचन में।
10. सामर्थ्य से क्षिप्रवचनः।
11. लिट्।
12. लिट्।
13. पृधातु।
14. वृक्ष से।
15. उपपूर्वक अस्-धातु से लेट मध्यमपुरुष एकवचन में।

॥ बाईसवाँ पाठ समाप्त ॥

टिप्पणियाँ

23

शिवसङ्कल्पसूक्त और प्रजापतिसूक्त

वेद ज्ञान के विशाल पर्वत हैं। वेद ज्ञानसागर भी हैं। जैसे विशाल पर्वत से अनेक नदियाँ प्रवाहित होती है और सीधी और टेढ़ी नीचे की और जनकल्याण के लिए प्रवाहित होती है तथा अन्त में समुद्र को प्राप्त होती है। वैसे ही वेदरूप ज्ञान के विशाल पर्वत से अनेक स्रोत जनकल्याण के लिए प्रवाहित होते हैं। भारत के सभी ज्ञान के स्रोत वेद से ही प्रवाहित होते हैं, ऐसा सभी मनुष्य जानते है। जैसे पर्वत से आया हुआ जल है, अन्य भूमि पर वर्षा से गिरा हुआ जल भी उसी में प्राप्त होता है, और स्रोत भी विशाल होते है। वैसे ही वेद से आये ज्ञान स्रोत में अनेक प्रवाह मिल जाते हैं। इसलिए वेद से ही विशाल वाङ्मय दिखाई देता है। यदि किन्ही शाखाओं में परस्पर विरोध होता है तो वेद के समर्थन मत को ही प्रमाणिक मानते है। इसलिए वेद ज्ञान हमेशा आवश्यक है। इसलिए ही यह सूक्त अध्ययन को लिखा गया है।

इस पाठ में शिवसंकल्पसूक्त और प्रजापतिसूक्त पाठ्यरूप से विद्यमान है। पूर्व भाग में **शिवसंकल्पसूक्त** विद्यमान है और उत्तर भाग में **प्रजापतिसूक्त** रखा गया है।

'मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम्'। मन से ही अप्रमेय कोई ध्रुव वस्तुओ का दर्शन कर सकते है। मन के शुद्ध होने पर सभी वस्तुओ का ज्ञान होता है। उस मन को शुद्ध करने के लिए इस सूक्त में अनेक बार कहा गया है – 'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु' इति। शुक्लयजुर्वेद में चौतींसवें अध्याय में यह शिवसङ्कल्पसूक्त प्राप्त होता है। यहाँ ऋषि आदित्ययाज्ञवल्क्य, त्रिष्टुप् छन्द, और मन देवता है। यहाँ ऋषि अपने मन को कल्याणकारी सङ्कल्प के साथ संयोग करके कहता है। मनोविज्ञान में मन की एक आवश्यक तत्त्व के रूप में कल्पना की गई है। मन के द्वारा ही सभी कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियाँ अपने विषय को ग्रहण करने में समर्थ होती हैं। उससे भारतीय दर्शनो में मन उभय इन्द्रिय कहलाता है। इस प्रकार इस पाठ में हम छः मन्त्रों को पढेंगे। इन मन्त्रों को आधार करके आचार्य महीधर भाष्यकार ने भाष्य की रचना की। उस आचार्य महीधरभाष्य को कहते है। उसको और भी सरल करके प्रस्तुत किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहितापाठ पढ़ पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों के पदपाठ को जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों की व्याख्या कर पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों के सरलार्थ को जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण के पदों को समझ पाने में;
- सूक्त का तात्पर्य और सूक्त के तत्त्व को समझ पाने में;
- सूक्त का अर्थ जानकार सूक्त की महिमा को समझ पाने में;
- वैदिक शब्दो को जान पाने में;
- वैदिक लौकिक के भेद को समझ पाने में;
- वैदिक रूपों को जान पाने में।

23.1 मूलपाठ शिवसङ्कल्पसूक्त

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति॥
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु॥१॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्त प्रजानां तन्मे मन शिवसंङ्कल्पमस्तु॥२॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥३॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्य-त्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु॥४॥

यस्मिन्नृच सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्त सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या-न्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु॥६॥

टिप्पणियाँ

23.1.1 मूलपाठ की व्याख्या

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।१।।

पदपाठ – यत्। जाग्रतः। दूरम्। उदैतीत्युत्-ऐति। दैवम्। तत्। ॐ इत्युँ। सुप्तस्य। तथा। एव। एति दूरङ्गममिति दूरम्-गमम्। ज्योतिषाम्। ज्योतिः। एकम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव-सङ्कल्पम्। अस्तु।।१।।

अन्वय – जाग्रतः यत् दैवं (मनः) दूरम् उत् एति, सुप्तस्य तत् उ तथा एव एति। दूरङ्गमं ज्योतिषाम् एकःज्योतिः मे तत् मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

व्याख्या – ऋषि कहते हैं– वह मेरा मन शिवसङ्कल्प हो। शिव कल्याणकारी धर्म विषय सङ्कल्प जिस प्रकार का है उस प्रकार का वह मेरा मन हो। मेरा मन हमेशा धर्म में ही हो कभी भी पापी न बने। तो क्या बने जो मन जागे हुए पुरुष का दूर से भी दूर चला जाता है। चक्षु आदि वस्तुओं को ग्रहण कराता है। मन के द्वारा यह सभी कुछ देखा जाता है। और भी। यदः स्थान में उसका पर्यायवाची शब्द उकार है। और जो मन सुप्तावस्था में भी उसी प्रकार वापस आता है जिस प्रकार वह गया था। और जो दूर से भी दूरात् गच्छतीति दूरङ्गमं खश्प्रत्यय है। अतीत अनागत–वर्तमान–में प्रयोग करने वाले पदार्थो का ग्राहक है। और जो मन ज्योतिप्रकाशको का श्रोत्र आदि इन्द्रियों का एक ही ज्योति प्रकाशक प्रवर्तक है। श्रोत्र आदि इन्द्रियों को अपने विषय में लगाता है। आत्मा मन को प्रेरित करता है, मन इन्द्रिय से इन्द्रिय को, अर्थ से न्याय युक्त मन सम्बन्ध को उन दोनों को प्रवृत करता है। उस प्रकार का मेरा मन शान्तसङ्कल्प वाला हो।

सरलार्थ – जब कोई पुरुष जागृत अवस्था में रहता है तब उसका दिव्य मन जिस प्रकार से दूर जाता है, वह ही जब सुप्तावस्था में वैसे ही उसी प्रकार से पुन आता है। इस प्रकार जो दूर जाने वाला और ज्योतियों में अद्वितीय मेरा मन वह शुभसङ्कल्प से युक्त हो।

व्याकरण

- **उदैति** – उत्पूर्वक एण–धातु से लट प्रथमपुरुष एकवचन में उदैति रूप बनता है।
- **दैवम्** – देवशब्द से अण्प्रत्ययकरने पर प्रथमा एकवचन में दैवम् रूप बनता है।
- **दूरङ्गमम्** – दूरं गच्छतीति विग्रह में दूरपूर्वकगम्–धातु से खश्प्रत्यय करने पर दूरङ्गमम् रूप बनता है।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्त प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।२।।

पदपाठ – येन। कर्माणि। अपसः। मनीषिणः। यज्ञे। कृण्वन्ति। विदथेषु। धीराः।। यत्। अपूर्वम्। यक्षम्। अन्तरित्यन्तः। प्रजानामिति प्र-जानाम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव-सङ्कल्पम्। अस्तु।।२।।

अन्वय – येन अपसः मनीषिणः धीराः यज्ञे विदथेषु कर्माणि कृण्वन्ति यत् प्रजानाम् अन्तः अपूर्व यक्षं, तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

व्याख्या – मनीषियों मेधावियों को यज्ञ में जिस मन के द्वारा सत कर्म करते है, 'कृ करणे' स्वादि है। मन स्वास्थ्य के विना कार्य में प्रवृत्त करता है। तेषु सत्सु। विदथेषु सत्सु विद्यन्ते ज्ञायन्ते तानि विदथानि तेषु। विदधातु से औणादिक थप्रत्यय। यज्ञसम्बन्धिहवि आदि पदार्थो के ज्ञान में उसका यह अर्थ है। किस प्रकार के मनीषियों को। अपसः अप इति कर्मनाम (निघ० २.१.१)। कार्यो को करने की प्रवृति है जिसमे वे अपस्वन कर्मवन्तश्अस्मायामेधास्रजो विनिः '(पा०सू० ५.२.१२१) इससे विन्प्रत्यय विन्मतोर्लुक्' (पा०सू० ५.३.६५) इससे इष्ठ अभाव में भी छन्द में विनो लुक्। हमेशा कर्मनिष्ठ यह अर्थ है। वैसे धीरा धीमन्तमेधा विद्यमान है जिसमे कर्मण्यण् (पा०सू० ३.२.१)। और हमारा मन सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला और जो मन इन्द्रिय से पूर्व उसकी रचना हुई। अथवा अपूर्व अनपर अबाह्य ऐसा कहने पर अपूर्व आत्मरूप यह अर्थ है। और जो योग यज्ञ में पूजनीय होकर के एकीभूत हो रहा हो। यजते औणादिक सन्प्रत्यय है। और जो प्राणिमात्र के हृदय में रहता है, अन्य इन्द्रिया तो बाहरी है, मनतो आन्तरिक इन्द्रिय है यह अर्थ है। वह उस स्वरूप वाला मेरा मन धर्मेष्ट होवे।

सरलार्थ – कर्मनिष्ठ मेधावी पुरुष जिस मन के द्वारा यज्ञ में तथा यज्ञ के विधिविधान आदि में कार्य करते हैं और जो प्राणियों के अन्तर्भाग में रहकर के पूज्य होता है। वह मेरा मन शुभसङ्कल्प वाला हो।

व्याकरण

- **कर्माणि** – कर्मशब्द का द्वितीयाबहुवचन में।
- **कृण्वन्ति** – कृ-धातु से लट प्रथमपुरुष एकवचन में रूप, कुर्वन्ति इसका वैदिकप्रयोग है।
- **अपसः** – अपस् + विन्।
- **यज्ञम्** – यज्-धातु से घञ्प्रत्यय करने पर यज्ञम् रूप बनता है।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥३॥

पदपाठ – यत्। प्रज्ञानमिति प्र-ज्ञानम्। उत। चेतः। धृतिः। च। यत्। ज्योतिः। अन्तः। अमृतम्। प्रजास्विति प्र-जासु यस्मात्। न। ऋते। किम्। चन। कर्म। क्रियते। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव- सङ्कल्पम्। अस्तु॥३॥

अन्वय – यत् प्रज्ञानम् उत चेतः धृतिः च यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः। यस्मात् ऋते किञ्चन कर्म न क्रियते, तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

व्याख्या – जो मन प्रज्ञा को विशेष करके ज्ञान का अच्छी प्रकार से बोध कराता है वह प्रज्ञानम् है। 'करणाधिकरणयोश्च' (पा०सू० ३.३.११७) इससे करण में ल्युट् प्रत्यय किया। और भी जो

टिप्पणियाँ

मनस्मृति का साधक है। 'चिती संज्ञाने' इस ण्यन्तहोने से असुन्प्रत्यय हुआ। सामान्य विशेष ज्ञान का बोध कराने वाला यह अर्थ है। और जो मन धैर्य स्वरूप है। मन में ही धैर्य की उत्पति होने से मन में कार्य कारण के अभेद होने से धैर्य को धारण करता है। और जो मन प्रजाओं में, मनुष्यों में अन्तरवर्तमान होने से सभी इन्द्रियों का ज्योति प्रकाशक है। कहाँ होने पर आदर के लिए पुनः कहते है। 'अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते' (निरु० १.४२) ऐसा यास्क ने कहा। और आत्मरूप होने से आमरण दरमि होने से विनाश रहित है। जिस मन के बिना मनुष्य कोई भी कार्य नही कर सकते है। सभी कार्यो को करने से पहले प्राणियों का मन पूर्वप्रवृत्त होता है, मन के स्वास्थ्य के विना कार्यो में प्रवृत नही होता है यह अर्थ है। अन्यारादितरर्ते (पा०सू० २.३.२९) इत्यादि से यस्माद इसका ऋत के योग में पञ्चमी। वह मेरा मन कल्याणकारी हो।

सरलार्थ - जो मन सामान्य और विशेषज्ञान का बोध कराता है। जो धैर्यस्वरूप विद्यमान है। और जो प्राणियों के अन्तर्भाग में विद्यमान सभी इन्द्रियों का प्रकाशक है। और जो विनाश रहित है। जिसके बिना कोई भी कार्य नही किया जा सकता है। इस प्रकार का जो मेरा मन है वह शुभ सङ्कल्प वाला हो।

व्याकरण

- **प्रज्ञानम्** - प्रकर्षेण ज्ञायते येन तत् प्रज्ञानम्। प्रपूर्वक ज्ञाधातु से ल्युट्प्रत्यय करने पर (अन्) प्रज्ञानम् रूप बनता है।
- **चेतः** - चिद्-धातु से णिच असुन्प्रत्यय करने पर चेतः रूप बनता है।
- **धृतिः** - धृ-धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर धृतिः रूप बनता है।
- **क्रियते** - कृ-धातु से कर्म लट प्रथमपुरुष एकवचन में क्रियते रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 23.1

1. शिवसङ्कल्पसूक्त का ऋषि कौन है, छन्द क्या, और देवता कौन है?
2. शिवसङ्कल्प यहाँ पर शिव शब्द का क्या अर्थ है?
3. दूरङ्गमम् यहाँ पर प्रत्यय क्या है?
4. आत्मा किसके साथ जुडती है?
5. कृण्वन्ति इसका लौकिक रूप क्या है?
6. अपसः यहाँ पर इष्ठ के अभाव होने पर भी विन का लुक् कैसे हुआ?

7. प्रज्ञानम् इसका क्या अर्थ है?

8. धृति इसका क्या अर्थ है?

9. यस्मान्न ऋते इस मन्त्र के अंश में किस सूत्र से पञ्चमी होती है?

10. प्रज्ञानम् यहाँ पर ल्युट् किस अर्थ में है?

23.1.2 मूलपाठ की व्याख्या

येनेदं भूतं भुवनं भविष्य-त्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥४॥

पदपाठ - येन। इदम्। भूतम्। भुवनम्। भविष्यत्। परिगृहीतमिति परिगृहीतम्। अमृतेन। सर्वम्॥ येन। यज्ञः। तायते। सप्तहोतेति सप्त-होता। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव-सङ्कल्पम्। अस्तु॥४॥

अन्वय - येन अमृतेन (मनसा) इदं भूतं भूवनं भविष्यत् सर्वं परिगृहीतम्। येन सप्तहोता यज्ञः तायते तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

व्याख्या - जिस मन से इसके चारो और विद्यमान वस्तुओं का ज्ञान है। यहाँ क्या हुआ। भूतकालसम्बन्धि वस्तुओं का। भुवन वर्तमान काल को कहते है। भू से क्युप्रत्यय करने पर वर्तमानकालसंबन्धि है। भविष्यत् 'लृटः सद्वा' (पा०सू० ३.३.१४) इससे शतृप्रत्यय करने पर 'तौ सत्' (पा०सू० ३.२.१२७) इसके कहने पर त्रिकालसंबद्ध वस्तुओं में मन प्रवृत होता है यह अर्थ है। श्रोत्र आदि के द्वारा तो प्रत्यक्ष ही ग्रहण करता है। यह किस प्रकार के ज्ञान को ग्रहण करता है। अमृत शाश्वत होने से। मुक्तिपर्यन्त श्रोत्र आदि का तो नाश होता है परन्तु मन तो अमर है। और जिस मन के द्वारा यज्ञ अग्निष्टोम आदि को आगे विस्तृत करते है। 'तनोतेर्यकि' (पा०सू० ६.४.४४) इससे आकार। किस प्रकार का यज्ञ। सप्तहोता सात होता के द्वारा देवो का आह्वान करते है, अर्थात होतृमैत्रवरुण आदि सात होता है। अग्निष्टोम में सात होता है। वह मेरा मन शुभ सकल्प वाला हो।

सरलार्थ - जिससे विनाश रहित धर्म वाले संसार का भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यत्काल के सभी पदार्थ जाने जाते है। जिसके द्वारा सात होता विशिष्ट अग्निष्टोम आदि यज्ञ का सम्पादन किया जाता है। वह मेरा मन शुभसङ्कल्प वाला हो।

व्याकरण

- **भुवनम्** - भूधातु से क्युप्रत्यय करने पर भुवनम् रूप बनता है।
- **तायते** - तन्-धातु से कर्म लट प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **भविष्यत्** - भूधातु से लृट शतृप्रत्यय करने पर भविष्यत् रूप बनता है।

- **सप्तहोता** – सप्त होतारः यस्मिन् स सप्तहोता। और वे होता, पोता, मैत्रावरुण, ग्रावस्तुत, ब्राह्मणाच्छंदस, आच्छावाक और अग्नीद है।

यस्मिन्नृच सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिंष्ठिता रथनाभाविवारा।
यस्मिँश्चित्त सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनं शिवसंङ्कल्पमस्तु॥५॥

पदपाठ – यस्मिन्। ऋचः। साम। यजूंषि। यस्मिन्। प्रतिंष्ठिता। प्रतिंस्थितेति प्रति-स्थिता। रथनाभाविवेति-रथनाभौ। इव। अराः॥ यस्मिन्। चित्तम्। सर्वम्। ओतमित्या-उतम्। प्रजानामिति प्र-जानाम्। तत्। मे। मनः। शिवसंङ्कल्पमिति शिव-संङ्कल्पम्। अस्तु॥५॥

अन्वय – यस्मिन् ऋचः यस्मिन् साम यजूंषि रथनाभौ अराः इव प्रतिष्ठिताः यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तम् ओतं तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

व्याख्या – जिस मन में ऋग्वेद प्रतिष्ठित है। जिसमे सामवेद प्रतिष्ठित है। जिसमे यजुर्वेद प्रतिष्ठित है। स्वस्थ मन में ही वेदत्रयी प्रकट होते है, इस मन में शब्द मात्र स्थिर होते है 'अन्नमयं हि सोम्य मनः' इति छान्दोग्य में स्वस्थ मन से ही वेदो का उच्चारण प्रतिपादित किया गया है। वहाँ दृष्टान्त है। जैसे रथ के पहियों में लकड़ी के अरा लगे होते है। जैसे अरा रथचक्र के मध्य में प्रतिष्ठत होते है, उसी प्रकार शब्दजाल मन में स्थिर रहता है। और जिसमे प्राणियों के सम्पूर्ण सभी पदार्थविषयज्ञान धागे में मणियों के समान युक्त रहता है। स्वस्थ मन में ही ज्ञान की उत्पत्ति और मन के प्रतिकूल आचरण से ही ज्ञान का अभाव होता है। वह मेरा मन शिवसङ्कल्प हो।

सरलार्थ – जिसमे ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद चक्रनाभि में विद्यमान अरा के समान विद्यमान है और भी जिसमे प्राणियों के सभी पदार्थ विषयक ज्ञान है। वह मेरा मन शुभसङ्कल्प वाला हो।

व्याकरण

- **प्रतिष्ठिताः** – प्रतिपूर्वक स्थाधातु से क्तप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में प्रतिष्ठिताः रूप है।
- ओतम् – आपूर्वक तन्तुसन्तानात् वेञ्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर ओतम् रूप बनता है।

सुषारथिरश्वांनिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुंभिर्वाजिनंऽइव।
हृत्प्रतिंष्ठं यदंजिरं जविंष्ठं तन्मे मनं शिवसंङ्कल्पमस्तु॥६॥

पदपाठ – सुषारथिः। सुसारथिरिति सु-सारथिः। अश्वांनिवेत्यश्वान्- इव। यत्। मनुष्यान्। नेनीयते। अभीशुंभिरित्यभीशु-भिः। वाजिनंऽइवेति-वाजिनः-इव। हृत्प्रतिंस्थमिति हृत्-प्रतिंस्थम्। यत्। अजिरम्। जविंष्ठम्। तत्। मे। मनः। शिवसंङ्कल्पमिति शिव-संङ्कल्पम्। अस्तु॥६॥

अन्वय – यत् (मनः) मनुष्यान् सुषारथिः अश्वन् इव नेनीयते अभीषुभिः वाजिन इव(मनुष्यान् कर्मषु प्रेरयति) यत् हृत्प्रतिष्ठम् अजिरं जविष्ठं तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

व्याख्या – जो मन जैसे सुंदर घोड़े के समान, लगाम से घोड़ो को सब और चलाता है, वैसे ही मनुष्य आदि प्राणियों को शीघ्र ही इधर उधर भ्रमण कराता है। नयते: क्रियासमभिहारे यङ् हुआ। मन के प्रेरित करने पर ही प्राणि कार्य में प्रवृत होते है। मनुष्य ग्रहण प्राणिमात्र का उपलक्षक है। वहाँ उदाहरण है। जैसे चतुर सारथि लगाम से घोड़ो को इधर उधर अपने वश में चलाता है। रस्सियों से जैसे ले जाता है। दो उपमा है। प्रथम ले जाना और दूसरी नियमन। वैसे ही मन मनुष्यों को कार्य में प्रवृत करता है और लेकर जाता है। और जो मन हृदय में प्रतिष्ठित है। और जो मन विषय आदि में प्रेरक वा वृद्धादी अवस्था से रहित है। और जो अत्यन्त वेगवान है 'न वै वातात् किञ्चनाशीयोस्ति न मनस: किञ्चनाशीयोस्ति' इति श्रुति। वह मेरा मन मंगलमय हो।

सरलार्थ – जैसे कोई चतुर सारथि घोड़ो को सही चलाता है। वह जैसे चाहता है वैसे ही उनको लेकर के जाता है। इसी प्रकार मन भी प्राणियों के शरीर को चलाता है। और जो हृदय में स्थित वृद्धावस्था से रहित अत्यन्त ही वेगवान वह मेरा मन मंगलमय हो।

व्याकरण

- **नेनीयते** – नी-धातु से यङ लट प्रथमपुरुष एकवचन में नेनीयते रूप बनता है।
- **अभीषुभि:** – अभिपूर्वक इष्-धातु से उप्रत्यय करने पर तृतीयाबहुवचन में अभीषुभि: रूप बनता है।
- **वाजिन:** – वज्-धातु से णिनिप्रत्यय करने पर द्वितीयाबहुवचने में वाजिन: रूप बनता है।
- **जविष्ठम्** – जुधातु से इष्ठन्प्रत्यय करने पर जविष्ठम् रूप बनता है।
- **प्रतिष्ठम्** – प्रपूर्वकस्थाधातु से कप्रत्यय करने पर प्रतिष्ठम् रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 23.2

1. येनेदं भूतं भूवनम् इस मन्त्रांश में येन इसका क्या तात्पर्य है?
2. सात होता कौन है?
3. तायते इसका क्या अर्थ है?
4. मन में वेद कैसे स्थिर होते है?
5. ओतम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
6. भुवनम् यहाँ पर क्या प्रत्यय है?
7. अजिरम् इसका क्या अर्थ है?
8. जविष्ठम् इसका क्या अर्थ है?
9. अभीशुभि: इसका क्या अर्थ है?
10. नेनीयते यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

टिप्पणियाँ

23.2 शिवसङ्कल्पसूक्त का सार

छः मन्त्र वाले इस सूक्त के ऋषि याज्ञवल्क्य, मनो देवता, त्रिष्टुप् छन्द है। इस सूक्त में ऋषि कहते हैं की जो मन जागने वाले पुरुष का दूर जाता है, और सोने वाले मनुष्य का वही मन वैसे ही समीप आता है अर्थात् जैसा गया है वैसे ही वापस आता है। और जो दूर से जाता है, जो मन आत्म साक्षात्कार में साधन है, और जो मन प्रकाशकों का श्रोत्र आदि इन्द्रियों का एक ही ज्योति प्रवर्तक है, सभी शरीर का चालक वह मेरा मन शुभसङ्कल्पों से युक्त हो। अर्थात् मेरे मन में हमेशा धर्म ही हो कभी भी पाप नही हो। कर्मवान, बुद्धिमान, मेधावी जिस मन से कार्य करते हैं, जिससे बुद्धिमान यथाविधि यज्ञ का सम्पादन करते हैं, और जो अपूर्व, सभी इन्द्रियों से पूर्व जिसकी रचना हुई, सभी प्राणियों में विद्यमान और पूज्य वह मेरा मन शुभ सङ्कल्प से युक्त हो। जो मन प्रज्ञा को विशेष रूप से ज्ञान कराता है, और भी जो मन सामान्य ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है, जो मन धृति धैर्य स्वरूप, जो मन अमरण धर्मी, जो मन प्रजाओं में अन्तर वर्तमान होने से सभी इन्द्रियों का प्रकाशक है, जिसके बिना कोई भी कार्य पूर्ण नही किया जा सकता है वह मेरा मन शुभसङ्कल्प से युक्त हो। जिस मन के द्वारा यह सभी सब कुछ जाना गया है, और जिस मन से भूतकाल सम्बन्धी वस्तु, वर्तमानकाल सम्बन्धी वस्तु, और भविष्यत्काल सम्बन्धी वस्तु का ज्ञान होता है, जिस मन के द्वारा होतृमैत्रावरुण आदि सात होता युक्त अग्निष्टोमयज्ञ को विस्तृत करते है वह मेरा मन शुभसङ्कल्प से युक्त हो। जैसे रथ के दोनों और आरे होते है ठीक वैसे ही मन ही सभी ऋचाओं में प्रतिष्ठित होते है। साम में प्रतिष्ठित है। और यजुर्वेद में प्रतिष्ठित है। पट में जैसे ओतप्रोतरूप से धागे विद्यमान रहते है वैसे ही जिस मन में सभी पदार्थ विषयक ज्ञान निहित है उस प्रकार का मेरा मन शुभसङ्कल्पयुक्त हो। जैसे अच्छा सारथि अपने रथ के वेगयुक्त घोड़ो को इधर-उधर लेकर जाता है और जैसे उनको नियन्त्रित करता है, वैसे ही जो मन मनुष्यों को सभी कार्यो में प्रवृत्त करता है उन्हें उस कार्य में लगाता है, और जो मन हृद् देशवाशी है, और जो जरारहित, और जो उत्पन्न हुए बालकों में, युवकों में और वृद्धों में एक समान है, वह मेरा मन शुभसङ्कल्प से युक्त हो।

23.3 मन का स्वरूप

शुक्लयजुर्वेद-शिवसङ्कल्पसूक्त में मन के स्वरूप विषय को प्राप्त करते हैं। मन जाग्रतावस्था में पुरुष से दूर जाता है। चक्षु आदि की अपेक्षा से दूर जाता है यह तात्पर्य है। वैसे ही सुषुप्ति अवस्था में पुरुष के निकट आता है। परमात्मा का ज्ञान मन के द्वारा ही सम्भव है। 'मनसैवेदमाप्तव्यम्' यह श्रुति यहाँ प्रमाण है। जो अप्रमेय, निश्चल, आत्मतत्त्व उसको मन से ही देखना चाहिए। 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' इति श्रुति है। मन ही दूर जाने वाला है। बहुत दूर जाता है यह अर्थ है। अथवा अतीत अनागतवर्तमान में प्रयोग करने वाले पदार्थो का ग्राहक है। मन ही ज्योतियों के विषयप्रकाशकों का श्रोत्र आदि इन्द्रियों का, ज्योति प्रकाशक प्रवर्तक है। श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों को शब्द आदि का ग्रहण करते हैं। वहाँ विषय ज्ञान में मन कारण है। आत्मा मन के संयोग के

बिना कुछ भी ज्ञान श्रोत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा सम्भव नही है। अत: मन के विना श्रोत्र आदि इन्द्रियों के होने पर भी शब्द आदि का ज्ञान सम्भव नही है। मन के स्वास्थ्य के विना कर्म में प्रवृत्त यज्ञ में हवि प्रदान आदि कर्म को नही कर सकता है। इसलिए कर्मशील बुद्धिमान और मेधावी मन के द्वारा ही यज्ञादि कर्म करते हैं। और इन्द्रियों से पहले मन की रचना की और मन की पहले रचना होने से वह अपूर्व है। मन प्रज्ञान, विशेष ज्ञान का बोध कराता है। और चित "चेतयति सम्यग् ज्ञापयति इति चेत:"। वह मन सामान्य विशेषज्ञान का बोध कराता है, यह सिद्ध होता है। और मन धैर्यस्वरूप, मरणरहित, सभी प्राणियों के अन्तर विद्यमान, सभी इन्द्रियों का प्रकाशक है। मन के बिना कोई भी कार्य न ही होता है। त्रिकालसम्बन्धी वस्तुओं में मन प्रवृत्त करता है। मन के द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान होता है। मन के द्वारा होतृमैत्रावरुण आदि सात होता से युक्त अग्निष्टोमयज्ञ का विस्तार करता है। रथनाभि में जैसे आरे प्रतिष्ठित होते है वैसे ही मन ही सम्पूर्ण वेदराशि में प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद ये तीनो ही मन में प्रतिष्ठित है। और ज्ञान का आधार भी मन है। वैसे ही जैसे पट में धागे ओतप्रोत रूप से है वैसे ही प्रजाओं का सभी ज्ञान मन में रहता है। सारथि जैसे घोड़ो को अपने हाथ से इधर उधर करता हुआ और नियन्त्रित करता है उसी प्रकार मन भी मनुष्यों को इधर उधर करता हुआ और नियंत्रित करता है। इस जगत् में विद्यमान सभी वेगवान वस्तुओं में अधिकवेग मन का होता है। बाल्ययौवन और वृदावस्था में भी मन एक समान रहता है। और अन्यत्र वेद में भी कहा गया है - ''न वै वातात्किञ्चिनाशीयोस्ति न मनस: किञ्चनाशीयोस्ति'' इति। इस [प्रकार मन का निवासस्थान प्राणियों का हृदय प्रदेश होता है।

शिवसङ्कल्पसूक्त अंश का पाठसार

इस शिवसङ्कल्पसूक्त में मन की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। और वह शिवसङ्कल्प हो ऐसी प्रार्थना भी की है। वहाँ प्रारम्भ मन्त्र में कहा की जो दूरगामी और ज्योतियों में अद्वितीय मन वह शुभसङ्कल्प वाला हो। उसके बाद में द्वितीय मन्त्र में कहा गया है की कर्मनिष्ठ मेधावि जिसके द्वारा यज्ञ में यज्ञ की विधि और विधानो में कार्य करता है वह मन शुभसङ्कल्प वाला हो। इसी प्रकार तृतीय मन्त्र में कहा की सभी इन्द्रियों का प्रकाशक अमरण धर्म वाला धैर्यस्वरूपशुभसङ्कल्प वाला होऐसा कहा गया है। उसके बाद चतुर्थ मन्त्र में कहा गया है की जिसके द्वारा भूतभविष्य अतीतपदार्थो का ज्ञान होता है और सात होता विशिष्ट यज्ञको सम्पादित करता है। वह मन शुभसङ्कल्प हो। इसी प्रकार पञ्चम मन्त्र में कहा की जिसमे ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद और अर्थववेद है। इस प्रकार वह मनशुभसङ्कल्प वाला हो। षष्ठमन्त्र में मन शरीरके परिचालक के रूप में उसे प्रतिपादित किया। इस प्रकार मन विविधप्रकार से प्रदर्शित किया। और वह शुभसङ्कल्प वाला भी हो ऐसी प्रार्थना करते है।

टिप्पणियाँ

प्रजापतिसूक्त

वेद चार है- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। और यजुर्वेद के शुक्लकृष्णभेद से दो प्रकार का है। उन दोनों में शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनसंहिता का बतीसवें अध्याय में सर्वमेघ के मन्त्र लिखे हुए है। बतीसवें अध्याय के प्रारम्भ में ही हिरण्यगर्भ का विचार है। उसके साथ ही प्रजापति का विवेचन भी किया है। वह ही अग्नि, वह ही आदित्य, वह ही वायु, वह ही चन्द्रमा, वह ही तेज, वह ही प्रार्थना, वह ही जल है। इस प्रकार से प्रजापति का वर्णन है। शुक्लयजुर्वेद का यह सूक्त बतीसवें अध्याय में पढ़ा हुआ है।

23.4 मूलपाठ (प्रजापतिसूक्त)

तदे॒वाग्निस्तदा॑दि॒त्यस्तद्वा॒युस्तदु॒ च॒न्द्रमा॑:।
तदे॒व शु॒क्रं तद् ब्रह्म॒ ता आप॒: स प्र॒जाप॑तिः॥१॥

सर्वे॑ निमे॒षा ज॑ज्ञिरे वि॒द्युत॑: पुरु॑षा॒दधि॑।
नैन॑मू॒र्ध्वं न ति॒र्यञ्चं॒ न मध्ये॒ परि॑ जग्रभत्॥२॥

न तस्य॑ प्रति॒मा अ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यशः॑।
हि॒र॒ण्यग॒र्भ इ॒त्ये॒ष मा मा॑ हिंसी॒दि॒त्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒त इ॒त्ये॒षः॥३॥

ए॒षो ह॑ दे॒वः प्र॒दिशोऽनु॒ सर्वा॑: पू॒र्वो ह॒ जा॒तः स उ॒ गर्भे॒ अ॒न्तः।
स ए॒व जा॒तः स ज॑नि॒ष्यमा॑णः प्र॒त्यङ्जना॑स्तिष्ठति॒ सर्व॑तोमुखः॥४॥

यस्मा॑ज्जा॒तं न पु॒रा किं च॒ नैव॒ य आ॑ब॒भूव॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
प्र॒जाप॑तिः प्र॒जया॑ संरराण स्त्रीणि॒ज्योती॑षि सचते॒ स षो॑ड॒शी॥५॥

23.4.1 मूलपाठ की व्याख्या (प्रजापतिसूक्त) : श्लोक 1-5

तदे॒वाग्निस्तदा॑दि॒त्यस्तद्वा॒युस्तदु॒ च॒न्द्रमा॑:।
तदे॒व शु॒क्रं तद् ब्रह्म॒ ता आप॒: स प्र॒जाप॑तिः॥१॥

पदपाठ - तत्। एव। अग्निः। तत्। आदित्यः॥ तत्। वायुः। तत्। ओंऽइत्यूँ। चन्द्रमाः। तत्। एव। शुक्रम्। तत्। ब्रह्म। ताः। आपः। सः। प्रजापतिरिति प्रजा। पतिः॥१॥

अन्वय - तत् एव अग्निः, तत् आदित्यः, तत् वायुः, तत् उ चन्द्रमाः, तत् एव शुक्रम्, तत् ब्रह्म, ताः आपः, सः प्रजापतिः (वर्तते)॥१॥

व्याख्या - पुरुषमन्त्र कहे है। अब सर्वमेध यहाँ मन्त्र कहते है- प्रवायुमच्छेत् इससे पहले (३३/५५)। स्वयंभु ब्रह्मद्रष्टा आत्म देवता सात दिन में होने वाला आप्तोर्यामसंज्ञक सर्वहोम में विनियोग करने लगे 'आप्तोर्यामः सप्तममहर्भवति' इत्युपक्रम्य 'सर्व जुहोति सर्वस्यास्यै सर्वस्यावरुध्द्यै' (१३/७/१/९)

इति श्रुतिया। दो अनुष्ठान। विज्ञानात्मा विशिष्ट अग्न्यादियों से ओतप्रोत होने से इसको जाना जाता है। उस ब्रह्म के कारण से ही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा उसके कारण से ही है। उसी अर्थ में है। शीघ्रकारी वा शुद्ध भाव से वह शुक्र प्रसिद्ध है। वह ब्रह्म महान लक्षण होने से ही ब्रह्म है। और सब जगह व्यापक होने से प्रसिद्ध आप, जल तथा सब प्रजा का स्वामी होने से प्रसिद्ध प्रजापति वह ब्रह्म ही है।

सरलार्थ–वह प्रजापति ही अग्नि, वह ही आदित्य, वह ही वायु, वह ही चन्द्रमा है, वह ही तेज है, वह ही ब्रह्म, और जो जल है वह भी प्रजापति ही है।

व्याकरण

- **आपः** – अप् इस प्रातिपदिक का प्रथमान्त बहुवचनान्त रूप है।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥२॥

पदपाठ – सर्वे। निमेषाऽइति नि। मेषाः। जज्ञिरे। विद्युतऽइति वि। द्युतः। पुरुषात्। अधि॥ न एनम्। ऊर्ध्वम्। न तिर्यञ्चम्। न। मध्ये। परि। जग्रभत्॥२॥

अन्वय – सर्वे निमेषाः विद्युतः पुरुषात् अधि जज्ञिरे। एनम् न ऊर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि अजग्रत॥२॥

व्याख्या – जिस परमात्मा से सब कला काष्ठ काल आदि के अवयव अधिकतर उत्पन्न होते है। किस प्रकार के पुरुष से। विद्युतः विशेष रूप से प्रकाशित होता है उससे। और कोई भी इस पुरुष के ऊर्ध्व भाग को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसको तिरछा सब दिशाओं में और न ही मध्य देश में भी ग्रहण नही कर सकते है। इसको प्रत्यक्ष आदि विषयों से जाना नही जा सकता है, यह अर्थ है। वह यह "नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यते" श्रुति है। सब और से ग्रहण कर सकता है। ग्रहजुहोत्यादि धातु का रूप है।

सरलार्थ – सम्पूर्ण काल परिणाम प्रकाशमान पुरुष से ही उत्पन्न हुआ। इस परमात्मा को ऊर्ध्वभाग से, तिरछे भाग से, मध्यभाग से नही जाना जा सकता है।

व्याकरण

- **जज्ञिरे** – जनी (प्रादुर्भावे) इस अर्थ की धातु से लिट्-लकार का प्रथमपुरुष के बहुवचन में रूप है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः॥३॥

पदपाठ – न। तस्य। प्रतिमेति प्रति। मा। अस्ति। यस्य। नाम। महत्। यशः। हिरण्यगर्भऽइति हिरण्य। गर्भः। एषः। मामेति मा। मा। हिंसीत्। इति। एषा। यस्मात्। न। जातः। इति। एषः॥३॥

टिप्पणियाँ

अन्वय – तस्य प्रतिमा न अस्ति यस्य महत् यशः हिरण्यगर्भः इति एषः, मा मा हिंसीत् इति, एषा यस्मान्न जातः इति एषः नाम।।३।।

व्याख्या – दो पैर वाली गायत्री। उस पुरुष की प्रतिमा प्रतिमान परिमाण वाली कोई वस्तु नही है। इसलिए जिसका नामकरण भी प्रसिद्ध महान यशवाला है। जिसका यश सबसे विशाल है यह अर्थ है। हिरण्यगर्भ इत्यादि चार अनुवाक मन्त्र हिरण्यगर्भः, यः प्राणतः, यस्येमे, य आत्मदा इति (२५/१०-१३)। मा मा हिंसीज्जनितेत्येका यह (१२/१०२)। यस्मान्न जातः इन्द्रश्च सम्राडिति (८/३६-३७) यह दो अनुवाक है। यह प्रतीक के रूप में पूर्व में पढ़े हुए होने से आदिमात्रा में यहाँ पर कहते है, ब्रह्मयज्ञ और जप में सभी को पढना चाहिए। और इसी प्रकार सभी जगह पढना चाहिए।

सरलार्थ – उस परमात्मा की उपमा कोई नही कर सकता है, जिसका यश आदि में उत्पन्न हुआ। यजुर्वेद के मा मा हिंसीत् इत्यादिमन्त्र के द्वारा व्याख्या की गई है।

व्याकरण

- **अस्ति** – अस्-धातु से लट्-लकार का प्रथमपुरुष का एकवचन में रूप है।
- हिंसीत् – हिसि (हिंसायाम्) लुङ्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।

एषो ह॑ दे॒वः प्र॒दिशोऽनु॒ सर्वाः॒ पूर्वो॑ ह जा॒तः स उ॒ गर्भे॑ अ॒न्तः।
स ए॒व जा॒तः स ज॑नि॒ष्यमा॑णः॒ प्रत्यङ्जना॑स्तिष्ठति स॒र्वतो॑मुखः।।४।।

पदपाठ – ए॒षः। ह॒। दे॒वः। प्र॒दिश॒ऽइति॒ प्र। दिशः॑। अनु॑। सर्वाः॑। पूर्वः॑। ह॒। जा॒तः। सः। ओ॑ऽइत्यूँ। गर्भे॑। अ॒न्तरि॑त्य॒न्तः॥ सः। ए॒व। जा॒तः। सः। ज॒नि॒ष्यमा॑णः। प्र॒त्यङ्। जनाः॑। तिष्ठ॑ति। स॒र्वतो॑मुख॒ऽइति॑ स॒र्वतः॑। मुखः॥४॥

अन्वय – एषः देवः सर्वा प्रदिशः, सः पूर्वः ह गर्भः अन्तः जातः, सः एव जातः, स जनिष्यमाणः। जनाः, सर्वतोमुखः प्रत्यङ् तिष्ठति।।४।।

व्याख्या – चार त्रिष्टुभ। ह प्रसिद्ध। यह देव सभी दिशाओं में व्याप्त होकर के रहता है। हे मनुष्यों, यह प्रसिद्ध सबसे पूर्व प्रथम उत्पन्न हुआ है। गर्भ के अन्त गर्भ के मध्य में वह ही निश्चित रूप से रहता है। उत्पन्न होने पर भी वह ही उत्पन्न होता है, और आगामी काल में भी वह ही होगा। प्रत्येक पदार्थ को उसने प्राप्त कर रखा है। सब और से मुख आदि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता है। उसकी ही तुम लोगो को उपासना करनी चाहिए।

सरलार्थ – यह देव सभी दिशाओं में निश्चतरूप से व्याप्त होकर के रहता है। वह ही निश्चित रूप से गर्भमध्य में उत्पन्न हुआ। वह ही ही उत्पन्न होता है और वह ही उत्पन्न होगा। हे मनुष्य, सभी जगह मुखविशिष्ट अर्थात् जिसके विषय में कोई सोच नही सकता उस प्रकार की शक्तिसम्पन्न वह परमात्मा प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त होकर के रहता है।

व्याकरण

- **जातः** – जनी (प्रादुर्भावे) इस अर्थ की धातु से तप्रत्ययान्त का यह रूप है।
- **जनिष्यमाणः** – जनी (प्रादुर्भावे) इस अर्थ की धातु से शानच्-प्रत्ययान्त का रूप है।

यस्मा॑ज्जा॒तं न पु॒रा कि॑ं च॒ नैव॒ य आ॑ब॒भूव॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
प्र॒जाप॑तिः प्र॒जया॑ संर॒रा॒ण स्त्रीणि॒ज्योती॑ंषि सचते॒ स षो॑ड॒शी॥५॥

पदपाठ – यस्मा॑त्। जा॒तम्। न। पु॒रा। किम्। च॒न। एव। यः। आ॒ऽब॒भूवेत्या॑। ब॒भूव॑। भुव॑नानि। विश्वा॑॥ प्र॒जाप॑तिरिति॑ प्र॒जा। पतिः॑। प्र॒जयेति॑ प्र। जया॑। संर॒रा॒णऽइति॑ सम्। र॒रा॒णः॑। त्रीणि॑। ज्योती॑ंषि। स॒च॒ते॒। सः। षो॒ड॒शी॥५॥

अन्वय – यस्मात् पुरा किञ्चन न जातम्, यः एव विश्वा भुवनानि आबभूव, षोडशी प्रजापतिः प्रजया संरराण – त्रीणि ज्योतींषि सचते॥५॥

व्याख्या – जिससे पहले कुछ भी उत्पन्न नही हुआ। और जिसमे सब वस्तुओं के आधार सब लोक वर्तमान है। अन्तर्भूत है। वह ही सोलह कला वाले लिङ्ग शरीर प्रजापति के साथ प्रजा का रक्षक तीन ज्योति बिजली, सूर्य और चंद्रमा को संयुक्त करता है।

सरलार्थ – जिस प्रजापति से पहले कुछ भी उत्पन्न नही था, जिस प्रजापति ने सम्पूर्णलोक की रचना की और उसके चारो और व्याप्त है, सोलह अवयव से विशिष्ट प्रजापति प्रजा के साथ रमण करता हुआ तीन तेज को धारण करता है।

व्याकरण

- **जातः** – जनी (प्रादुर्भावे) इस अर्थ की धातु से तप्रत्ययान्त का रूप है।
- **आबभूव** – आङ् इस उपसर्गपूर्वक भू (सत्तायाम्) इस अर्थ की धातु से लिट्-लकार का प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।

पाठगत प्रश्न 23.3

1. त्रयीलक्षण क्या है?
2. प्रजापति कौन है?
3. सम्पूर्ण कालपरिणाम कहाँ से उत्पन्न हुआ?
4. इस परमात्मा को ऊर्ध्वभाग से, तिर्यग्भाग से, मध्यभाग से जाना जा सकता है की नहीं?
5. प्रजापतिसूक्त किस वेद के अन्तर्गत होता है?
6. प्रजापतिसूक्त में कितने मन्त्र हैं?
7. प्रजापतिसूक्त का देवता कौन है?

टिप्पणियाँ

23.5 प्रजापतिसूक्त का सार

शुक्लयजुर्वेद के सूक्तसंग्रह में यह अन्यतम प्रजापतिसूक्त है। यह सूक्त शुक्लयजुर्वेद के बतीसवें अध्याय में है। इस सूक्त में पांच मन्त्र विद्यमान है। इस सूक्त का हिरण्यगर्भ ऋषि, प्रजापति देवता, और त्रिष्टुप् छन्द है। इस ब्रह्मयज्ञ जप में विनियोग है। तैत्तिरीयसंहिता वेद में कहा गया है–

प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः प्रजापतेरनुरूपत्वाय॥ (५.५.१.२)

इस श्रुति से सोने के अण्ड के गर्भभूत प्रजापति ही हिरण्यगर्भ के नाम से जाने जाते है। माया के अध्यक्ष होने से परमात्मा इस संसार को उत्पन्न करते है। वेदों में अनेक रूपों में प्राकृतिक शक्ति के रूप में देवतारूप से उसकी परिकल्पना की गई और हमारे द्वारा जिसकी स्तुति की जाती है। परन्तु इस सूक्त में उस प्रकार की कोई कल्पनादि विद्यमान नही है। यहाँ मेधा बुद्धि वाले ऋषियों का सृष्टितत्त्व विषय में बढती हुई जिज्ञासा के रूप में इस देव की उत्पति हुई, ऐसा कहा जाता है।

वेद आदि अनेक देवतावाद के वर्तमान होने में भी वे मन्त्र एक ही अद्वितीय देव की स्तुति करते है। वहाँ इन्द्रसूक्त में यह प्रमाण है–

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमृतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्॥ इति।

उपनिषद् में भी जैसे 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' इस श्रुति से आत्मा को एकत्व प्रतिपादित करते है, इसी प्रकार प्रजापतिसूक्त में भी यह ही तत्त्व प्रकाशित है। वहाँ बहुदेवतावाद की उपयोगिता में संदेह करते हुए ऋषि प्रजापति को ही विश्व का, सृष्टिकर्ता मानते हैं। उससे कहा गया है –

हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ इति।

सः प्राणदाता बलदाता च। तस्यादेशं देवाः पालयन्ति। तस्मादुक्तम् –
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। इति।

वह ही सभी प्रपञ्च का निर्माता है। उससे जैसे द्युलोक वैसे ही पृथिवीलोक भी निर्मित है। उससे स्वर्गलोक और आदित्यलोक निर्मित है। और कहा गया है –

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ इति।

उसने दक्ष को धारण किया। और सृष्टि के उत्पति में जीवनस्वरूप जल को सभी जगह फैला दिया। देवो में वह एक ही स्वामी है। वैसे ही वेद के हिरण्यगर्भसूक्त में कहा गया है–

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यदृक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ इति।

प्रजापति ही इस संसार की रचना, पालन और संहार करते है। यह जैसे जल अन्नप्रकृति आदि जीवन को प्रदान करते है, और सृष्टि करते है। वैसे ही इस जगत की रक्षा और समय के अनुसार नाश भी करता है। उससे यह जगत का रचयिता और संहारकर्ता है। वह हिरण्यगर्भ धनेश्वर है। इसलिए हिरण्यगर्भसूक्त में कहा गया है-

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ इति शिवम्॥

23.6 प्रजापति का स्वरूप

विविध देवताओं का स्मरण करना ही एक परमस्वरूप की स्तुति है। उस परमपुरुष का ही एक रूप प्रजापति है। युग के अन्त में सम्पूर्ण सृष्टिजल में समाहित हो जाती है। तब सभी बीजरूप से रहते है, उस बीज से जो पुनः देवता मनुष्यादि की रचना करता है वह ही हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति है। सृष्टी के आरम्भ में वह ही अग्नि की रचना करता है, और प्रलयकाल में विस्तृत जल को अपने उदर में स्थापित करता है जिससे सृष्टि रचना दुबारा हो। निश्चित ही देवता मनुष्य आदि चेतन जीवों का और जड़ वस्तुओं का भी वह ही स्रष्टा है। उनके अपने आधारभूत योग्य भूमिभाग का भी वह ही निर्माण करता है। प्रजापति ही पृथिवीलोक और द्युलोक की रचना करता है।

प्रजापति केवल जगत के ही स्रष्टा नहीं है अपितु इस विश्व को धारण भी वह ही करते हैं। वर्तमान भूत और भविष्य सब में वह व्याप्त होकर के रहता है। वह सूर्य का भी धारक है। भास्कर उसके आधार करने पर ही निकलता है और प्रकाश देता है। मनुष्यों के लिए जन्म मृत्यु का नियन्ता वह ही है। दिव्य देवताओं का भी वह ही अधिपति है।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार से एक बार इन्द्र प्रजापति के समीप जाकर उसकी स्तुति की उसकी प्रार्थना की। तब प्रजापति ने कहा - तुमको अपनी विशालता प्रदान करने से मै कौन हूँ। तब इन्द्र ने उनसे कहा - तुम जैसे कहते हो मै वैसे ही हो जाता हूँ। उससे प्रजापति की इस नाम से भी उसकी प्रसिद्धि है।

पाठ सार (प्रजापतिसूक्त)

पांच मन्त्र वाले इस सूक्त में वर्णन किया गया है की इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब प्रजापति ही है। जिससे पहले कुछ भी उत्पन्न नही हुआ। और जिससे सभी प्राणी उत्पन्न हुए, वह सोलह अवयव वाले लिङ्ग शरीर प्रजापति ही हैं। अग्नि-आदित्य-वायु-शुक्र-ब्रह्म-ओंकार आदिरूपों के द्वारा उस प्रजापति की ही व्याख्या प्रसिद्ध रूप से की गई है। कोई भी इस पुरुष को ऊर्ध्व से ग्रहण नही कर सकता है। सभी निमेष काल-विशेष प्रजापति पुरुष से अधिपुरुष-से ही उत्पन्न हुए हैं। उस पुरुष की प्रतिमान कोई वस्तु नही कर सकती है। यह

ही वेद सभी दिशाओं में व्याप्त होकर के स्थित रहता है। इसकी उत्पत्ति सबसे पहले हुई है। यह प्रसिद्ध ही है। गर्भमध्य में वह ही रहता है। वह ही उत्पन्न होता है और उत्पन्न होगा। इस प्रकार वह प्रजापति प्रजा के साथ रमण करता हुआ तीन ज्योति सूर्य, अग्नि, चन्द्र की सेवा करता है।

पाठांत प्रश्न

(शिवसंकल्पसूक्त में)

1. शिवसङ्कल्पसूक्त का सार लिखिए।
2. तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु इस मन्त्र अंश में किस प्रकार का मन शिवसङ्कल्प वाला हो?
3. यज्जाग्रतो दूरमुदैति ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या लिखिए।
4. यस्मानृचः ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके महीधरभाष्य के अनुसार व्याख्या कीजिए।
5. सुषारथिरश्वा ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या कीजिए।

(प्रजापतिसूक्त में)

6. प्रजापतिसूक्त का सार लिखिए।
7. प्रजापति के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
8. तदेवाग्निस्तदादित्य... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
9. सर्वे निमेषा... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
10. न तस्य ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
11. एषो ह देवः ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
12. यस्माज्जातम् ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

23.1

1. आदित्य याज्ञवल्क्य ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, मन देवता।
2. कल्याणकारी।
3. खश् प्रत्यय।
4. मन के साथ।

5. कुर्वन्ति।
6. छान्दस से।
7. विशेषरूप ज्ञान का जनक।
8. धैर्यरूप।
9. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते।
10. करण अर्थ में।

23.2

1. मन से।
2. होता, पोता, मैत्रावरुण, ग्राववरुण, ब्राह्मणाच्छंदसी, आच्छावाक् और अग्नीद।
3. विस्तार।
4. रथ के नाभि में जैसे आरे।
5. आपूर्वक तन्तुसन्तानवेञ्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर।
6. क्यसुप्रत्यय।
7. वृद्धावस्थ से रहित।
8. अत्यन्त वेगवान।
9. अच्छी प्रकार से ग्रहण करता है।
10. नी-धातु से यङ लट प्रथमपुरुष एकवचन में।

23.3

1. त्रयीलक्षणवह ब्रह्म ही है।
2. वह प्रजापति ही अग्नि है।
3. सम्पूर्ण कालपरिणाम प्रकाशमानपुरुष से उत्पन्न हुआ है।
4. इस परमात्मा को ऊर्ध्वभाग से, तिर्यग्भाग से, मध्यभाग से जाना नही जा सकता है।
5. शुक्लयजुर्वेद में।
6. पांच मन्त्र है
7. प्रजापति।

॥ तेबिसवाँ पाठ समाप्त ॥

24

रुद्र अध्याय

शुक्लयजुर्वेदसंहिता का सोलहवाँ अध्याय रुद्र अध्याय नाम से प्रसिद्ध है। पंद्रहवें अध्याय में अग्निचयन प्रकार का वर्णन करके सोलहवें में सौ रुद्रियहोममन्त्र कहे गये हैं। इन मन्त्रों में रुद्र अध्याय में रुद्रदेवता का स्वरूप और वैशिष्ट्य को प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि रुद्र काचन देवता परन्तु वह भगवान् स्वरूप है। श्री भगवान् सर्वव्यापी है। रुद्र के वर्णन में भी उसका सभी स्वरूप प्रकट किया है। देव मनुष्य आदि रूप से जैसी उसकी स्थिति है, वैसे ही पर्णनी, हार आदिरूप से भी उसको ही प्रकट किया है। इस अध्याय में मुख्य रूप से रुद्र के प्रति नमस्कार और प्रार्थना की गई है। शिव का शिवधर्म का अथवा शैवधर्म का प्रसार शुक्लयजुर्वेदसाहित्य इतिहास में बहुत बड़े स्थान को अलंकृत करता है। रुद्र शब्द का अर्थ भीषण अथवा भयङ्कर है। अन्तिम क्षण में जो सभी को रुलाता है वह रुद्ररूप से ही विख्यात है। जन्म समय में स्वयं ही भीषण क्रन्दन करता है और भी जिसके- शब्द से सम्पूर्ण भुवन कम्पन करने लगता है वह रुद्र है। यहाँ दो भाग किये जाते हैं। वहाँ प्रथम भाग में सात मन्त्र है तथा द्वितीय भाग में सात मन्त्र की व्याख्या करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- रुद्रदेव के रूप को समझ पाने में;
- शुक्लयजुर्वेद के रुद्राध्याय को सस्वर पढ़ पाने में;
- रुद्र अध्याय में स्थित मन्त्रों का अर्थ ज्ञान कर पाने में;
- वैदिक मन्त्रों की व्याख्यान की पद्धति को जान सकने में;

- रुद्र के माहात्म्य को जान पाने में;
- स्वयं ही मन्त्र की व्याख्या कर पाने में;
- स्वयं ही मन्त्र का अन्वय कर पाने में;
- स्वयं ही मन्त्र में स्थित व्याकरण पदों को जान पाने में;

24.1 मूलपाठ

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो तऽइषवे नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः॥१॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥२॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्॥३॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाऽच्छावदामसि।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत्॥४॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वान् जम्भयन् सर्वांश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव॥५॥

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।
ये चौनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे॥६॥

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः॥७॥

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः॥८॥

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्र्योर्ज्याम्।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप॥९॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२॥
उत अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः॥१०॥

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।
तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज॥११॥

टिप्पणियाँ

परिं ते धन्वंनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेंहि तम्॥१२॥

अवतत्य धनुष्ट्वं सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव॥१३॥

नमस्त आयुधायानाततायं धृष्णवें।
उभाभ्यामुत ते नमों बाहुभ्यां तव धन्वंने॥१४॥

24.1.1 प्रथम भाग : मूलपाठ की व्याख्या- श्लोक 1-5

नमस्ते रुद्र मन्यवं उतो तऽइषवें नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः॥१॥

पदपाठ - नमः तेरुद्र मन्यवें उतोऽइत्युतो ते इषवे नमः। बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम् उततेनमः।

अन्वय का अर्थ - हे रुद्रदेव, ते - आपका, मन्यवे - क्रोध को उद्देश्य करके, नमः -अर्थात् स्तुति करता हूँ, उतः - अथवा, ते - तेरा, इषवे - बाण को उद्देश्य करके, नमः अर्थात नमस्कार करता हूँ। अथवा और भी, ते आपके, बाहुभ्याम् - हाथों से नमस्कार स्तुति करता हूँ।

व्याख्या - पन्द्रहवे अध्याय के चयनमन्त्रों को समाप्त करके सोलहवें में शतरुद्रहोम के मन्त्र कहते है। 'शतरुद्रियहोम उत्तरपक्षस्यापरस्यां स्रक्त्यां परिश्रित्स्वर्कपर्णेनार्ककाष्ठेन शातयन्संततं जर्तिलमिश्रान् गवेधुकासक्तूनजाक्षीरमेके तिष्ठन्नुदङ्नमस्त इत्यधायेन, त्र्यनुवाकान्ते स्वाहाकारो जानुमात्रे, पञ्चान्ते च नाभिमात्रे, प्राक् च प्रत्यवरोहेभ्यो मुखमात्रे, प्रतिलोमं प्रत्यवरोहान् जुहोति प्रमाणेषु नमोऽस्त्विति प्रतिमन्त्रम्' (का. श्रौ. १८/१/१/५)। इसका अर्थ है। हिरण्यशकलैरग्निप्रोक्षणानन्तरं शतरुद्रियसंज्ञो होमः उसकी आहवनीय में प्राप्ता अपवाद को कहते है। उत्तरपक्षपश्चिमकोण में जो परिश्रित जङ्घामात्र आदि पूर्व निखातास्तासु होम। वहाँ विधि। जर्तिलैरारण्यतिल के द्वारा मिश्रित गेहूं के साथ सक्तूनर्कपत्र से आहुति देते है। क्या किया। अर्ककाष्ठ से संतत क्षारपरिश्रित में गिरता हुआ अर्कपत्र को दाहिने हाथ से अर्ककाष्ठ को वाम से लेकर उसमे आहुति डालनी चाहिए। सक्तुस्थान में कही पर बकरी का दुग्ध। उदङ्मुख नमस्त इत्याध्याय से। वहाँ अनुवाक तीन में 'अर्भकेभ्यश्च वो नमः' (क. २६) यहाँ जानुमात्र में परिश्रित स्वाहाकारका विधान करना चाहिए। पञ्चानुवाक के अन्त में श्सुधन्वने च (क. ३६) यहाँ पर नाभिमात्र में परिश्रित स्वाहाकार है। 'नमोऽस्तु रुद्रेभ्यः' (क. ६३) इस प्रत्यवरोहमन्त्र में उससे पहले मुखमात्रपरिश्रित स्वाहाकार है। नमोऽस्त्विति कण्डिका तीन से प्रतिलोम होम। 'ये दिवि' (क.६४) यह मुखमात्र में। 'येऽन्तरिक्षे' (क. ६५) ये नाभिमात्र में। 'ये पृथिव्याम्' (क.६६) ये जानुमात्र में। यह सुत्रार्थ। नमस्ते। षोडश अर्च में अनुवाक एकरुद्रदैव आदि गायत्री तीन अनुष्टुप तीन पङ्क्त में सात अनुष्टुप में दो जगति में। अध्याय के परमेष्ठिदेवप्रजापति ऋषि। मा नः (क. १५-१६) इन दोनों के कुत्स ऋषि है। हे रुद्र, रुत् दुःखं द्रावयति रुद्रः। अथवा रु गतौ ये गत्यर्थ अथवा ज्ञानार्थ है। रवणं रुत् ज्ञानं राति ददाति रुद्रः ज्ञानम् भाव में क्विप् तुगागम करने पर। रुत् ज्ञानप्रद है। अथवा पापी मनुष्यों को दुःखभोग से रुलाते वे

रुद्र है। हे रुद्र, आपके मन्यु क्रोध के लिए नमस्कार हो। और आपके बाणों के लिए नमस्कार हो। और आपके भुजाओं को नमस्कार हो। आपका क्रोधबाण हाथ हमारी रक्षा के लिए फैल न की हमारे नाश के लिए यह अर्थ है ।।१।।

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का प्रथम मन्त्र है। हे रूद्र तुम्हारे क्रोध को नमस्कार, तुम्हारे आखो को नमस्कार और तुम्हारे बाहुओं को नमस्कार

व्याकरण

- **रुद्रः** – रुद् दु:ख को द्रावयति इति रुद्रः।
- पुन रु गतौ इस धातु से गत्यर्थकअथवा ज्ञानार्थकधातु से रुद्रशब्द निष्पन्न होता है। वहाँ रुलाने वाला अथवा ज्ञानको देने वाला रुद्र कहलाता है। यहाँ भाव में क्विप् प्रत्यय होता है।रुत् ज्ञानप्रद को कहते है।
- अथवा पापी मनुष्यों को दु:खभोग से रुलाता है वह रुद्र है।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि।।२।।

पदपाठ- या ते रुद्र शिवा तनू: अघोरा अपापकाशिनीत्यपापकाशिनी।। तया न: तन्वा शन्तमयेति शऽन्तमया गिरिशन्तेति गिरिऽशान्त अभी चाकशीहि।।

अन्वय का अर्थ – रुद्र हे रुद्रदेव, ते – आपका, या–जो, शिवा –कल्याणकारी, अघोरा –घोर उपद्रवो से रहित, अपापकाशिनी–सत्य धर्मो को प्रकाशित करने हारी, तनू: –शरीर, तया– आपका, शन्तमया–अत्यंत सुख प्राप्त कराने वाली, तन्वा– शरीर से, न:– हमको, गिरिशन्त – हे गिरिश, सब और से सुख प्रदान कीजिए।

व्याख्या – हे रुद्र, जो आपका यह इस प्रकार का विशाल शरीर को हे गिरिशन्त, उस विस्तृत कानून आदि से सब को देख सब पर दृष्टि रख। चाकशीति: पश्यतिकर्मा (नि. ३/११/८)। किस प्रकार की वाणी। शिव शान्त मङ्गलरूप वाली वाणी। जो उपद्रव रहित शांत सौम्य रूप वाली पाप से अतिरिक्त पुन्य का ही प्रकाश करने वाली। जो पुण्यफल को ही देती है पापफल को नहीं यह अर्थ है। कैलास पर्वत पर स्थित अच्छे सुख से प्राणियों का विस्तार करने वाले रूद्र, वाणी में स्थित अथवा उसको विस्तृत करने वाले, मेघ में स्थित होकर वर्षा द्वारा समृद्धि को बढाने वाले, पर्वत पर रहने वाले गिरिश। जो भुत भविष्य और वर्तमान सब कुछ जानने वाले सर्वज्ञ हैं। 'अम गतौ भजने शब्दे' कर्तरि क्त:। गिरिशश्चासावन्तश्च गिरिशन्तस्तत्संबुद्धि:। शकन्ध्वादित्वात्पररूपम् (पा. ६/१/९४) किस प्रकार का विस्तार। शांत रूप से और सुखरूप से ।।२।।

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का द्वितीय मन्त्र है। हे रूद्र तुम पर्वत पर रहने वाले हो तुम्हारा जो कल्याण रूप सौम्य है और पाप के फल को न देकर, पुण्य फल ही देता है अपने उस मगलमय देह से हमारी और देखो।

टिप्पणियाँ

व्याकरण

- **गिरिशन्त** – गिरी पर्वत पर सोने वाला अथवा रहना वाला, अर्थात् कैलास नाम पर्वत पर रहकर के, सुख को बढाने वाला गिरिशन्तः। अथवा गिरी वाणी के सुख को बढाने वाला विस्तार करने वाला यह अर्थ है।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्॥३॥

पदपाठ – याम् इषुम् गिरिशन्तेतिगिरिऽशन्त हस्ते बिभर्षि अस्तवे शिवाम् गिरित्रेति गिरिऽत्र ताम् कुरु मा हिंसीः पुरुषम् जगत्।

अन्वय का अर्थ – गिरिशन्त – हे गिरिश, याम् – जो बाण को, अस्तवे–फेकने के लिए, हस्ते–हाथ में, बिभर्षि– धारण करता है, गिरित्र – हे पर्वत के रक्षक, ताम् – उसको, शिवां–मंगलकारी करो। पुरुषं– पुरुष को, जगत्– पृथिवी को, मा– मत, हिंसीः – मारो।

व्याख्या – हे गिरिशन्त, आप जिस बाण को हाथ में धारण करते हो। क्या करोगे। अस्तवे 'असु क्षेपणे' तुमर्थे तवेप्रत्ययः। शत्रुओं पर फेंकने के लिए यह अर्थ है। कैलास पर्वत में स्थित होकर सभी प्राणियों की रक्षा करने वाले वह शिव का बाण हमारे लिए कल्याणकारी हो। और पुरुषके पुत्रपौत्रादिजगत् जङ्गम अन्य गाय आदि पशुओं को मत मारो ॥३॥

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का तृतीय मन्त्र है। हे रूद्र तुम पर्वत पर या मेघ के अंदर स्थित हो, तुम सब प्राणियों के रक्षक हो अपने जिस बाण को प्रलय के निमित हाथ में ग्रहण करते हो उस बाण को विश्व का कल्याण करो तुम हमारे पुरुषों को और पशुओं को हिंसित मत करो।

व्याकरण

- **अस्तवे** – यहाँ असु क्षेपणे इस धातु से तुमर्थ में तवेप्रत्यय होता है। शत्रुओं पर फेकने के लिए।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाऽच्छावदामसि।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत्॥४॥

पदपाठ – शिवेन वचसा त्वा गिरिश अच्छ वदामसि यथा नः सर्वम् इत् जगत् अयक्ष्मम् सुमनाइति सुऽमनाः असत्।

अन्वय का अर्थ – गिरिश – हे रुद्रदेव, शिवेन – कल्याणकारी, वचसा– वचन से, त्वा – तुझको, अच्छ – अच्छा, वदामसि – कहते है, यथा – जैसे, नः – हमारा, सर्व – सम्पूर्णजगत् – मनुष्यादि और संसार, अयक्ष्मम् – क्षय रोग आदि से रहित, सुमनाः – प्रसन्नचित हो।

व्याख्या – पर्वत पर रहने वाले हे गिरिश, कल्याण वचन से, मङ्गल स्तुतिरूप से हम तुम्हे प्राप्त करते है हम कहते है या हम तेरी प्रार्थना करते है। क्या कहते है यह बताते है।जो हमारा यह संसार जङ्गम मनुष्य पशु आदि जिस प्रकार से यक्ष्मा आदि रोगों से रहित होकर, नीरोग होकर कल्याणकारी सुंदर मन वाले जिस प्रकार रहे वैसे ही बना दो। सुमनःशब्द में पुंस्त्वमार्ष जगद्विशेषण होने से।४।।

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का चतुर्थ मन्त्र है। हे कैलासपते मगलमय स्तुति रूप वाणी से तुम्हे प्राप्त होने के लिए प्रार्थना करते है सभी संसार जैसे हमारे लिए आरोग्य प्रद और श्रेष्ठ मन वाला हो सके, वैसा करो।

व्याकरण

- **असत्** – अत्र लेट्लकार, अतः लेटोडाटौ इससे अडागम, इलोप होता है।

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वान् जम्भयन् सर्वांश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव।।५।।

पदपाठ - अधी अवोचत् अधिवक्तेत्यधिऽवक्ता प्रथमः दैव्यः भिषक् अहीन् च सर्वान् जम्भयन् सर्वाः च यातुधान्यइतियातुऽधान्यः अधराचीः परा सुव।।

अन्वय का अर्थ – अधिवक्ता – सबसे उत्तम बोलने वाला, प्रथमः – मुख्य, दैव्यः- देवो में प्रसिद्ध, भिषक् – चिकित्सक, अधि अवोचत्-अधिक उपदेश दे। सर्वान् – सभो को, अहीन् सर्प के तुल्य प्राणान्त करने हारे रोगों को, च – और, जम्भयन् – औषधियों से हटाते हुए, सर्वाः – सम्पूर्ण, च अपि – और भी, अधराचीः – नीचे गति को पहुचाने वाली, यातुधान्यः – रोगकारिणी औषधी राक्षससमूह को दूर फेको।

व्याख्या – रुद्र आप सबसे पहले आज्ञापक होकर मुझे आज्ञा दें, आपका कथन मेरे लिए प्रधान हो। किस प्रकार। अत्यधिक बोलने वाला। प्रथम सभी में मुख्य पूज्य होने से। देवों के लिए हितकारी। रोग के नाश के लिए स्मरण से ही औषधि के द्वारा रोग का नाश हो जाता है। इस प्रकार परोक्ष कहकर प्रत्यक्ष कहते है। हे रुद्र, सब प्रकार की प्रजाओं को पीड़ा, रोग, कष्ट आदि देने वाले दुष्टों को हमसे दूर करो। क्या करके। सभी सांपों को विषवैद्य और गारुडिक वश में करता है उसी प्रकार तू भी इन सभी को वश में कर, और जो बुरे कर्म में लगे हुए हैं, जो अधोगति की और गमन करते हैं ऐसे दुराचारियों को राष्ट्र से दूर करें। सर्प आदि और दुष्ट मनुष्यों से सदैव रक्षा करना।।५।।

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का पञ्चम मन्त्र है। अधिक उपदेशकारी, सब देवताओं में प्रथम पूज्य देवताओं के हितैषी, स्मरण से ही सब रोगों को दूर करने वाले चिकित्सक के समान रूद्र हमारे कार्यों को अधिकता से वर्णन करें और सब सर्पादी को नष्ट कर अधोगति वाले राक्षसों को हमसे दूर भगावें।

व्याकरण

- **अध्यवोचद्** – अधिपूर्वक वच्-धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **भिषक्** – रोग को दूर करने वाले भिषग्वैद्य चिकित्सक।

पाठगत प्रश्न 24.1

1. रूद्र का शरीर किस प्रकार का है?
2. रुद्र का बाण किसके लिए है?
3. स्वर्ग का मुख्य वैद्य कौन है?
4. यातुधान्यशब्द का क्या अर्थ है?

24.1.2 मूलपाठ की व्याख्या- श्लोक 6-7

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे॥६॥

पदपाठ – **असौ यः ताम्रः अरुणः उत बभ्रुः सुमङ्गलइतिसुऽमङ्गलः ये च एनम् रुद्राः अभितः दिक्षु श्रिताः सहस्रशः इति सहस्रऽशः अवेति एषाम्। हेडः ईमहे।**

अन्वय का अर्थ – असौ – वह, यः – जो, ताम्रः– ताम्रवत, अरुणः – सुंदर गौरांग, उत – अथवा, बभ्रुः – पीला वा धुमेला युक्त वर्ण युक्त, सुमङ्गलः –मङ्गलमय, ये च पुनः, सहस्रशः – हजारो, रुद्राः – दुष्टों को रुलाने हारे, एनम् – इस रूद्र के, अभितः – चारो और, दिक्षु दिशाओं में, श्रिताः – आश्रय से वसते हो, एषाम् – इनका, हेडः – शत्रुओं का अनादर करने हारे, अव ईमहे – विरुद्धाचरण की इच्छा नहीं करते है।

व्याख्या – यहाँ आदित्यरूप से रुद्र की स्तुति की गई है। जो यह सूर्य प्रत्यक्ष रुद्र का रूप है। च पुन अर्थ में। दुष्टों को रुलाने वाले चारो दिशाओं में इसके हजारों गण सूर्य रूपी किरने हमारे द्वेष, रोष क्रोध को दूर करें। हेड इति क्रोधनाम। 'अभिसर्वतसो' (पा. २/३/२) द्वितीया। यह किस प्रकार का है। सुनहरे रंग का, उदय काल में अत्यन्तलाल। और अस्त काल में भी लाल। और भी अन्य समय में पीले रंग का। अच्छा कल्याण है जिसका वह मङ्गलरूप सूर्य सभी की मगंल कामना से प्रवृत होता है ।।६।।

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का छठाँ मन्त्र है। यह रूद्र सूर्य में प्रत्यक्ष, उदय काल में अत्यन्त लाल और अस्त काल में वरुण वर्ण वाला है, यह मध्याह्न काल में पिंगल वर्ण में रहता है, उदय काल में यह प्राणियों के कर्मो का विस्तार करता है इनके सहस्त्र अंश रूप रश्मिया हैं ये सब ओर दिशाओं में स्थित हैं हम इनके क्रोध को शांत करने के लिए यत्न शील रहते हैं।

व्याकरण

- **हेड** – क्रोधका पर्यायवाची शब्द है।
- **ईमहे** – ई-धातु से आत्मनेपद लट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप है।
- **श्रिताः** – शृङ्-धातु से तप्रत्ययान्त का रूप है।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः॥७॥

पदपाठ – असौ यः अवसर्प्पतीत्यवऽसर्पति नीलग्रीवइतिनीलऽग्रीवः विलोहितइतिविऽलोहितः उत एनम् गोपाइतिगोऽपाः अदृश्रन् अदृशन् उदाहार्यइत्युदऽहार्यः सःदृष्टः मृडयाति नः॥७॥

अन्वय का अर्थ – असौ – वह, यः नीलग्रीवः – जिसका कण्ठ नीला है, विलोहितः–विविध प्रकार के शुभ गुणों से युक्त, अवसर्पति – दुष्टों से विरुद्ध चलता है, उत –अथवा, एनम् – ये, गोपाः – गोपालक, अदृशन् –देख करके, उदाहार्यः – जल लाने वाली स्त्रियां, अदृश्रन् – देख के, दृष्टः – देखा हुआ, सः – वह सूर्यदेव, नः – हम सब धार्मिकों को, मृडयाति – सुखी करें।

व्याख्या –जो यह सूर्य उदय और अस्त होता हुआ निरंतर चलता रहता है। यह गोपा अथवा गोपाल भी वेदोक्त संस्कारहीन अदृश्य को देखते है। उदाहार्यः उदकं हरन्ति ता उदहार्यः 'मन्थौदन–' (पा. ६/३/६०) इत्यादि से उदक को उद आदेश। जल को लाने वाली स्त्रियाँ भी उसके स्वरूप को देखती है। गोपाल स्त्री आदि यह उसका अर्थ है। दृशेर्लुङि 'इरितो वा' (पा. ३/१/५७) इति च्लेरङ् रुगागमश्छान्दसः। किस प्रकार। नीलग्रीव विषधारण करने से नीली गर्दन कंठ है जिसका अस्तमय में नीलकण्ठ के समान लक्ष्य करके कहा। विशेष रूप से लाल। वह रुद्र हमको देखता हुआ हमें धन धान्य से पूर्ण करे। वह रूद्र हमे सुखी बनाए ॥७॥

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का सातवाँ मन्त्र है। इन रूद्र की ग्रीवा विष धारण से नीली हो गई थी। यह आदित्य रूप से उदय अस्त करते है। इनके दर्शन वेदोक्त कर्म से हीं गोप तथा जल ले जानी वाली महिलायें भी करती है। वे रूद्र दर्शन देने के लिए आते ही, वे हमारा कल्याण करें।

व्याकरण

- **उदहार्यः** – जल का हरण करने वाला जो हैं उसे उदहार्य कहते हैं अर्थात सूर्य, मन्थोदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च इससे (पा. ६.३.६०) उदक को उद आदेश।
- **अदृश्रन्** – दृश लुङ में इरितो वा (पा.३.१.५७) इस सूत्र से च्ले को अङ्, रुक आगम छन्द में।

टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्न 24.2

1. रुद्र के कितने वर्ण है?
2. हजार रश्मिरूप रुद्र कौन है?
3. रुद्र के कण्ठ का क्या वर्ण है?
4. गोपाल और स्त्री क्या देखती है?

24.2 द्वितीयभाग : मूलपाठ की व्याख्या - श्लोक 8-11

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः॥८॥

पदपाठ - नमः अस्तु नीलग्रीवायेतिनीलऽग्रीवाय सहस्राक्षायेति सहस्रऽअक्षाय मीढुषे अथोत्त्यथो ये अस्य सत्वानः अहम् तेभ्यः अकरम् नमः॥८॥

अन्वय का अर्थ - नीलग्रीवाय - नीलकण्ठ वाला, सहस्राक्षाय - हजार नेत्रों वाला, मीढुषे - पराक्रम युक्त, नमः - स्तुति करता हूँ अस्तु - वैसे ही हो। अथो - उसके बाद, अस्य - रुद्रदेव का, ये सत्वानः - जो सेवक हैं, अहम् तेभ्यः नमः अकरम् - मैं उनको भी नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या - नील गर्दन वाले और नीलकण्ठवाले रुद्र के लिए नमस्कार हो। किस प्रकार के लिए। सहस्र नेत्र है जिसके ऐसा इन्द्रस्वरूप वाले के लिए। वह वर्षा करने वाला कर्ता है, पर्जन्यरूप है यह उसका अर्थ है। अथवा तरुण के लिए। अथ और भी इस रुद्र के जो ये सामर्थ्यवान, शक्तिशाली सेवक उनके लिए भी मैं नमस्कार करता हूँ। 'कृञ् कृतौ' शप् लङ उत्तम पुरुष एकवचन में ॥८॥

सरलार्थ - यह रुद्राध्याय का आठवाँ मन्त्र है। नीले कंठ वाले, सहस्त्र नेत्र वाले, सेचन समर्थ पर्जन्य रूप रूद्र के निमित नमस्कार हो।

व्याकरण

- **मीढुषे** - मिमेहेति मीढ्वन्, तस्मै 'मिह सेचने' दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्च (पा ६.१.१२) इससे क्वसु अन्त निपात है।

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्न्योर्ज्याम्।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप॥९॥

पदपाठ - प्रेति मुञ्च धन्वनः त्वम् उभयोः आत्न्योर् ज्याम् याः च ते हस्ते इषवः परेति ताः भगवइतिभगऽवः वप॥९॥

अन्वय का अर्थ - भगवः - हे भगवन्, त्वम् - आप रुद्रदेव, धन्वनः - धनुष, उभयोः - दोनों और से, अत्न्योः पूर्व पर किनारों की, ज्याम् - प्रत्यंचा को छोड़, च - और, ते आपके, हस्ते - हाथ में, याः इषवः - जो बाण है, ताः परावप दूर करो।

व्याख्या – हे भगवान भग आदि छ ऐश्वर्य है जिसके पास वह भगवान्। 'मतुवसो रु: संबुद्धौ छन्दसि' (पा. ८/३/१) इससे रुत्व हुआ। 'ऐश्वर्य समग्र धर्मस्य यशस: श्रिय:। ज्ञानवैराग्ययोश्चौव षण्णां भग इतीरणा' ऐसा कहा गया। हे भगवन् धनुष की दोनों कोटियों में जयदायिनी हो। और जो तेरे हाथ में बाण है उनको आप दूर तक शत्रुओं पर फेकें ।।९।।

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का नौंवा मन्त्र है। हे भगवन धनुष की दोनों कोटियों में स्थित प्रत्यंचा को उतारलो और अपने हाथ में लिए बाणों को भी त्याग दो।

व्याकरण

- **प्रमुञ्च** – प्र-उपसर्गपूर्वक से मुञ्च का लोट्मध्यमपुरुष एकवचन में। मोचय यह अर्थ है।

विज्यं धनु: कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२॥
उत अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधि:॥१०॥

पदपाठ – विज्यमिति विऽज्यम् धनु: कपर्दिन: विशल्य:ऽइतिवि शल्य: बाणवानिति बाणऽवान् उत अनेशन् अस्य या इषव: आभु: अस्य निषङ्गधि:।

अन्वय का अर्थ – कपर्दिन: – जटाधारी, धनु: –धनुष, विज्यं – प्रत्यंचा से रहित, बाणवान् –बाण से युक्त हो, विशल्य: – बाण के अग्रभाग से रहित हो, उत – अथवा, अस्य या: इषव: – इसके जो बाण हैं वे, अनेशन् – नष्ट हो जावें, अस्य निषङ्गधि: – बाणादि कोष खाली न हो।

व्याख्या – जटाजूट है जिसकी ऐसा रुद्र है, उसका धनुष प्रत्यंचा रहित हो। उसकी प्रत्यंचा टूट जाए। और बाण है जिसके पास ऐसा वह बाणवान् (रूद्र) उसके बाण भी विफल हो जाए। बाणके आगे का भाग तेज नुकीला हमारे लिए न हो। इस रुद्र का जो बाण है वह नष्ट हो सकते है 'णश अदर्शने' नशेरत एत्व को अङि वा इत्येत्वम् पुषादित्व होने से च्लेरङ्। इस रुद्र का तलवार रखने का स्थान भी खाली रहे हमारे लिए अर्थात् इनकी म्यान में तलवार न हो। रुद्र हमारे प्रति सभी शस्त्र से रिक्त हो ।।१०।।

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का दसवाँ मन्त्र है। इन जटाधारी रूद्र का धनुष प्रत्यंचा से रहित हो जाए और तरकस फल वाले बाणों से खाली हो, इनके जो बाण हैं, वे दिखाई न पड़े इनके खड्ग रखने का स्थान भी खाली हो, हमारे लिए रूद्र हथियारों को नितांत त्याग दे।

व्याकरण

- **कपर्दिन:** – कपर्द: अस्यास्तीति विग्रह करने पर अत इनिठनौ इससे इनिप्रत्यय करने पर निष्पन्नकपर्दिन्-शब्द का षष्ठी एकवचन का रूप है।
- **अनेशन्** – नश्यन्तु इति 'णश अदर्शने' इस धातु से नश होने से अत अङि वा इससे पुषादि होने से च्लि को अङ्।
- **कपर्दिन:** – उग्र कपर्दी श्रीकण्ठ शितिकण्ठ: कपालभृत् इत्यमर:।

टिप्पणियाँ

या तें हेतिर्मीढुष्टम हस्तें बभूव ते धनुः।
तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज॥११॥

पदपाठ - या तें हेतिः मीढुष्टम। मीढुस्तमेतिमीढुःऽतम हस्तें बभूव ते धनुः तया अस्मान् व्विश्श्वतः त्वम् अयक्ष्मया परीति भुज।

अन्वय का अर्थ - मीढुष्टम - अत्यन्त शक्तिशाली, ते - आपका, हस्ते - हाथ में, या धनुः - जो धनुष हेतिः वज्र धनु - सम्बन्धी - आयुध हैं, वे निरर्थक, तया अयक्ष्मया - उस क्षय रोग से रहित आयुध से, त्वम् - आप स्वयं, अस्मान् - हमारी, विश्वतः - सब और से पालन कीजिए।

व्याख्या - अतिशयेन मीढ्वान्मीढुष्टमः 'तसौ मत्वर्थे' (पा. १/४/१९) इससे भसंज्ञा होने पर 'वसोः संप्रसारणम्' (पा. ६/४/३१) इससे संप्रसारण हुआ। षत्वष्टुत्व होने पर। हे शक्तिशाली रूद्र, आपके हाथ में जो धनुष या धनूरूप आयुध हैं। एक तेपद पादपूरण के लिए। उस धनूरूप वज्र से हमारी सब और से रक्षा कीजिए। भुजेर्विकरणव्यत्यय करने पर शप्रत्यय। वो किस प्रकार की। जिस प्रकार किसी रोगी को यक्ष्मा हो और फिर वैद्य उसको दूर करता है उसी प्रकार उपद्रव को शांत करें॥११॥

सरलार्थ - यह रुद्राध्याय का ग्यारहवाँ मन्त्र है। हे सिचनशील रूद्र, तुम्हारे हाथों में जो धनुष और बाण है, उन्हें उपद्रव रहित कर सब और से हमारा पालन करो।

व्याकरण

- **बभूव** - भू-धातु से लिट्लकार में प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।
- **मीढुष्टम** - अतिशयेन मीढ्वान्मीढुष्टमः 'तसौ मत्वर्थे' (पा. १/४/१९) इससे भसंज्ञा होने पर 'वसोः संप्रसारणम्' (पा. ६/४/३१) इससे संप्रसारण। षत्व को ष्टुत्व हुआ।
- **धनुः** - षकारान्त नपुंसक धनुष-शब्द का रूप है।

पाठगत प्रश्न 24.3

1. सहस्र नेत्र किसके है?
2. उपासकों के द्वारा क्या दूर फेंकने के लिए रुद्र से प्रार्थना की?
3. 'मीढस्तुम' इसका क्या अर्थ है?
4. रुद्र के धनुष सम्बन्धि आयुध किस प्रकार के है?
5. कपर्दिनः इसका निर्वचन करो?
6. अयक्ष्मा इसका अर्थ लिखो।

24.2.1 मूलपाठ की व्याख्या- श्लोक 12-14

परिं ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम्॥१२॥

पदपाठ - परीतिं ते धन्वनः हेतिः अस्मान् वृणक्तु विश्वतः अथो इत्यथो यः इषुधिरितीषुऽधिः तव आरे अस्मत् नीतिं धेहि तम्।

अन्वय का अर्थ - ते - आपके, धन्वनो हेतिः - धनुष -सम्बन्धि -आयुध, विश्वतः - चारों और से, नः - हमको, परिवृणक्तु - छोड़ दें। अथो उसके बाद, आपके जो बाण है, तम्- उसको, अस्मत् - हमारे समीप से, निधेहि - निरन्तर धारण कीजिए, उस बाण को हमारे हाथ में रख दीजिए।

व्याख्या - हे रुद्र, आपका धनुष का बाण हमारी सब और से रक्षा करे। वह हमारी हिंसा न करे। 'वृजी वर्जने' रुधादि होने से श्नम् प्रत्यय। और भी जो आपके तर्कस है उसको भी हमसे दूर रखें ॥१२॥

सरलार्थ - यह रुद्राध्याय का बारहवाँ मन्त्र है। हे रूद्र तुम्हारे धनुष से सम्बन्धित बाण हमे सब और से त्याग दे, तुम अपने तरकसों को हमसे दूर ही रखो।

व्याकरण

- परि ... वृणक्तु-, यहाँ परि यह उपसर्ग, मध्य पदो का व्यवच्छेदतो वैदिकप्रयोग होने से साधु है। वृणक्तु यहाँ वृजी वर्जने इस धातु से रुधादि होने से श्नम्।
- **इषुधिः** - तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः इत्यमरः।

अवतत्य धनुष्ट्वं सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव॥१३॥

पदपाठ - अवतत्येत्यवऽतत्य धनुः त्वम् सहस्राक्षेतिसहस्र अक्ष शतेषुध इति शत इषुधे निशीर्य्येति निऽशीर्य शल्यानाम् मुखा शिवः नः सुमनाइतिसुऽमनाः भव।

अन्वय का अर्थ - सहस्राक्ष - हे सहस्र नेत्र वाले, शतेषुधे सौ बाण से युक्त, त्वम् - आपका, धनुः -धनुष, अवतत्य विस्तार करके, शनल्यानां - बाणसमूह का, मुखा - अग्रभाग को, निशीर्य- अच्छि प्रकार से तेज करके, नः - हमारे, प्रतिशिवः शान्त, और कल्याणकारी हो।

व्याख्या - हे हजार नेत्र वाले और सौ बाण से युक्त रूद्र, हे शतेषुध, आप हमारे प्रति कल्याणकारी शान्त और मंगलमय हों। अनुग्रहित करें। क्या करके। धनुष को तान कर और बाणों के फलों के मुख को खूब तेज करके भी हमारे लिए कल्याणकारी हों॥१३॥

सरलार्थ - यह रुद्राध्याय का तेरहवाँ मन्त्र है। हे सहस्त्र नेत्र वाले रूद्र, तुम्हारे पास सैकड़ो तरकस है, तुम अपने धनुष को प्रत्यंचा रहित कर बाणों के फल को भी निकाल दो इस प्रकार हमारे लिए कल्याणकारी और श्रेष्ठ मन वाले हो जाओ।

व्याकरण

- **निशीर्य** – 'शृ हिंसायाम्' 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' 'ऋत इद्-धातोः' (पा. ७/१/१००) इति।
- **शतेषुधे** – सौ बाण हैं जिसके पास शतेषुधि। हे शतबाण से युक्त यह अर्थ है।

नमस्त आयुधायानाततायधृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने॥१४॥

पदपाठ – नमः ते आयुधाय अनाततायधृष्णवे उभाभ्याम् उत ते नमः बाहुभ्यामितिबाहुऽभ्याम् तवं धन्वने॥

अन्वय का अर्थ – ते – आपका, अनाततायधृष्णवे –प्रगल्भता को प्राप्त होने वाले, आयुधाय नमः –आयुध को उद्देश्य करके नमस्ते करते हैं, उत – अथवा, ते – आपके, उभाभ्याम् बाहुभ्यां – दोनों हाथों को, नमः – स्तुति करता हूँ, तव धन्वने और आपके धनुष को भी नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या – हे रुद्र, आपके आयुध के लिए नमस्कार हो। आपके बाण के लिए नमस्कार हो। किस प्रकार का। अपने आशय को गुप्त रखने वाले के लिए। प्रगल्भता को प्राप्त होने के लिए। धृषेः क्नुप्रत्यय है। शत्रुओं को मारने में प्रवृत होने वाले हो इस प्रकार के आयुध के लिए। और भी आपकी भुजाओं को नमस्कार, आपके धनुष को भी नमस्कार। उनका भी अत्यंत विस्तार हो॥१४॥

सरलार्थ – यह रुद्राध्याय का चौदहवाँ मन्त्र है। हे रूद्र तुम्हारे धनुष पर चढ़े बाण को नमस्कार है तुम्हारे दोनों बाहुओं को और शत्रुओं को मारने में कुशल धनुष को भी मेरा नमस्कार।

व्याकरण

- **उभाभ्याम्** – उभशब्द का नित्यद्विवचनान्त है।
- **उत** – यह अव्यय पद है। अर्थाः – अत्यर्थम्। विकल्पः। समुच्चयः। वितर्कः। प्रश्नः। पादपूरणम्।

पाठगत प्रश्न 24.4

1. निधेहि इसका अर्थ लिखिए।
2. धन्वनो हेतिः इसका क्या अर्थ है?
3. धनुष्ट्वम् इसका सन्धि विच्छेद करो।
4. निशीर्य यहाँ पर क्या प्रत्यय है?
5. उपासक रुद्र का क्या उद्देश्य करके नमस्कार करते है?

24.3 रुद्र देवता का स्वरुप और वैशिष्ट्य

शुक्ल यजुर्वेद में रुद्र अध्याय में रुद्र देवता का स्वरूप तथा वैशिष्ट्य की विस्तार से समालोचना की है। शैवधर्म की उत्पति का तथा प्रसार के इतिहास में शुक्लयजुर्वेद का अत्यन्त महत्त्व है, यहाँ लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। शुक्लयजुर्वेदसंहिता का सोलहवाँ अध्याय रुद्राध्यायनाम से प्रसिद्ध है। रुद्रशब्द का अर्थ: भीषण अथवा भयङ्कर है। पापी मनुष्यों को दु:खभोग से रुलाते है वह रुद्र है। और दु:ख को दूर करता है वह रुद्र है। अथवा 'रु गतौ' यह गत्यर्थ और ज्ञान अर्थ में है। गमन करने वाला अथवा ज्ञान को प्राप्त कराने वाले रुद्रभाव में क्विप् तुक आगम। रुत् अथवा ज्ञानप्रद है।

ऋग्वेद में रुद्र अन्तरीक्षस्थान के देव, मरुतो के पिता के रूप में प्रसिद्ध है। शुक्लयजुर्वेद के चार सूक्त में तथा एकसूक्त भागमात्रसोमदेव के साथ उसकी स्तुति दिखाई देती है। ऋग्वेद में भी रुद्र के भयङ्कर रूप का अनेक स्थल में वर्णन है। वैदिकदेवता का बाह्यप्रतीक प्रत्येक एक एक प्राकृतिक घटना रूप में है। उस रुद्रदेव का प्रतीक वज्र है। अत: वज्र का अधिष्ठाता देवता रुद्र जगत प्रपञ्च का स्वामी रूप से प्रसिद्ध है। वज्र का उत्पन्नकाल में अर्थात् वज्रपतनकाल में उसका भीषणशब्द से त्रिभूवन भयभीत होता है। यह ही घटना रूपक आवरण से कहते हैं की जो रुद्र जन्म-क्षण में भीषण चित्कार करता है। वज्र के साथ भीषण-विनाश शब्दों का नित्य संम्बद्ध है। उससे उसका अधिष्ठाता देव रुद्र भीषण और गर्जनशील है। ऋग्वेद में रुद्रदेवता को उद्दिश्य करके स्तुतिनिवेदकसूक्त में हमेशा भयानकरूप से अथवा संहारकरूप से यह प्रकट होता है। उस रुद्र का रुद्ररूपदर्शन के साथ उसका कल्याणमयरूप का भी वर्णनवेद में अनेक जगह प्राप्त होता है। जैसे वह वैद्यश्रेष्ठ इससे भी जाना जाता है। तथा वेद में कहा गया है -**भिषक्तं त्वां भिषजां शृणोमि** (ऋ २।३३।४)। ऋग्वेद के किसी एक मन्त्र में (२।३३।२) रुद्र को उद्देश्य करके प्रार्थना भी की गई है, जैसा कहा गया है - **शतं हिमा अशीय भेषजेभि:** इति अर्थात् हे रुद्रदेव जिससे हम तेरे द्वारा दी गई औषधि से सौ वर्ष जिन्दगी बितातें हैं। भीषण रुद्र का वेद में चिकित्सक होने से वर्णन में उसका कल्याणरूप का भी परिचय प्राप्त होता है। उससे ही वेद में भेषज और जलाष इन दो शब्द का रुद्रसम्पर्क में प्रयोग होता है।

रुद्रदेव के चारित्रिक वर्णन भी ऋग् यजुर्वेदभेद से भिन्न होता है। जैसे ऋग्वेद में रुद्र के संहारक होने का अधिकवर्णन है। और भी यजुर्वेद में **घोर: घोरतर:** तथा **शिव: शिवतर:** इति। और वह यजुर्वेद में शिव-शङ्कर-मयस्कर-शम्भव-मयोभव आदि कल्याणवाचकसंज्ञा के द्वारा स्तुति करते हैं। प्रत्येक विशेषणवाचकशब्द का अर्थ कल्याणजनितसुख है। जो रुद्र है वह ही शिव है। किन्तु शुक्लयजुर्वेद में शिवरुद्र के मध्य में विपरीत और उनका समन्वय दिखाई देता है। केवल आर्यों का ही नहीं अनार्यों का और अन्य मनुष्यों के देवतारूप से उस रुद्र का वर्णन है। केवल उच्च वर्णों का ही नहीं अपितु कुलालों का, लौहकारों का और व्याध आदि का वह देव और पालक है। केवल मनुष्यों का अपितु समस्त प्राणियों का जैसे गाय, घोड़े, कुते आदि का वह ही पालक

टिप्पणियाँ

है। केवल सज्जनों का नहीं अपितु दुष्टों का और लुटेरों का भी देवता और पालक वह ही है। उससे उस रुद्र में अनेक विपरीत धर्मों का एक ही जगह समावेश दिखाई देता है। और वह आर्य-अनार्यों का सज्जन और दुष्टों का वह सभी का उपास्य है। एक ही वह शिव शान्त पालक और उपास्य है, अन्य वह रुद्र भीषण और संहारक है। शुक्लयजुर्वेद में रुद्र सगुणदेवों का अतिक्रमण करके निर्गुण परमेश्वर रूप में परिणत हुए।

रुद्र अध्याय में अनार्यलुण्ठक अन्य आदि मनुष्यों का उपासक और पालकरूप में रुद्र का वर्णन है। इसलिए आदि में वह रुद्र अनार्यों का उपास्य था और बाद में आर्यों का वह पूज्य हुआ, इसलिए वह आर्यों का और अनार्यों का उपास्य है ऐसा कुछ पण्डित मानते है। परन्तु ऋग्वेद में रुद्रसम्पूर्ण आर्यदेव है। कुछ ब्राह्मणग्रन्थों के द्वारा जाना जाता है की वह आर्य और अनार्य दोनों धर्म में रुद्रदेव की पूजा प्रचलितथी।

शुक्लयजुर्वेद में रुद्राध्याय काव्यसौन्दर्य से मण्डित है। इस अध्याय में रुद्र पशुपति-शम्भु-शिव-शङ्कर-गिरिश- गिरिशन्त- शितिकण्ठ-नीलग्रीव-कपर्दि-आदि अनेक नामों से अलंकारित हैं। ऋग्वेद में रुद्र वज्र का अथवा वायु का देवता है। शुक्लयजुर्वेद में केवल वज्र का ही नहीं वायु के साथ ही नहीं अपितु सूर्य के साथ भी रुद्र का अभिन्नत्व अनेक मन्त्रों के द्वारा प्रतिपादित किया है। वहाँ रुद्र सूर्य का ही एक अंश है। उससे सूर्य उदय अस्तचल के अनुसार से प्रत्येक मुहूर्त को पृथक् पृथङ् नाम के साथ भी उसकी स्तुति की है। सूर्योदयकाल में अस्तांचलसमय में सूर्य की हजार किरणें स्पष्ट होती है। ऋषिरूप का कवि कल्पना के साथ सूर्यविम्ब मस्तक के समान और जटा सूर्य की किरणें के समान चारो और फैली हुई है। कपर्दी जटाशब्द का वाची है। जिसकी जटा है वह कपर्दी कहलाता है। उससे सूर्य के साथ एकात्मभूतरुद्र का अन्य नाम कपर्दी है (१६।१०)। (रुद्राध्याय के सातवें मन्त्र में काव्यसौन्दर्य का)। अस्तगामी सूर्यरूप से रुद्र का नीलग्रीव इस नाम की उत्पत्ति हुई है। अस्ताचलसमय में आकाश को रंग बिरंगा बना देता है। तब सुनहरे से मण्डित सूर्य पश्चिम की दिशा में शोभित होता है। सूर्यविम्ब के मध्य में नीलवर्ण की एक रेखा लक्षित है। मध्यभाग शरीर का कण्ठ के समान है। ग्रीव कण्ठ का पर्यायवाची है। ग्रीव के नीलवर्ण होने से सूर्य नीलग्रीव नीलकण्ठ इस नामका प्रसिद्ध है। अतः सूर्य के साथ अभिन्न आत्मा रुद्र का भी नाम नीलग्रीवअथवा नीलकण्ठ है। वैसे ही सातवें मन्त्र में कहा गया है

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मडयति नः॥

इसी प्रकार सूर्य रूप रुद्रदेवता का अस्तांचलसमय में रम्य मुहूर्तआकृषण होता है। तब गाये घर के प्रति पुन आते है। गायों के आने के साथ गायों के पालक गोपाल भी सूर्यरूप रुद्र के साथ सृष्टि के परिवेश से आकृष्ट होकर के उस रुद्रदेव को देखते हैं। यह समय गावों की रमणियों के लिए भी जल लाने का है। वे रमणीय भी जल लाने के समय आकृष्ट होकर रुद्रदेव की अपूर्वलीला को देखते हैं। रुद्राध्याय में काव्यरूप से यह मन्त्र काव्यकल्पना का और अलंकार से अलंकृत है।

पाठ का सार

विशेष रूप से शैवधर्म का प्रचार इस अध्याय में विद्यमान है। उसका वैशिष्ट्य और स्वरूप का भी विस्तार से यहाँ वर्णन किया गया है। वह रुद्र भयङ्कर था। जन्म समय में स्वयं ही भीषण क्रन्दन करता है और उस शब्द से सम्पूर्ण भुवन कम्पायमान होता है वह रुद्र है। ऋग् यजुर्वेद भेद से उस रुद्र का वर्णन भी पृथक् होता है। वैदिक देवता के बाह्यप्रतीक को प्रत्येक एक-एक प्रकृतिक घटना है। उससे रुद्रदेव का प्रतीक वज्र है। रुद्रदेव हमेशा भयङ्कर नहीं होते हैं। उस रुद्र रूप के साथ उसका कल्याणमयरूप भी है। जैसे वह वैद्यराज है। वह वैद्यरूप से सभी को आरोग्य देता है। शिव, शङ्कर, मयस्कर, शम्भु, और मयोभव उसके कल्याणवाचक शब्द हैं। वह केवल आर्यों का ही नहीं अनार्यों का मनुष्यों का समस्त प्राणियों का उपास्य और पालक देवता है। सूर्य अस्तांचल समय में आकाश रक्तरञ्जित होता है। तब सूर्यविम्ब का मध्य भाग में एक विशिष्ट नीलवर्ण रेखा प्रतीत होती है। साधारण रूप से शरीर के मध्यभाग के समान कण्ठ है। सूर्य का मध्यभाग के कण्ठ का नीलवर्ण रूप से प्रतीयमान होने से सूर्य का नाम नीलकण्ठ हुआ। सूर्य के साथ रुद्र का अभेदप्रतिपादन होने से रुद्र का भी नाम नीलकण्ठ है। अब आदित्यरूप से रुद्र की स्तुति करते है। जो यह रुद्र ताम्रवर्ण, अरुणवर्ण, पिङ्गलवर्ण और सुमङ्गल तथा जो ये असंख्य किरणें हैं उनके क्रोध को हम भक्ति के साथ निवारण करते हैं। आदित्यरुप रुद्र हमेशा दर्शनीय है। सूर्यास्तचल समय में सूर्यदेव का अथवा रुद्रदेव की लालिमा को गोपालक और गांव की रमनिया रुद्रदेव की लीला को देखते हैं। नीलग्रीवा की हजार आखों को भंयकर रुद्र के लिए तथा उनके गणों के लिए हम नमस्कार करते हैं। हे भगवन् रुद्रदेव अपनी धनुष बाण से मुक्तकरो, अपने हाथो में धारण किये बाणों को हटा दीजिए। रुद्र का धनुष बाण और तलवार विफल हो। वह हमारे प्रति बिना अस्त्र के रहे। आयुधधारणनिमित्त रुद्र के रौद्र रूप अतिभयानक है। इसलिए हमारे प्रति जैसे वह शान्त और सुंदर मन वाले हो उसके लिए प्रार्थना करते है। हे रुद्रदेव बालकों का युवाओं का गर्भस्थ शिशु को, हमारे गुरु, पितृव्य आदि, माता-पिता और अपने सगे सम्बन्धियों का नाश मत करिए। सभी के प्रति आप हमेशा अनुग्रहशील हो ऐसी हम बार-बार प्रार्थना करते हैं।

पाठांत प्रश्न

1. रुद्रस्वरुप को लिखिए।
2. रुद्र का वैशिष्ट्य लिखिए।
3. सूर्य का नीलकण्ठ इस नामको सार्थक प्रतिपादित कीजिए।
4. रुद्रसूक्त का सार लिखिए।
5. नमस्ते रुद्र ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।

6. यामिषु गिरिशन्त ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
7. शिवेन वचसा त्वा ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
8. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
9. विज्यं धनुः ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
10. नमस्त आयुधायानाताय ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
11. परि ते धन्वनो ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
12. या ते हेतिर्मीढुष्टम ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

24.1

1. मङ्गलमय, भय से शून्य, पुण्यस्वरूप और प्रकाशक है।
2. शत्रुओं के नाश के लिए।
3. जगत् को रोग से मुक्त करने के लिए और कल्याण प्रदान करने के लिए।
4. रुद्र।

24.2

1. राक्षसों का समूह।
2. लाल, सुनहरा और पीला।
3. सूर्य।
4. नीलवर्ण।

24.3

1. अस्ताचल होने वाले सूर्य को।
2. रुद्र का।
3. बाण को।

4. अनेक कार्यों को पूर्ण करने वाले शक्तिशाली।

5. रोग रहित।

6. कपर्दः अस्यास्तीति विग्रह करने पर अत् इनिठनौ इससे इनिप्रत्यय करने पर निष्पन्न कपर्दिन्-शब्द का षष्ठी एकवचन में रूप है।

24.4

1. रोगहीन यह अर्थ है।

2. स्थापित करो।

3. धनुष सम्बन्धि आयुध को।

4. धनुः+त्वम्।

5. ल्यप्-प्रत्यय।

6. दुष्टों को दण्ड देने के लिए उसके आयुध के लिए तथा उसकी भुजाओं के लिए और धनुष के लिए नमस्कार करते हैं।

॥ चौबिसवाँ पाठ समाप्त ॥

25

पृथ्वी सूक्त

ऋषियों के द्वारा दृष्ट शब्दों की आख्या को वेद कहते है। और वे शब्द यथैव मौखिक परम्परा से हजार वर्षों से आस्तिकों के द्वारा सुरक्षित की। क्योंकि संस्कृत साहित्य में वेदों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में धर्म व्यवस्था वेदों के आधार पर ही है। वेदों को आधारित करके स्मृति आदि रचना की है। वेद स्वयं में ही प्रमाण है। स्मृति आदि तो वेदमूलक होने से प्रमाणरूप में स्वीकार किया। इसलिए श्रुति और स्मृति में विरोध होने पर श्रुति को ही प्रमाण माना जाता है। केवल धर्ममूलक होने से ही वेदों का आदर किया जाता है, अपितु विश्व में सबसे प्राचीनग्रन्थ होने से भी इनका आदर किया जाता है। प्राचीन धर्मसमाज-व्यवहार-आदि और वस्तुओं के उत्पन्न होने का ज्ञान वेदों के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। "विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्थाः यैः ते वेदाः इति"। सायण ने तो "अपौरुषेयं वाक्यं वेद" ऐसा कहा। इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः अलौकिकम् उपायं यो वेदयति स वेद इति। और भी कहा गया -

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥" इति।

वेद चार होते हैं। वे - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। इस प्रकृतपाठ में अथर्ववेद के अन्तर्गत पृथ्वी सूक्त का वर्णन किया गया है। जैसे इन्द्रादिसूक्तों में इन्द्र आदिदेवों के विविध रूप से वर्णन किया वैसे ही पृथ्वी सूक्त में भी पृथ्वी के विविधरूप का वर्णन है। वस्तुत अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में (१२.१) ६३ मन्त्र हैं। उन मन्त्रों से बीस मन्त्र इस पाठ में दिये हैं। इस सूक्त के अथर्वा ऋषि, भूमि और पृथ्वी देवता। अथर्वा ऋषि ने पृथ्वी का विविध रूप से वर्णन किया।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंग :

- पृथ्वी सूक्त के संहितापाठ को स्वर सहित जान पाने में;
- पृथ्वी सूक्त के पदपाठ को जान पाने में;

- पृथ्वी सूक्त के मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- सरलता से पृथ्वी सूक्त के अर्थ को समझ पाने में;
- पृथ्वी सूक्त के शब्दों के व्याकरण बिन्दुओं को जान पाने में;
- पृथ्वी सूक्त का विविधरूप से वर्णन कर पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक लौकिक शब्दों का भेद समझ पाने में।

25.1 मूलपाठ

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥१॥

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥२॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥३॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु॥४॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु॥५॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥६॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥७॥

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योऽमन्त् सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे॥८॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयोदुहामथो उक्षतु वर्चसा॥९॥

टिप्पणियाँ

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः॥१०॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥११॥

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥१२॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहत्याः पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना॥१३॥

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान् मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥१४॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥१५॥

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्याम्॥१६॥

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा॥१७॥

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन॥१८॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः॥१९॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम्।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्॥२०॥

25.1.1 मूलपाठ की व्याख्या : श्लोक 1-10

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥१॥

पदपाठ - सत्यम्। बृहद्। ऋतम्। उग्रम्। दीक्षा। तपः। ब्रह्म। यज्ञः। पृथिवीम्। धारयन्ति॥ सा। न। भूतस्य। भव्यस्य। पत्नी। उरुम्। लोकम्। पृथिवी। नः। कृणोतु॥१॥

अन्वय - सत्यं बृहत् ऋतम् उग्रं दीक्षा तपः यज्ञः पृथ्वीं धारयन्ति। भूतस्य भव्यस्य पत्नी सा नः पृथ्वी नः लोकम् उग्रं करोतु।

सरलार्थ - महत सत्य आदि पृथ्वी को धारण करते हैं। भूत और भविष्य में आने वाले प्राणियों को यह पत्नी रूपी पृथ्वी हमारे लिए महान ऐश्वर्य धन धान्य आदि प्रदान करे।

व्याकरण

- **ऋतम्** - ऋ-धातु से क्त प्रत्यय करने पर।
- **धारयन्ति** - धृ-धातु से णिच लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **कृणोतु** - कृ-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥२॥

पदपाठ - असम्ऽबाधम्। मध्यतः। मानवानाम्। यस्याः। उत्ऽवतः। प्रऽवतः। समम्। बहु॥ नानाऽवीर्याः। ओषधीः। या। बिभर्ति। पृथिवी। नः। प्रथताम्। राध्यताम्। नः॥२॥

अन्वय - यस्याः बहु उद्वतः प्रवतः समं मानवानां मध्यतः असम्बाधं याः नानावीर्याः ओषधीः बिभर्ति, पृथ्वी नः प्रथताम्, नः राध्यताम्।

सरलार्थ - जो अबद्ध मनुष्यों को भी प्रेम में बंधन करती है, जो भूमि वैचित्र्य पूर्ण है, जो अनेक शक्ति से सम्पन्न औषधि वृक्षो को धारण करती है, वह पृथ्वी हमारे समीप में विस्तृत हो, हमारे लिए वह कल्याणकारी हो।

व्याकरण

- **प्रथताम्** - प्रथ्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **राध्यताम्** - राध्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **नानावीर्याः** - नाना वीर्याणि यासां ताः इति बहुव्रीहिसमास।
- **बिभर्ति** - भृ-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

टिप्पणियाँ

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥३॥

पदपाठ - यस्याम्। समुद्रः। उत। सिन्धुः। आपः। यस्याम्। अन्नम्। कृष्टयः। सम्ऽबभूवुः॥ यस्याम्। इदम्। जिन्वति। प्राणत्। एजत्। सा। नः। भूमिः। पूर्वऽपेये। दधातु॥३॥

अन्वय - यस्यां समुद्रः सिन्धुः उत आपः, यस्याम् अन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः, यस्याम् इदं प्राणत् एजत् जिन्वति, सा भूमिः नः पूर्वपेये दधातु।

सरलार्थ - जहां समुद्र नदियाँ और सरोवर आदि हैं, जहां धन, धान्य, फसल से कृषि करने वाले मनुष्य उन्नत होते हैं, जहाँ प्राणशील और गतिशील (कम्पनशील) जीवन व्यतीत करते हैं, वह भूमि हमको प्रथम दुग्धपान के समान आनन्द में सदैव रखे।

व्याकरण

- **सम्बभूवुः** - सम्पूर्वक भू-धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **प्राणत्** - प्रपूर्वक अन्-धातु से शतृप्रत्यय करने पर।
- **एजत्** - एज्-धातु से शतुप्रत्यय करने पर।
- **जिन्वति** - जिन्द्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **दधातु** - धा-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु॥४॥

पदपाठ - यस्याः। चतस्रः। प्रऽदिशः। पृथिव्याः। यस्याम्। अन्नम्। कृष्टयः। सम्ऽबभूवुः॥ या। बिभर्ति। बहुऽधा। प्राणत्। एजत्। सा। नः। भूमिः। गोषु। अपि। अन्ने। दधातु॥४॥

अन्वय - यस्याः पृथिव्याः चतस्रः प्रदिशः, यस्याम् अन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः, या प्राणत् एजत् बहुधा बिभर्ति, मा भूमिः नः गोषु अपि अन्नेषु दधातु।

सरलार्थ - जिस पृथ्वी की चार दिशा है, जिस पृथ्वी पर धान्य आदि शस्य (फसल) और मनुष्य उत्पन्न होते है, जो पृथ्वी प्राण शीलों को और गतिशीलों को (कम्पशील को) विविध प्रकार से धारण करती है, वह पृथ्वी हमे गाय आदि पशुधन में और अन्न आदि में रखे।

व्याकरण

- **कृष्टयः** - कृष्-धातु से भाव में क्तिन्प्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन का रूप बनता है।
- **संबभूवुः** - सम्पूर्वक भू-धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु॥५॥

पदपाठ - यस्याम्। पूर्वे। पूर्वऽजनाः। विचक्रिरे। यस्याम्। देवाः। असुरान्। अभिऽअवर्तयन्। गवाम्। अश्वानाम्। वयसः। च। विऽस्था। भगम्। वर्चः। पृथिवी। नः। दधातु॥५॥

अन्वय - यस्यां पूर्वे पूर्वजनाः विचक्रिरे यस्यां देवाः असुरान् अभ्यवर्तयन्। पृथ्वी गवाम् अश्वानां वयसः च विष्ठा, न भगं वर्चः दधातु।

सरलार्थ - जिस पृथ्वी पर पूर्वजों ने अनेक कर्म किये, जिस पृथ्वी पर देवों ने असुरों को पराजित किया, जिस पृथ्वी ने गाय आदि को अनेक प्रकार का आश्रय स्थान दिया, वह पृथ्वी हमारे लिए ऐश्वर्य और तेज दे।

व्याकरण

- **विचक्रिरे** - विपूर्वक कृ-धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **अभ्यवर्तयन्** - अभिपूर्वक वृ-धातु से णिच लङ प्रथमपुरुष बहुवचन में।
- **विष्ठा** - विपूर्वक स्था-धातु से कप्रत्यय करने पर।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥६॥

पदपाठ - विश्वम्ऽभरा। वसुऽधानी। प्रतिऽस्था। हिरण्यऽवक्षा। जगतः। निवेशनी॥ वैश्वानरम्। बिभ्रती। भूमिः। अग्निम्। इन्द्रंऽऋषभा। द्रविणे। नः। दधातु॥६॥

अन्वय - विश्वंभरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा, जगतः निवेशनी, इन्द्रऋषभा भूमिः वैश्वानरम् अग्नि बिभ्रती नः द्रविणे दधातु।

सरलार्थ - विश्व का भरणपोषण करने वाली, धन को धारण करने वाली, सभी को आश्रयस्थान देने वाली, हृदय में सुवर्ण को धारण करने वाली, मनुष्य आदि का निवासस्थान अथवा जगत में उत्पन्न प्राणियों का शैथिल्य प्रदान करने वाली, इन्द्र के द्वारा रक्षित पृथ्वी वैश्वानर को धारण करती है वह हमें धन प्रदान करे।

व्याकरण

- **विश्वम्भरा** - विश्व का जो भरण - पोषण करती है वह विश्वम्भरा।
- **वसुधानी** - वसु उपपद धा-धातु से ल्युट् ङीप करने पर।
- **हिरण्यवक्षा** - हिरण्यं वक्षे यस्याः सा इति बहुव्रीहि समास।
- **निवेशनी** - नि उपपद विश्-धातु से ल्युट ङीप करने पर।
- **विभ्रती** - विपूर्वकभृ-धातु से शतृप्रत्यय और ङीप करने पर।
- **इन्द्रऋषभा** - इन्द्रः ऋषभः यस्याः सा इति बहुव्रीहि समास।

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥७॥

पदपाठ - याम्। रक्षन्ति। अस्वप्नाः। विश्वऽदानीम्। देवाः। भूमिम्। पृथिवीम्। अप्रऽमादम्॥ सा। नः। मधु। प्रियम्। दुहाम्। अथो इति। उक्षतु। वर्चसा॥७॥

अन्वय - यां पृथ्वी भूमिम् अस्वप्नाः देवाः विश्वदानीम् अप्रमादं रक्षन्ति सा (पृथ्वी) नः प्रियं मधु दुहाम् अथो वर्चसा उक्षतु।

सरलार्थ - निद्रा से रहित देव और प्रमादरहितसन्त जिस विस्तृत पृथ्वी की रक्षा करते है वह ही पृथ्वी मधुर सुंदर धान्य और तेज प्रदान करे।

व्याकरण

- **रक्षन्ति** - रक्ष्-धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **विश्वदानीम्** - विश्व उपपद धा-धातु से ल्युट् और ङीप् करने पर।
- **दुहाम्** - आत्मनेपद दुह्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **उक्षतु** - उक्ष्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योऽमन्त् सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे॥८॥

पदपाठ - या। अर्णवे। अधि। सलिलम्। अग्रे। आसीत्। याम्। मायाभिः। अनुऽअचरन्। मनीषिणः॥ यस्याः। हृदयम्। परमे। विऽओमन्। सत्येन। आऽवृतम्। अमृतम्। पृथिव्याः॥ सा। नः। भूमिः। त्विषिम्। बलम्। राष्ट्रे। दधातु। उत्ऽउत्तमे॥८॥

अन्वय - या अग्रे अर्णवे सलिलम् अधि आसीत् यां मनीषिणः मायाभिः अन्वचरन्, यस्याः पृथिव्याः सत्येन आवृतम्, अमृतं हृदयं परमे व्योमन् सा भूमिः न बलं उत्तमे राष्ट्रे दधातु।

सरलार्थ - जो पृथ्वी प्रारम्भ में समुद्र के मध्य में स्थित थी, मनस्वियों को जो बुद्धि से प्राप्त होती है, जिस पृथ्वी के अमृतहृदय को सत्य से ढका हुआ है वह पृथ्वी हमारे उत्तमराष्ट्र में समृद्धि प्रदान करे अथवा वह भूमि हमारे लिए उत्तमराष्ट्र के लिए तेज और शक्ति को प्रदान करे।

व्याकरण

- **अन्वचरन्** - अनु उपपदचर्-धातु से लङ प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **व्योमन्** - व्योम्नि इसका यह वैदिक रूप है।

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयोदुहामथो उक्षतु वर्चसा॥९॥

पदपाठ - यस्याम्। आपः। परिऽचराः। समानीः। अहोरात्रे इति। अप्रऽमादम्। क्षरन्ति। सा। नः। भूमिः। भूरिऽधारा। पयः। दुहाम्। अथो इति। उक्षतु। वर्चसा ॥९॥

अन्वय - यस्यां परिचरा आपः समानी अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति। भूरिधारा सा भूमिः नः पयः दुहाम् अथो वर्चसा उक्षतु।

सरलार्थ - जिस पृथ्वी के चारो दिशाओं में जल विचरण करता है, दिन और रात निर्विघ्न रूप से चलते रहते हैं। इस प्रकार अनेक धारा से सम्पन्न पृथ्वी हमारे लिए दुग्ध (जल) प्रदान करे अथवा वह पृथ्वी हमारे लिए अनेक दुग्ध धारा से और तेज से अभिषेक करे।

व्याकरण

- **अहोरात्रे** - अहश्च रात्रिश्च इति द्वन्द्वसमास का द्विवचनान्त रूप है।
- **क्षरन्ति** - क्षर् इस अर्थ से लट् प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।
- **दुहाम्** - दुह्-धातु से लोट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः॥१०॥

पदपाठ - याम्। अश्विनौ। अमिमाताम्। विष्णुः। यस्याम्। विऽचक्रमे। इन्द्रः। याम्। चक्रे। आत्मने। अनमित्राम्। शचीऽपतिः। सा। नः। भूमिः। वि। सृजताम्। माता। पुत्राय। मे। पयः॥१०॥

अन्वय - याम् अश्विनौ अभिमाताम्, यस्यां विष्णुः विचक्रमे, यां शचीपतिः इन्द्र आत्मने अनमित्रां चक्रे, नः सा पृथ्वी माता ते पुत्राय पयः विसृजताम्।

सरलार्थ - जिस पृथ्वी पर अश्विन कुमारों ने भ्रमण किया, जिसको विष्णु ने अपने पद चरणों से सुशोभित किया, जिसे शचीपति इन्द्र ने अपने लिए अशत्रू रहित बनाया, वह ही हमारी पृथ्वी माता हमारे लिए दुग्ध आदि धान्य प्रदान करे।

व्याकरण

- **अभिमाताम्** - अभि उपसर्ग मा-धातु से लङ् प्रथम पुरुष द्विवचन में।
- **विचक्रमे** - वि उपसर्ग क्रम्-धातु से लिट् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- **चक्रे** - आत्मनेपद कृ-धातु से लिट् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- **वि सृजताम्** - वि उपसर्ग सृज्-धातु से लोट् प्रथम पुरुष एकवचन में।

पाठगत प्रश्न 25.1

1. पृथ्वी सूक्त के ऋषि और देवता कौन है?
2. कौन पृथ्वी को धारण करते है?
3. पृथ्वी किनको धारण करती है?
4. ऋतम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
5. पृथ्वी की कितनी दिशा है?
6. जिन्वति यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
7. किस प्रकार की पृथ्वी ऐश्वर्य और तेज प्रदान करती है?
8. विश्वंभरा इस शब्द का क्या अर्थ है?
9. वसुधानी शब्द का क्या अर्थ है?
10. हिरण्यवक्षा इसका विग्रह और समास लिखो।
11. इन्द्रऋषभा इसका विग्रह और समास लिखो
12. अस्वप्नाः इसका क्या अर्थ है?
13. दुहाम् यह रूप किस लकार में है?
14. उक्षतु यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
15. शचीपति कौन है?

25.1.2 मूलपाठ की व्याख्या : श्लोक 11-20

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥११॥

पदपाठ – **गिरयः। ते। पर्वताः। हिमऽवन्तः। अरण्यम्। ते। पृथिवि। स्योनम्। अस्तु। बभ्रुम्। कृष्णाम्। रोहिणीम्। विश्वऽरूपाम्। ध्रुवाम्। भूमिम्। पृथिवीम्। इन्द्रऽगुप्ताम् अजीतः। अहतः। अक्षतः। अधि। अस्थाम्। पृथिवीम्। अहम्॥११॥**

अन्वय – पृथिवि ते गिरयः हिमवन्तः पर्वताः ते अरण्यं स्योनम् अस्तु। बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां इन्द्रगुप्तां भूमिं पृथिवीम् अहम् अजीतः अहतः अधि अस्थाम।

सरलार्थ – हे पृथ्वी तेरे पर्वत, हिमालय, और गिरी आदि कल्याणकारी हो, और तेरे वन कल्याणकारी हों। बभ्रु आदिरूप विशिष्ट स्थिर इन्द्र के द्वारा रक्षित अत्यन्त विस्तृत पृथ्वी अपराजय हिंसा रहित और विनाशरहित होकर रहें।

व्याकरण

- **अजीतः** – जि–धातु से क्तप्रत्यय करने पर जीतः यह रूप बना। वहाँ "न जीतः अजीतः" इति नञ्तत्पुरुषसमास।
- **अहतः** – हन्–धातु से क्तप्रत्यय करने पर हतः रूप बना। "न हतः अहतः" इति नञ्तत्पुरुषसमास।
- **अक्षतः** – क्षत्–धातु से क्तप्रत्यय करने पर क्षतः यह रूप बना। न क्षतः अक्षतः इति नञ्तत्पुरुषसमास।
- अधि अस्थाम् – अधि उपसर्ग स्था धातु से लङ उत्तमपुरुष एकवचन में।

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वऽः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥१२॥

पदपाठ – यत्। ते। मध्यम्। पृथिवि। यत्। च। नभ्यम्। याः। ते। उर्जः। तन्वऽः। सम्ऽबभूवुः॥ तासु। नः। धेहि। अभि। नः। पवस्व। माता। भूमिः॥ पुत्रः। अहम्। पृथिव्याः॥ पर्जन्यः। पिता। सः। ॐ इति। नः। पिपर्तु॥१२॥

अन्वय – पृथिवि यत्, ते मध्यं, यत् नभ्यं च, या ते तन्वः ऊर्जः संबभूवुः तासु नः धेहि, नः अभि पवस्व, भूमिः माता, अहं पृथिव्याः पुत्रः, पर्जन्यः पिता। सः नः पिपर्तु।

सरलार्थ – हे पृथ्वी तेरा जो मध्यभाग है, जो नाभिक्षेत्र, और जो तेरे शरीर से उत्पन्न रस उन सभी में हमे प्रदान करो। हमको पवित्र करो। भूमि माता है, मैं इसका पुत्र हूँ, पर्जन्य पिता है, वह हमारा पालनपोषण करे।

व्याकरण

- **धेहि** – धा–धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **पवस्व** – पू–धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **पिपर्तु** – पृ–धातु से प्रथमपुरुष एकवचन में।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना॥१३॥

पदपाठ – यस्याम्। वेदिम्। परिऽगृह्णन्ति। भूम्याम्। यस्याम्। यज्ञम्। तन्वते। विश्वऽकर्माणः॥ यस्याम् मीयन्ते। स्वरवः। पृथिव्याम्। ऊर्ध्वाः। शुक्राः। आऽहुत्याः। पुरस्तात्॥ सा। नः। भूमिः। वर्धयत्। वर्धमाना॥१३॥

टिप्पणियाँ

अन्वय – यस्यां भूम्यां वेदिं परिगृह्णन्ति, विश्वकर्माणः यस्यां यज्ञं तन्वते, यस्यां पृथिव्याम् आहुत्याः पुरस्तात् ऊर्ध्वाः शुक्राः स्वरवः मीयन्ते, सा भूमिः वर्धमाना नः वर्धयत्।

सरलार्थ – जिस पृथ्वी पर देव वेदि निर्माण करते है, जिससे यज्ञ को सम्पादन करते है, और जिस आहुतिदान करने से पूर्व प्रकाशमान यज्ञीय यूप गाड़े जाते हैं, वह भूमिवृद्धि को प्राप्त होती हुई हमे बढ़ाये।

व्याकरण

- **परिगृह्णन्ति** – परि उपसर्ग ग्रह्–धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **तन्वते** – आत्मनेपद तन्–धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **मीयन्ते** – आत्मनेपद मा–धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **वर्धयत्** – वृध्–धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **वर्धमाना** – वृध्–धातु से शानच और टापकरने पर प्रथमा एकवचन में।

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान् मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥१४॥

पदपाठ – यः। नः। द्वेषत्। पृथिवि। यः। अभिऽदासात्। मनसा। यः। वधेन। तम्। नः। भूमे। रन्धय। पूर्वऽकृत्वरि॥१४॥

अन्वय – (हे) पृथिवि यः नः द्वेषत् यः पृतन्यात् यः मनसा यः वधेन अभिदासात् (हे) भूमे (हे) पूर्वकृत्वरि, तं नः रन्धय।

सरलार्थः – हे पृथ्वी जो हमसे द्वेष करते है, जो युद्ध करते है, जो मन से तथा शस्त्र से दमन करते है, हे श्रेष्ठों के लिए काम करने वाली तुम उनका नाश करो।

व्याकरण

- **द्वेषत्** – द्विष्–धातु से लोट्–लकार प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **पृतन्यात्** – पृतन्य इस नाम धातु से लेट्–लकार का प्रथमपुरुषएकवचन का रूप है।
- **अभिदासात्** – अभि इस उपपदपूर्वक दस्–धातु से लेट्–लकार का प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।
- **रन्धय** – रन्ध–धातु से णिजन्त लोट्–लकार का रूप है।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥१५॥

पदपाठ – **त्वत्। जाताः। त्वयि। चरन्ति। मर्त्याः। त्वम्। बिभर्षि। द्विऽपदः। त्वम्। चतुःऽपदः॥ तव। इमे। पृथिवि। पञ्च। मानवाः। येभ्यः। ज्योतिः। अमृतम्। मर्त्येभ्यः॥ उत्ऽयन्। सूर्यः। रश्मिऽभिः। आऽतनोति॥१५॥**

अन्वय – त्वत् जाता मर्त्याः त्वयि चरन्ति, त्वं द्विपदः त्वं चतुष्पदः बिभर्षि। पृथिवि इमे मानवाः येभ्यः मर्त्येभ्यः उद्यन् सूर्यः रश्मिभिः अमृतम् आतनोति।

सरलार्थ –आप से उत्पन्न हुए प्राणी आप में ही विचरण करते हैं, तुम दो पैर वालों को धारण करने वाली और चार पैर वालों को धारण करती हो। हे पृथ्वी सभी मनुष्य तेरे है, जिनके लिए उदय होता हुआ सूर्य अपनी किरण से अमृततुल्य प्रकाश को फैलाता है।

व्याकरण

- **बिभर्षि** – भृ–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **आतनोति** – आङ्पूर्वकतन्–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्॥१६॥

पदपाठ – **ताः। नः। प्रऽजाः। सम्। दुहताम्। सम्ऽअग्राः। वाचः। मधु। पृथिवि। धेहि। मह्यम्॥१६॥**

अन्वय – ताः समग्राः प्रजाः नः सं दुहताम्। (हे) पृथिवि मह्यं वाचः मधु धेहि।

सरलार्थ – वे सभी प्राणी हमारे लिए अच्छे प्रकार से सुख देने वाले हों। हे पृथ्वी हमारी वाणी में मधुरता प्रदान कीजिए।

व्याकरण

- **दुहताम्** – दुह्–धातु से लोट्–लकार का यह रूप है।
- **धेहि** – धा–धातु से लोट्–लकार का यह रूप है।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा॥१७॥

पदपाठ – **विश्वऽस्वम्। मातरम्। ओषधीनाम्। ध्रुवाम्। भूमिम्। पृथिवीम्। धर्मणा। धृताम्। शिवाम्। स्योनाम्। अनु। चरेम। विश्वहा॥१७॥**

अन्वय – विश्वस्वम् ओषधीनां मातरं ध्रुवां, पृथिवीं धर्मणा धृतां भूमिं (वयं) विश्वहा अनु चरेम।

टिप्पणियाँ

सरलार्थ – सभी को उत्पन्न करने वाली, औषधियों की माता, दृढता से और प्रशस्त रूप से धर्म से सभी को धारण किया, कल्याणकारी और सुख प्रदान करने वाली पृथ्वी के ऊपर हम हमेशा विचरण करते रहे।

व्याकरण

- **विश्वसम्** – विश्वस् इस प्रातिपदिक का द्वितीया एकवचन का रूप है।
- **अनुचरेम** – अनु इस उपसर्गपूर्वक चर्-धातु से लोट्-लकारउत्तमपुरुषबहुवचन का रूप है।

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन॥१८॥

पदपाठ – **महत्। सधऽस्थम्। महती। बभूविथ। महान्। वेगः। एजथुः। वेपथुः। ते॥ महान्। त्वा। इन्द्रः। रक्षति। अप्रऽमादम्। सा। नः। भूमे। प्र। रोचय। हिरण्यस्यऽइव। सम्ऽदृशि। मा। नः। द्विक्षत। कः। चन॥१८॥**

अन्वय – (हे पृथिवि) महती (त्वं) महत् सधस्थं बभूविथ, ते महान् वेगः, एजथुः वेपथुः च। महान् इन्द्रः त्वा अप्रमादं रक्षति। हे भूमे सा (त्वं) संदृशि नः हिरण्यस्येव प्र रोचयः, नः कश्चन मा द्विक्षत।

सरलार्थ – हे पृथ्वी तुम बहुत ही विस्तृत निवासस्थल हो, तेरा वेग महान है और तुम्हारा कम्पन भी महान है, और महान् इन्द्र अप्रमाद से तुम्हारी रक्षा करते है। इस प्रकार की हे पृथ्वी तुम ही हम में रुचि विषय उत्पन्न करो जैसे सुवर्ण रुचिकर होता है। कोई भी हमारे प्रति द्वेष नहीं करे।

व्याकरण

- **बभूविथ** – भू-धातु से लिट् मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **एजथुः** – एज्-धातु से लिट् मध्यमपुरुषद्विवचन में।
- **वेपथुः** – विप्-धातु से लिट् मध्यमपुरुषद्विवचन में।
- **रक्षति** – रक्ष्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **रोचय** – रुच्-धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में।

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः॥१९॥

पदपाठ – **अग्निः। भूम्याम्। ओषधीषु। अग्निम्। आपः। बिभ्रति। अग्निः। अश्मऽसु॥ अग्निः। अन्तः। पुरुषेषु। गोषु। अश्वेषु। अग्नयः॥१९॥**

अन्वय – भूम्याम् अग्निः, औषधीषु आपः अग्निं बिभ्रति, अग्निः अश्मसु पुरुषेषु अन्तः अग्नयः, गोषु अश्वेषु।

सरलार्थ – अग्नि भूमि में है, जल अग्नि को धारण करता है, पत्थरों में भी अग्नि है, मनुष्यों में भी जठराग्नि है। और गाये घोड़ो में भी अग्नि है।

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व१न्तरिक्षम्।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्॥२०॥

पदपाठ – **अग्निः। दिवः। आ। तपति। अग्नेः। देवस्य। उरु। अन्तरिक्षम्। अग्निम्। मर्तासः। इन्धते। हव्यऽवाहम्। घृतऽप्रियम्॥२०॥**

अन्वय – अग्निः दिवः आतपति, देवस्य अग्नेः उरु अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं मर्तासः अग्निम् इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्।

सरलार्थ – सूर्यदेव स्वर्ग में तपते हैं। यह विशाल अन्तरिक्ष मण्डल अग्नि ही है, मरणशील प्राणियों को अग्नि में ही जलाते हैं।

व्याकरण

- **आतपति** – आङ् इस उपसर्गपूर्वक तप्-धातु से लट्लकार का रूप है।
- **उरु** – प्रचुर अर्थ में वेद में उरु शब्द का प्रयोग होता है।
- **इन्धते** – इन्ध-धातु से लट्-लकार का प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है।
- **हव्यवाहम्** – हव्यं वहति यः स इति हव्यवाहः, तम् इति उपपदतत्पुरुष है।

पाठगत प्रश्न 25.2

1. स्योनम् इसका क्या अर्थ है?
2. जि-धातु से क्तप्रत्यय करने पर क्या रूप बनता है?
3. भूमि क्या है?
4. मैं पृथ्वी का क्या हूँ?
5. तन्वते यह रूप किस धातु का है?
6. धेहि यह किस लकार में है?
7. एजतुः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
8. वेपथुः यह रूप किस धातु का है?
9. अग्नि कहाँ-कहाँ पर है?
10. रोचय यह रूप किस लकार में है?

टिप्पणियाँ

25.3 पृथ्वी सूक्त का महात्म्य

वैदिक ऋषियों के मन में हमेशा परमतत्त्व ही प्रकट होते हैं, वहाँ उनका रमण नहीं होता था। उनके मन में भी अलौकिकसौन्दर्यभावना और नैसर्गिकप्रीति विद्यमान रहती है। जो या: प्रीतिभावना उनको रस-भावमय विषयों में प्रेरित करती है। उस प्रकार का सौन्दर्यसंस्कृतभाव का वर्णन अथर्ववेद के भूमिसूक्त में है। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त केवल वैदिक ऋषियों के प्रगाढ़ ज्ञान का निदर्शन ही नहीं कर रहा है अपितु सौन्दर्य भावना का और सहृदयता का चरम निदर्शन करता है।

यह सुक्त अथर्ववेद के द्वादश काण्ड के अन्तर्गत आता है। इस प्रकार की भाव सौन्दर्य समृद्ध रचना वैदिक साहित्य में दुर्लभ है। यहाँ ऋषि अथर्वा उसके पृथ्वी विषयकहृदय में आये प्रेमभाव को प्रदर्शित करता है।

हमारी पृथ्वी माता अनेक रूप वाली हैं। वह ही हमारे लिए दीर्घ काल से परिचित मूर्ति है। उसके साथ हमारा लगाव नाड़ी के समान है। उसकी ही गोद में हमारा यहाँ जन्म और मृत्यु होती है। इसलिए उसकी देवता रूप से वैदिक ऋषियों के द्वारा कल्पना की। उसकी महिमा का वर्णन करने के लिए वैदिक कवि धैर्य सीमा का अतिक्रमण करते हैं। भूमि माता के साथ द्युलोक की प्रार्थना में भी ऋषि रत है, क्योंकि द्युलोक हमारे पिता के तुल्य है। और उनकी पत्नी रूप में ही पृथ्वी ऐसी भावना ऋषियों के सूक्ष्मबुद्धि में दिखाई दी। और ऋग्वेद में कहा गया -

'द्यौः पितः पृथिवि मातरध्रुग् अग्ने भ्रातर्वसवो मृलत नः।' इति। (ऋ.६.५१.५)

द्युलोक और पृथ्वीलोक को माता-पिता के रूप में वैदिक कवि देखते हैं। उन दोनों के मिलने से ही सृष्टि होती है। उन दोनों के मध्य में अविनाभाव सम्बन्ध है जैसे पार्वती परमेश्वर के मध्य में है। उसी अविनाभाव सम्बन्ध की कल्पना करते हुए उन दोनों की स्वामी और स्त्री रूप में कल्पना की गई है। अनन्तकाल से ही यह विद्यमान है।

जैसा वेद में कहा गया - **'ध्रुवा द्यौः ध्रुवा पृथिवी।'** इति।

उन दोनों का अलग से अस्तित्व नहीं है, क्योंकि दोनों जुड़े हुए है। इसलिए ही द्युलोक का अलग मन्त्रों के द्वारा स्तुति नहीं की। पृथ्वी माता की एक ही सूक्त में तीन ऋग्मन्त्र के द्वारा स्तुति की गई है। परन्तु उनकी स्तुति पृथक् रूप से नहीं की यह हेतु भी वैदिक ऋषियों का उनकी स्तुति में उदासीन थे ऐसा भी नहीं सोचना चाहिए। वे प्रसिद्ध देवता वन्दना के साथ ही मन्त्रों के साथ भी पृथ्वी आदि देवों की स्तुति की है।

उनकी दृष्टि में पृथ्वी विस्तृत है, विशाल, जगत को सुख देने वाली, घृतवती, पयस्वती और यज्ञवती है। वे पृथ्वी की मातृरूप से वर्णन करने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। मनुष्यों की जीवनदशा में और मरणदशा में एकमात्र आश्रय पृथ्वी प्राणियों के माता स्वरूप हैं। वैदिकऋषि इस पृथ्वी को माता रूप से पूजते हैं।

ऋग्वेद के ऋषियों का पृथ्वी विषय पर जो भावना बीजरूप से दिखाई देती है उसी बीज का अङ्कुर उद्गम अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त में हुआ। यहाँ पर ६३ मन्त्र है। जिनमें दार्शनिक भावना

का प्रवाह दिखाई देता है। केवल दार्शनिक भावना का ही नहीं अपितु उन दोनों के सम्मिलित प्रकृति प्रेम भावना का भी अच्छी प्रकार से अङ्कुरोद्गम यहाँ हुआ। ऋषि अथर्वण ने देखा की पृथ्वी महिमामयी भूत और भविष्यत् काल को नियन्त्रण करती है। सत्य, बृहत्, ऋत, दीक्षा, उग्रतप, ब्रह्म और यज्ञ उसको धारण करती हैं। पृथ्वी सूक्त में कहा गया –

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ती॥ इति। (अ.वे.१२.१.१)

विचित्र रूपवाली हमारी पृथ्वी माता है। उसका कहीं पर समतल और कही पर बन्धुर भूमि है। यहाँ नदी–पर्वत–समुद्र–उर्वरभूमि और विचित्रधर्मी प्राणि विद्यमान है। फलप्रदान करने वाले औषधी वृक्ष का वह ही आधाररूप है। हमारे प्राणों को वह वक्ष में धारण करती है। पृथ्वी सूक्त में कहा गया – **'या बिभर्ति बहुधा प्राणद् एजत्'**। इति।

सृष्टि के आदि से ही वह विश्वम्भरा और विश्वधात्री है। वह विश्वम्भरा वसुधा के रूप में प्रतिष्ठ है। उसका सुवर्णमय वक्ष देश सभी जगत का आश्रय है। उसके गर्भ में उत्पन्न दो पैर और चार पैर वाले सभी प्राणी वहीं पर ही विचरण करते हैं। पृथ्वी सूक्त में कहा गया है –

'तज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।' इति। उसका हृदय परमव्योम सत्य से ढका हुआ है। और भी – **''यस्यां हृदयं परमे व्योमन् सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः''**। इति। देवगण द्वारा सेवित वह पवित्र यज्ञ कर्म के वेदितुल्य के समान है। वहाँ हवि आहूति के लिए देव मनुष्यों के मिलन क्षेत्र की रचना करते हैं।

विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी माता सभी देवगण की पूज्य हैं। अश्विनी कुमार उसके परम वैद्य है। वहाँ विष्णु ने स्वयं अपने दो पैरों को स्थापित किया। वीर श्रेष्ठ इन्द्र जिसकी रक्षा के लिए हमेशा नियुक्त होते हैं। उसके दुग्ध सेवन से विश्व में प्राणि शक्ति से सम्पन्न होते हैं।

अनंत काल से ही वह प्राणियों को उत्पन्न और धारण करने वाली हैं पर वह भंयकर कठोर और कहीं पर वह क्षमामयी अन्नदात्री हैं, पयस्वती, शान्तिरूप वाली और सुगन्धा हैं। पर्जन्यदेव यहाँ हमेशा वर्षा करते हैं। इसलिए वह कवि कल्पना में पृथ्वी के पति हैं। मनुष्य श्रद्धा के द्वारा देवों को उद्दिश्य करके यहाँ पर ही हवि प्रदा करते है। पृथ्वी सूक्त में –

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यं अरंकृतम् (२.१.२२) इति। इसकी मिट्टी की गन्ध से मुग्ध कवि सभी का सभी समय के लिए मङ्गल की प्रार्थना इस मन्त्र के द्वारा करते है – 'तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन'॥ इति।

इस पृथ्वी के वक्ष में उत्पन्न होने वाला अघात प्रेम को कवि वर्णन करने में असमर्थ है। कभी भूमि का खनन करते है तो भी वह क्षति को शीघ्र ही पूर्ण कर दे ऐसी कवि प्रार्थना करते है। पृथ्वी सूक्त में –

'यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयम् अर्पिषम्'॥ (अ.वे.१२.१.६३) इति।

टिप्पणियाँ

दुष्ट और सज्जन दोनों उसी की गोद में ही आश्रय लेते है। पृथ्वी माता का आश्रयधन्य कवि प्रार्थना करता है की हे स्वर्ग सखी पृथ्वी तुम हमारी आश्रयदात्री हो, तुम सम्पदा और श्रिय से पूर्ण होकर हमारा पोषण करो। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में –

'सं विदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्'। इति॥ (अ.वे.१२.१.६३) इति शम्।

25.4 पृथ्वी स्वरूप

भारतीय परम्परा में अचेतन वस्तुओं का भी अधिष्ठाता देवता को स्वीकार किया गया है। द्युलोक जैसे देवों का वैसे ही पृथ्वी लोक स्थानि मनुष्यों का एवं जीवों का भी निवास स्थान है। यह तो अचेतन है परन्तु इसका अधिष्ठाता देवता के साथ संयुक्त और नियमित हैं। इसलिए वैदिक साहित्य में इसकी बहुत ही सुंदर वन्दना प्राप्त होती है।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी के महत्त्व का वर्णन किया गया है। उत्पति से पहले यह समुद्र में डूबी हुई थी। विद्वान अपने पराक्रम से इसका वर्णन करते हैं। इसका कुछ क्षेत्र जल से परिपूर्ण और कुछ क्षेत्र स्थल है। इस भूमि में विचित्रता भी दिखाई देती है। यहाँ जलधार अपने प्राणीकुल को आनन्दित और सरस स्वावलम्बी बनाते हुए प्रवाहित होते हैं। इसके प्रभाव से मनुष्य यश, धन और आधिपत्य को प्राप्त होते हैं। वैसे ही वेद में कहा गया –

ते नो गृणानो महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समन्वितम्॥ इति।

माता जैसे अपने पुत्र को दूध पिलाती है और उससे उसकी वृद्धि होती है वैसे ही पृथ्वी भी सभी को अमृतसमान जल पिलाती है और उनका अच्छी प्रकार से पालन करती है। माता जैसे अपने पुत्रों में भेद नहीं करती है, सभी को समानरूप से स्नेह करती हैं इसी प्रकार पृथ्वी भी साधु असाधु विचार को छोड़कर सभी का अन्नधन आदि से पालन करती है। उस पृथ्वी का मातृत्व सभी जगह वेदमन्त्र आदि में प्रसिद्ध है। द्यावा पृथ्वी के वर्णन अवसर समय में भी इसके मातृरूप स्फुटित होता है। वेद में कहा गया –

उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुषे न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत्॥ इति।

ऋग्वेद के द्यावा पृथ्वीसूक्त में कहा जाता है की जो इस जगत स्थिति का सम्पादन कर तथा जगत चक्र का विरामहीन और गति का विधान करके जगत का मातृरूप से आत्मा को प्रकट किया। वहाँ वेद में कहा गया –

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनो धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः॥ इति।

इस प्रकार जगत मातृरूप से, धात्रीरूप से और पालयित्रीरूप से अनेक प्रकार की स्तुति करते हैं।।

पाठ का सार

अथर्व वेद संहिता के द्वादश काण्ड का प्रथम सूक्त का भूमि अथवा पृथ्वी देवता है। अथर्वा ऋषि। इस सूक्त में पृथ्वी अथवा भूमि का वैशिष्ट्य विस्तार से बताया गया है। ऋषि अथर्वा कहते है की सत्य, बृहत्, ऋत, उग्र, दीक्षा, तप, यज्ञ, और ब्रह्म पृथ्वी को धारण करते है। यह भूमि मनुष्यों के मध्य में असम्बाध है। इसका कही पर पहाड़ी तो कही पर ढलान और कहीं पर सम प्रदेश हैं। यह ही अनेक प्रकार की शक्तिशाली औषधी का भरण करती है। पृथ्वी में ही समुद्र सिन्धु और जल प्रवाहित होता है। पृथ्वी पर ही सभी जड़जंगम आनन्दित होते है। इस पृथ्वी के चार दिशायें हैं। इस प्रकार यह विश्वंभरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा, जगत का निवास स्थान, इन्द्रऋषभा भूमि वैश्वानर अग्नि का भरण पोषण और हमे धन दो। जो पृथ्वी प्रलय अवस्था में सृष्टि पहले जल मग्न थी। मनस्वी जिस पृथ्वी को समझकर उसके अनुसार आचरण करते है। जो पृथ्वी सत्य से ढ़की हुई अमृत को हृदय में धारण किया हुआ है। जिस पृथ्वी की परिचरा समान रूप से सार्वभौमिक जल और दिन-रात प्रमाद रहित होकर नियम के अनुसार चलते है, वह भूमि धारा भूमि हमारे लिए पय आदि तेज के द्वारा अभिसेचन करें। वह माता भूमि अपने पुत्र के लिए पय को छोडती हैं। भूमि माता मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ - माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

पाठांत प्रश्न

1. पृथ्वी सूक्त का सार लिखो।
2. पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी का कैसे वर्णन है प्रतिपादित करो।
3. पृथ्वी सूक्त में अग्नि का अग्नि स्वरूप वर्णन करो, सूक्त सहित प्रतिपादित करो।
4. सत्यं बृहद्ऋतमुग्रम् ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
5. गिरयस्ते पर्वताः ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
6. यस्यां वेदि ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
7. यत् ते मध्यम् ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
8. महांस्त्वेन्द्रो ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
9. त्वज्जाता ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
10. यस्याश्चतस्रः ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

25.1

1. अथर्वा ऋषि, अग्नि और पृथ्वी देवता।

2. सत्य, बृहत्, ऋतम्, उग्र, दीक्षा, तप,और यज्ञ।
3. अनेक शक्तिसम्पन्न ओषधिवृक्षो को।
4. ऋ-धातु से क्तप्रत्यय करने पर।
5. चार।
6. जिन्द्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
7. जिस पृथ्वी पर पूर्वजो ने विविधकर्म किये, जिस पृथ्वी पर देवों ने असुरों को पराजीत किया, जो पृथ्वी गाय आदि अनेक विचित्र प्राणियों का आश्रय स्थान है।
8. विश्व का भरणपोषण करने वाली।
9. धन को धारण करने वाली।
10. हिरण्यं वक्षे यस्याः सा इति बहुव्रीहि समास।
11. इन्द्रः ऋषभः यस्याः सा इति बहुव्रीहि समास।
12. स्वप्न से विहीन।
13. लोट्।
14. उक्ष्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
15. इन्द्र।

25.2

1. कल्याणकारी।
2. जीतः।
3. माता।
4. पुत्र।
5. तन् धातु से।
6. लोट्।
7. एज्-धातु से लिट् मध्यमपुरुषद्विवचन में।
8. विप्-धातु से।
9. भूमि में, पत्थर में, पुरुष में जठराग्निरूप से।
10. लोट्।

॥ पच्चीसवाँ पाठ समाप्त ॥

26

सरमा पणि संवाद सूक्त

भारतीय धर्म जीवन का और आध्यात्मिक जीवन का प्राणभूत वेद है। जैसे प्राण के बिना जीव वैसे ही वेदों के विना धर्मादि है। इसलिए इहलोक और परलोक फल विचार में वेदों का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। और वह वेद भगवान के निश्वासभूत हैं। इसलिए अपौरुषेय हैं। वह वेद चार भाग में विभक्त हैं। वे - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद। वहाँ ऋग्वेद का दशम मण्डल का एक सौ आठवां सूक्त (ऋ.वे. म-१०.१०८) सरमा पणि संवाद सूक्त है। यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध संवाद सूक्त है। सरमा पाणि कथा के माध्यम से संवाद सूक्त प्रचलित है। और इस प्रकार इस पाठ में सरमा पणि संवाद सूक्त को उल्लिखित किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- सरमा पणि संवाद सूक्त का संहितापाठ तथा पदपाठ कर पाने में;
- सरमा पणि संवाद सूक्त के मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- सरमा पणि संवाद सूक्त का अन्वय प्रतिपदार्थ जान पाने में;
- सरमा पणि संवाद सूक्त के व्याख्या कर पाने में;
- स्वयं से मन्त्र के अर्थ का भी व्याख्या कर पाने में; और
- मन्त्र में स्थित शब्दों का व्याकरण की दृष्टि से अर्थ ज्ञान कर पाने में।

26.1 मूलपाठ

किमिच्छन्ती सरमाप्रेदमानड् दूरेह्यध्वा जगुरिः पराचैः।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत् कथं रसायाः अतरः पयांसि १॥

इन्द्रस्य दूतीरीषिता चरामि महः इच्छन्ती पणयो निधीन् वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत् तथा रसाया अतरं पयांसि॥२॥

की दृङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति॥३॥

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात्।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे॥४॥

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परिदिवो अन्तान् सुभगे पतन्ती।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा॥५॥

अस्येना वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात्॥६॥

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिरवसुभिर्न्यृष्टः।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकुपदमलकमा जगन्थ॥७॥

एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः।
त एतमूवं वि भजन्त गोनामथैतदृचः पणयो वमन्नित्॥८॥

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम॥९॥

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वम इन्दो विदुराङ्गिरसश्च घोराः।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायम अपातं इतपणयो वरीयः॥१०॥

दूरमित पणयो वरीय उद् गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूहळाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः॥११॥

26.1.1 मूलपाठ की व्याख्या : श्लोक 1-3

किमिच्छन्ती सरमाप्रेदमानड् दूरेह्यध्वा जगुरिः पराचैः।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत् कथं रसायाः अतरः पयांसि १॥

पदपाठ - किम्। इच्छन्ती। सरमा। प्र। इदम्। आनट्। दूरे। हि। अध्वा। जगुरिः। पराचैः। का। अस्मेऽहितिः। का। परिऽतक्म्या। आसीत्। कथम्। रसायाः। अतरः। पयांसि॥१॥

अन्वय – सरमा किम् इच्छन्ती इदम् प्र आनट्। पराचौः जगुरिः अध्वा दूरे हि। का अस्मेहितिः का तरितक्म्या आसीत्। कथं रसायाः पयांसि अतरः।।१।।

अन्वय का अर्थ – (सरमा) इन्द्र की दूती सरमा नाम देवशुनी (किम् इच्छन्ती) क्या कामना करती हुई अथवा प्रार्थना के लिए (इदम् प्र आनट्) इस स्थान को प्राप्त हुई? (अध्वा दूरे हि) यहाँ आने का मार्ग बहुत ही दूर, अत्यन्त दूर है। (पराचौः) ज्ञान प्रकाश से विमुखो के द्वारा यह मार्ग अलक्षित है, (जगुरिः) कोई भी भली भाँती जाने वाला इस मार्ग को प्राप्त हो सकता है। अथवा योजन कोष चलने पर यह सरमा यहाँ आई है। हे सरमे! (का अस्मेहितिः) हमारे निमित क्या अर्थहित है? तुम किस प्रयोजन से हमारे लिए यहाँ आयी हो तुम्हारी (का परितक्म्या आसीत्) गति कैसे हुई? तुम्हारा गमन अथवा भ्रमण किस प्रकार का था। (कथं रसायाः पयांसि अतरः) रसानामक नदी के जलराशि को आपने कैसे पार किया?।।१।।

व्याख्या – मेघों में वृष्टि से पूर्व विद्युत् के चमकनें से गर्जना सरकती हुई प्रवृत होती है वह ही यहाँ अलंकार में सरमा कहीं गई है मेघ, धारा, नदी उसके पार जाना ही सरण – उसका सरकना है, मेघों के कृष्ण वर्ण होने से कृष्ण आकृति ही रात्री है। अथवा मेघ की गर्जना क्या अन्वेषण करती हुई इस स्थान को प्राप्त हुई, अज्ञानयों के द्वारा यह मार्ग अलक्षित है, इसलिए कोई भलीभांति जानने वाला ही इस मार्ग को प्राप्त हो सकता है, हमारे निमित क्या अर्थ भावना है आप कैसे घनघोर रात्री में रसा नदी के जल को पार करके यहाँ इतनी दूर आई हो।

सरलार्थ – यहाँ पणि ने सरमा के प्रति कहा की आप किस प्रार्थना के लिए यहां आई हो? यह मार्ग तो बहुत दूर का है। इस मार्ग पर आते समय पीछे की और दृष्टि घुमाने पर यहाँ आना सम्भव नहीं हो सकता। हमारे पास ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसके लिए तुम आई हो इतनी घनी रात में नदी के जल को कैसे पार किया?

व्याकरण

- **इच्छन्ती** – यहाँ इष्-धातु से शतृप्रत्यय और स्त्री ङीप्-प्रत्यय करने पर।
- **आनट्** – आनट् यहा पर आङ्पूर्वक नशि-धातु से लुङि मन्त्रेघस- इत्यादि से च्लि लुक छन्दस्यपिदृश्यते इससे आट आगम।

इन्द्रस्य दूतीरीषिता चरामि महद इच्छन्ती पणयो निधीन् वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत् तथा रसाया अतरं पयांसि॥२॥

पदपाठ – इन्द्रस्य। दूतीः। इषिता। चरामि। महः। इच्छन्ती। पणयः। निऽधीन्। वः। अतिऽस्कदः। भियसा। तत्। नः। आवत्। तथा। रसायाः। अतरम्। पयांसि॥२॥

अन्वयः – (हे) पणयः, इन्द्रस्य दूतीः (तेन एव) इषिता (अहं) वः महः निधीन् इच्छन्ती चराम्। अतिस्कन्दः भियसा तत् नः आवत्। तथा रसायाः पयांसि अतरम्।।२।।

टिप्पणियाँ

अन्वयार्थ - हे (पणयः) यह असुर का नाम, जीवन का प्रकाशरहित सामान्य इन्द्रिय क्रियाओं की शासकशक्ति का (अहम् इन्द्रस्य दूतीः) लाने वाली, सन्देश वाहिका (इषिता) मुझे उसी के द्वारा भेजा गया है (वः) तुम्हारे लिए, तुम्हारे द्वारा हरण की गई गायों को ले जाने के लिए (महः निधीन्) इन्द्र की जलनिधि अथवा महानिधी को (इच्छन्ती चरामि) चाहती हुई यहाँ विचरण कर रही हूँ। (अतिस्कन्दः) आक्रमण के (भियसा) भय से, अथवा अतिक्रमण होने के भय से (तत्) नदी जल ने भी (नः) मेरी, (आवत्) रक्षा की। (तथा) उसी प्रकार से मैंने (रसायाः पयांसि अतरम्) रसा नदी के जल को पार किया।।२।।

व्याख्या - उसके बाद सरमा ने पणीयों नामक असुरों से कहा मैं इन्द्र की दूतीः सुपांसुलुगिति प्रथमा एकवचन का सुश्छान्दस होने पर मैं उनके द्वारा भेजी गई होने से तुम्हारे इस स्थान पर विचरण कर रही हूँ। जिन गौ निधि को तुमने पर्वत की गुफाओं में छुपाया है उस महोमहत निधी बृहस्पति की गोनिधी चाहती हुई यहाँ विचरण कर रही हूँ। और अतिष्कदः 'स्कन्दिर्गति शोषण धातु से भावेक्विप् करने पर अतिष्कन्दात् अत्क्रिमण' होने के भय से उस नदी जल ने मेरी रक्षा की। और उस प्रकार से रसा नदी के जल को पार करके मैं यहाँ पर आयी हूँ।।२।।

सरलार्थ - (सरमा कहती है) हे पणी, इन्द्र की दूती रूप से मैं यहाँ आई हूँ। आपने जो गोरूप धन को एकत्रित किया है, उसे ग्रहण करने की मेरी इच्छा है। जल ने मुझे बचाया। जल का डर तो हुआ था परन्तु उसको लाँघ कर मैं चली आई। इस प्रकार मैं नदी को पार कर यहाँ चली आई।

व्याकरण

- **आवत्** - यहाँ पर अवतेः लङि आवत् यह रूप है।
- **पयांसि** - पयस्-शब्द का प्रथमाबहुवचन में जस् प्रक्रियाकार्य में पयांसि यह रूप बनता है।

की दृङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति॥३॥

पदपाठ - कीदृङ्। इन्द्रः। सरमे। का। दृशीका। यस्य। इदम्। दूतीः। असरः। पराकात्। आ। च। गच्छात्। मित्रम्। एन। दधाम। अथ। गवाम्। गोऽपतिः। नः। भवातिः॥३॥

अन्वयः - (हे) कीदृङ् इन्द्रः, का दृशीका, यस्य दूतीः (त्वम्) पराकात् इदम् असरः। आ च गच्छात् (वयम्) एन मित्रं दधाम। अथ नः गवां गोपतिः भवाति।।३।।

अन्वयार्थः - हे (सरमे, कीदृङ् इन्द्रः) किस प्रकार (का दृशीका) उसकी दृष्टि किस प्रकार की, दृष्टि रूपा सेना कितनी है? उसके लक्षण क्या है (यस्य दूतीः) जिस इन्द्र की दूती आप (पराकात्) दूर देश से (इदम् असरः) इस स्थान को प्राप्त हुई? इस प्रकार उसको कहकर अब वे परस्पर कहते है - आगच्छात् च) यदि यह सरमा हमारे साथ आ जावे, इन्द्र को छोड़कर हमारे साथ रहो (अथ) तो (एना मित्रं दधाम) हम इसको अपना मित्र बनावें। (अथ) तो यह भी (नः

गवां गोपतिः भवाति) हमारी गायों की स्वामी हो। अथवा वह इन्द्र यहाँ आये तो हम उनसे मैत्री करें। और वह इन्द्र हमारा गोपति हो।।३।।

व्याख्या – पणी ने सरमा के प्रति कहा आपके स्वामी इन्द्र किस प्रकार है,कितने शक्तिशाली है उनकी दूर दृष्टि किस प्रकार की है, उसकी सेना कितनी विस्तृत है, जिसकी दूती तुम बहुत दूर से यहाँ पर इस स्थान को प्राप्त हुई। इस प्रकार कह कर अब वे परस्पर कहते हैं ये सरमा आये '(आगच्छात्) और आगच्छतु गमर्लेट् में आडागम' होने पर स्वामी हो केवल एक गाय की स्वामी नहीं अपितु अनेक गायों की स्वामी हो।।३।।

सरलार्थ – पणि ने कहा – जिस इन्द्र की दूतीरूप से आप इतनी दूर से आई हो, वे इंद्र कैसे है। उनका कितना पराक्रम है, और उनकी कैसी सेना है। इन्द्र हमारी रक्षा करे। इन्द्र को मित्ररूप से अङ्गीकार करने में हम प्रस्तुत है। वह इन्द्र हमारी गायों को स्वीकार करके उनका स्वामी हो।

व्याकरण

- आगच्छत् यहाँ पर उपसर्ग धातु का व्यवहित रूप से प्रयोग है। यहाँ आगच्छत् यह रूप उस गम्-धातु से लेट् आटागम प्रक्रिया कार्य का रूप है।
- गवाम्-गो-शब्द का षष्ठी बहुवचन में आम् गवाम् यह रूप है।

पाठगत प्रश्न 26.1

1. किमिच्छन्ती इत्यादिवाक्य को किसने किसके प्रति कहा?
2. इषति इसका क्या अर्थ है?
3. किसकी दूतीरूप से सरमा आयी?
4. पणीयों ने इन्द्र के लिए क्या देना अङ्गीकार किया?
5. कीदृङ् इसका क्या अर्थ है?

26.1.2 मूलपाठ की व्याख्या : श्लोक 4-5

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात्।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे।।४।।

पदपाठ – न। अहम्। तम्। वेद। दभ्यम्। दभत्। सः। यस्य। इदम्। दूतीः। असरम्। पराकात्। न। तम्। गूहन्ति। स्रवतः। गभीराः। हताः। इन्द्रेण। पणयः। शयध्वे।।४।।

अन्वय – अहं तं दभ्यं न वेद (अपितु) सः तभत्, यस्य दूतीः (अहम्) पराकात् इदम् असरम्। स्रवतः गभीराः तं न गूहन्ति। (हे) पणयः, हताः (यूयं) शयध्वे।।४।।

टिप्पणियाँ

अन्वयार्थः - (अहं) सरमा (तं) इन्द्र के (दभ्यं) दम्भ प्रहारक शस्त्र को नहीं जानती हूँ जिससे वह प्रहरित करता है (न वेद) नहीं जान सकती। (सः तभत्) अपितु वह इन्द्र अन्यों को पराजित करता है अथवा विनाश करता है सम्पूर्ण शक्ति को वश में करता है। (यस्य दूतीः) जिसकी दूती के रूप में मैं नियुक्त हूँ (अहम्) सरमा (पराकात्) अतिदूरदेश से, परलोक से, (इदम् असरम्) तुम्हारे इस स्थान को प्राप्त हुई। (स्रवतः गभीराः) गम्भीर स्रोत भी (तं न गूहन्ति) उस इन्द्र का विरोध नहीं करते अपितु उसका समर्थन करते है, हम उसकी महिमा से समुद्र के प्रति बहते है ऐसा वे कहती है वह ही हमको प्रकट करता है। इसलिए हे (पणय) इन्द्रिय भोग के परायण असुरो! (इन्द्रेण हताः) मारे जाने पर तुम (शयध्वे) धराशयी हो जाओगे।।४।।

व्याख्या - सरमा कहती है हे पणय उस इन्द्र को कोई पराजित नहीं कर सकता ऐसा मैं जानती हूँ अपितु वह इंद्र ही सभी को जीतता है, 'दभेर्लेटिरूप वाक्यभेद होने से निघात है' जिसकी दूती मैं तुम्हारे इस स्थान को प्राप्त हुई अतिदूरदेश से यहाँ प्राप्त हुई। इन्द्रोहिंसितव्योनभवती- यहाँ पर कहते है जल स्रवण उसका आचरण करती है 'आचारार्थ में क्विप् तुगागम जस् का यह स्रवणशीलाः रूप है' भयंकर नदियाँ उस इन्द्र के अस्तित्व को छुपा नहीं सकती। किंतु आविष्कार करती हुई कहती है कि हम जिसकी महिमासे समुद्र को प्राप्त होती हैं। 'गुहूसंवरणे भौवादिक है'। उस हे पणीयों तुम इन्द्र के उस प्रकार के पराक्रम से मारे जाओगे शयध्वे शीङ्स्वमे बहुलंछन्दसि इससे शपोलुगभाव।।४।।

सरलार्थ - सरमा ने कहा -जिस इन्द्र की दूतिरूप से मैं यहाँ आई हूँ उसको कोई भी पराजित नहीं कर सकता। वह इन्द्र ही सभी को पराजित करता है। गहन गम्भीर नदियाँ भी उनकी गति को रोकने में समर्थ नहीं है। हे पणीयों तुम सब भी इन्द्र के उस पराक्रम से आहत होकर निश्चित रूप से शयन करोगे।

व्याकरण

- **स्रवतः** - स्रवतेः आचारार्थ में क्विप् तुगागम करने पर और जस प्रक्रिया कार्य में स्रवतः यह रूप है।
- शयध्वे यहाँ पर बहुलं छन्दसि इससे शप् का लुगभाव।

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परिदिवो अन्तान् सुभगे पतन्ती।
कस्त एना अव सृजादयुंध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा।।५।।

पदपाठ - इमाः। गावः। सरमे। याः। ऐच्छः। परि। दिवः। अन्तान्। सुऽभगे। पतन्ती। कः। ते। एनाः। अव। सृजात्। अयुंध्वी। उत। अस्माकम्। आयुधा। सन्ति। तिग्मा।।५।।

अन्वयः - (हे) सुभगे सरमे, दिवः अन्तान् परि पतन्ती इमाः गावः याः (त्वम्) ऐच्छः, एनाः ते कः अयुध्वी अव सृजात्। उत अस्माकम् आयुधा तिग्मा सन्ति।।५।।

अन्वयार्थः -'नाहं तं वेद दभ्यं दभत् सः ... हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे' ये सुनकर क्रुद्ध पणी कहते हैं -

(सुभगे सरमे) हे सौभाग्यशाली सुन्दरी सरमे (दिवः अन्तान्) आकाश में एक प्रान्त से अन्य प्रान्तो तक (परिपतन्ती) चारों और जाती हुई भ्रमण करती हुई प्राप्त हुई (इमाः गावः) ये वे गायें हैं (याः) जिनका तुम अन्वेषण करती हो (ऐच्छः) कामना करती हो। (एनाः) ये गायें (कः अयुध्वी) कौन बिना युद्ध के (ते अव सृजात्)तुम्हारे लिए त्याग सकता है। (उत) और भी (अस्माकम् आयुधा तिग्मा सन्ति) हमारे पास भी तीक्ष्ण शस्त्र है। हमारे साथ युद्ध करके कौन गायों को ले जा सकता है।।५।।

व्याख्या – क्रुद्ध पणी प्रत्युतर में कहते हैं हे सुभगे सौभाग्यवती सरमे द्युलोक के अन्त पर्यन्त से इधर-उधर गिरती हुई विचरती हुई इन गायों को प्राप्त करने के लिए तुम यहाँ आयी हो, कौन इन गायों को तुम्हारे लिए युद्ध के बिना देगा अर्थात् कौन बिना युद्ध के इन गायों को हमारे इस पर्वत से छुड़ाकर ले जाए। 'सृजे लेंट का रूप अयुध्वी युध में क्त्वाप्रत्यय करने पर स्नात्वादयश्चेति निपातन करने से नञ्समासत्वात्त्यबादेशभाव होने पर और नञघःप्रकृतिस्वर होने पर' और हमारे तीक्ष्ण आयुधों से लड़कर कौन इन गायों को छुड़ा सकता है।।५।।

सरलार्थ – पणी ने कहा- हे सुन्दरी सरमा तुम स्वर्ग की सीमा से आ रही हो इसलिए मेरे गायों के मध्य में जो-जो आप चाहती है उस-उस को मैं तुम्हे दे सकता हूँ। बिना युद्ध के कौन तुम्हे गाय देता है। हमारे समीप में भी बहुत तीक्ष्ण आयुध हैं। (अर्थात् हम भी युद्ध लड़ने में समर्थ है यह अर्थ है)।

व्याकरण

- **अवसृजात्** – अवपूर्वक सृज्-धातु से लेट् प्रक्रिया में अवसृजाद् रूप बनता है।
- **अयुध्वी** – युध्-धातु से क्त्वाप्रत्यय करने पर स्नात्व्यादयश्च इससे निपात करने पर नञ्समास होने से क्त्वाप्रत्यय को ल्यप् आदेश अभाव प्रक्रिया कार्य में अयुध्वी रूप बनता है।

अस्येना वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात्।।६।।

पदपाठ – **असेन्या। वः। पणयः। वचांसि। अनिषव्याः। तन्वः। सन्तु। पापीः। अधृष्टः। वः। एतवै। अस्तु। पन्थाः। बृहस्पतिः। वः। उभया। न। मृळात्।।६।।**

अन्वय – (हे) पणयः, वः वचांसि असेन्या। (युष्माकम्) पापीः तन्वः अनिषव्याः सन्तु, वः पन्थाः एतवै अधृष्टः अस्तु। (किन्तु) बृहस्पतिः वः उभया न मृळात् ।।६।।

अन्वयार्थः – हे (पणयः) आध्यात्मिक प्रकाश के, दिव्यसत्य के और दिव्य विचार के शत्रुओं पणि नामक दस्युओं! (वः वचांसि) तुम्हारे द्वारा जो पहले कहे गए वचन (असेन्या) सेना बल रहित, सेनायोग्य के नहीं हैं, हमारे सेना के सम्मुख व्यर्थ ही हैं यह भाव है। तुम्हारा (पापीः तन्वः) पापी शरीर है (अनिषव्याः सन्तु) जो बाणों से प्रभावि तन हो, अथवा तुम्हारे काम पाप युक्त होने से और पराक्रमरहित होने से वह बाणों के योग्य नहीं हैं, (वः) तुम्हारा (पन्थाः) मार्ग (एतवै)

जाने को (अधृष्टः अस्तु) भागने को, दुर्गम हो, सरल गामी न हो। (बृहस्पतिः वः उभया न मृळात्) किन्तु बृहस्पति देवता तुहारे लिए दोनों भूलोक और स्वर्गलोक में कुछ भी सुख नहीं देंगे, तुम्हारा कुछ भी कल्याण नहीं करेंगे।।६।।

व्याख्या – उसने (सरमा ने) उन पणियों से कहा की तुम्हारे जो पूर्वोक्तवचन है वो सेना के योग्य नहीं है 'सेनाशब्द से अर्हतीत्यर्थ में छन्दसिचेति यत्प्रत्यय और नञःसमास करने पर बनता है।' ययतोश्चातदर्थ इससे उत्तरपदान्तोदात्तत्व है। वैसे ही तुम्हारा शरीर भी बाणों के योग्य नहीं है पराक्रमरहित होने से पूर्व वत्प्रत्यय ओर्गुण इससे गुण और उसी प्रकार स्वर करने पर। जो पापी पापयुक्त सम्पूर्ण छन्दसीवनिपाविती प्रत्यय करने पर। जसःशः और तुम्हारा पंथामार्ग वैसे ही निम्न जाने योग्य है असमर्थ हो इण्गतौ इससे तुमर्थेतवै प्रत्यय करने पर तवैचान्तश्चयुगपद-धातु से प्रत्ययान्त युगपद उदात्तत्व होने पर वहाँ हेतु कहते है तुम्हारा दोनों प्रकार का पूर्वोक्त देह को बृहस्पति और इन्द्र द्वारा प्रेरित होने से सुख को प्राप्त नहीं होगे किंतु पीड़ा आदि कष्ट को प्राप्त करोगे।।६।।

सरलार्थ – सरमा- आपकी बात सैनिकों के योग्य नहीं है। तुम्हारे शरीर में पाप विद्यमान है। यह शरीर कहीं इन्द्र के बाण का लक्ष्य न हो जाए, देवता कभी भी आक्रमण कर सकते हैं कोई भी नहीं जानता है। मुझे संदेह है की पीछे बृहस्पति आपको क्लेश देंगे। यदि आप गाय नहीं दोगे तो आपदायें सन्निकट ही है।

व्याकरण

- **असेन्या** – सेना-शब्द से तदर्हतीत्यर्थ में और छन्दसि च इससे यत्प्रत्यय और नञ्समास। यहाँ ययतोश्चातदर्थे इससे उत्तरपद अन्तोदात्त है।
- एतवै यहाँ पर इण् गतौ इस गत्यर्थक-इण्-धातु से तुमर्थे तुमर्थे से-सेनसेऽसेन्-क्से-क्सेनध्यै-अध्यैन्-कध्यै-कध्यैन्-शध्यै-शध्यैन्-तवै-तवेङ्-तवेनः इससे तवैप्रत्यय है। यहाँ तवै चान्तश्च युगपद् इस धातु प्रत्ययान्त को युगपद् उदात्त हुआ है।

पाठगत प्रश्न 26.2

1. किसको कोई भी पराजित नहीं कर सकता है।
2. दभत् यहाँ पर दभ् धातु किस अर्थ में है?
3. किसके बिना पणि गायों को नहीं देना चाहते हैं?
4. सुभगशब्द का क्या अर्थ है?
5. किसके वचन सैनिक योग्य नहीं है?
6. बृहस्पति उसके पश्चात् कैसे क्लेश देंगे यह सरमा को आशङ्का है?

26.1.3 मूलपाठ की व्याख्या : श्लोक 7-8

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिरवसुभिर्न्यृष्टः।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ॥७॥

पदपाठ - अयम्। निऽधिः। सरमे। अद्रिऽबुध्नः। गोभिः। अश्वेभिः। वसुऽभिः। निऽऋष्टः। रक्षन्ति। तम्। पणयः। ये। सुऽगोपाः। रेकु। पदम्। अलकम्। आ। जगन्थ॥७॥

अन्वय - सरमे गोभिः अश्वेभिः वसुभिः न्यृष्टः अयं निधिः अद्रिबुध्नः तं पणयः रक्षन्ति ये सुगोपाः अलकम् रेकु पदम् आ जगन्थ।

अन्वयार्थ - हे (सरमे) इन्द्र की दूती (गोभिः अश्वेभिः वसुभिः) धेनू, घोड़े और अन्य ऐश्वर्य के द्वारा (न्यृष्टः) परिपूर्ण (अयं निधिः) यह हमारा कोष (अद्रिबुध्नः) मेघ जिसके बंधक है, सुदृढ आश्रय स्थान जिसका है, यह पर्वत गुहा के अन्दर गुप्त रूप से सुरक्षित रूप से संवृत यह अर्थ है। (तम्) पूर्वोक्त निधि को (पणयः) पणि नामक दस्यु (रक्षन्ति) रक्षा करते है (ये) पणय (सुगोपाः) श्रेष्ठ रक्षक है। इसलिए तुम (अलकम्) व्यर्थ ही (रेकु पदम्) शङ्काकुल स्थान को (आ जगन्थ) आया है।

आध्यात्मिक तात्पर्य - इस मन्त्र में जो निधि का सङ्केत है वह इन्द्र के दिव्यैश्वर्यकोष, -हमारे आत्मा को और दिव्य पवित्र मन गायें, दिव्य उषस् दिव्य का सत्य सूर्य और रश्मियाँ, उसके घोड़े अध्यात्म प्रकाश शक्ति से युक्त, और उसका धन है, उसकी रश्मियाँ और उसकी शक्तीं का फलभूत शान्ति आनन्द और ऐश्वर्य है।

और पणि अनृत अज्ञान और कुटिल शक्ति के, प्रकाशरहित सामान्येन्द्रिय क्रियाओं के शासक शक्ति। इन पणियों के द्वारा हमारे दिव्य ऐश्वर्य भौतिक सत्ता का पर्वत में, देहाद्र गुहा में अन्धकार माया से अवचेतन भौतिक सत्ता से प्रच्छन्न रूप से स्थापित हैं।

सरमा इन्द्र की अन्तर्ज्ञान शक्ति है। इन्द्र से प्रेरित वह हमारे प्रच्छन्न ऐश्वर्य को हमे प्राप्त कराती है। पणि सरमा संवाद की यह पृष्ठभूमि प्रस्तुत मन्त्र में सुस्पष्ट निर्दिष्ट है। विस्तरार्थ इस सूक्त के अन्त में उपन्यस्त आध्यात्मिक व्याख्यान अनुशीलनीय है॥७॥

व्याख्या - और वे पुनः कहते हैं हे सरमे यह निधि हमारे कोष में बन्ध बन्धन में 'बन्धेरर्बधिबुधीचेति न प्रत्ययः बुध-इत्यादेश होने पर अद्रिबन्धक जिसका' उस प्रकार आहत गायों के द्वारा, घोड़े के द्वारा और वसुभिरात्मीय धन प्राप्त होता है। 'ऋषि गतौ क्तप्रत्यय करने पर श्वीदितो निष्ठायाम् इससे इट्प्रतिषेध करने पर गतिरनन्तर इससे गति को प्रकृति स्वर होने पर सुगोपाः गुपू रक्षणे आयप्रत्ययान्त से क्विप् करने पर आतो लोपयलोप करने पर सुष्ठु गोपायितारोयेपणयः' वे असुर उस निधि की रक्षा और पालन करते है। रेकु रेकृशंकायाम् औणादिक उप्रत्यय करने पर शंकित गोभिः शब्दायमान पद हमारे पालित स्थान को व्यर्थ ही प्राप्त हुई। गमेर्लेट का यह रूप है।

टिप्पणियाँ

सरलार्थः – पणि कहता है – हे सरमा मेरी सम्पत्ति पर्वतों के द्वारा सुरक्षित विद्यमान है तथा गायों, घोड़ों और अन्यान्य धन से परिपूर्ण है। रक्षा कार्य में समर्थ पणि लोग इस सम्पत्ति के रखवाली करते हैं। इसलिए आपका यहाँ आना व्यर्थ है। (अर्थात् इन्द्र के भयानकता को प्रदर्शित करके हम से गायों को प्राप्त करने में आप असमर्थ है।)

व्याकरण

- **अद्रिबुध्नः** – यहाँ पर बन्ध बन्धने इस धातु से नप्रत्यय करने पर बन्ध-इसको बुध-आदेश।
- **न्यृष्टः** – ऋषि गतौ इस धातु से क्तप्रत्यय करने पर श्वीदितो निष्ठायाम् इससे इट्प्रतिषेध।

एह गंमन्नृषंयः सोमंशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः।
त एतमूवं वि भजन्त गोनामथैतदृचः पणयो वमन्नित्॥८॥

पदपाठ – आ। इह। गमन्। ऋषयः। सोमंऽशिताः। अयास्यः। अङ्गिरसः। नवंऽग्वाः। ते। एतम्। ऊर्वम्। वि। भजन्त। गोनाम्। अथ। एतत्। वचः। पणयः। वमन्। इत्॥८॥

अन्वय – सोमशिताः अयास्यः अङ्गिरसः नवग्वाः ऋषयः इह आ गमन्। ते एतं गोनाम् ऊर्व वि भजन्त। अतः एतत् वचः पणयः वमन् इत्॥८॥

अन्वयार्थ – हे (सोमशिताः) सोम से आनन्द रसपान से तीक्ष्ण किये गए, प्रदीप्त तेज (अयास्यः) सत्य होने से सप्त शीर्षधिय आविष्कर्ता ऋषि (अङ्गिरसः ऋषयः) दिव्याग्नि के पुत्र, और उसकी शक्तिरूप दिव्य द्रष्टा उनके भूलोक गए प्रतिनिधि मनुष्यों के पूर्व पितर (नवग्वाः) ये नव मासों के अन्तर्यज्ञ करके परमज्योतिष और सत्यसूर्य की नव रश्मि प्राप्त हुई वे (इह आ गमन्) यहाँ तुम्हारे अद्रिगुहा में आयेंगे। (ते) वे सभी पूर्वोक्त ऋषि (एतं गोनाम् ऊर्वं) इन गायों को छोड़ दो (वि भजन्त) छोड़कर, उन गायों को छोड़ दो और उपभोग करो। (अथ) तब तुम (एतत् वचः) इस वचन को, 'व्यर्थ ही तुम इस शङ्काकुल स्थान को आयी हो' (पणयः) अध्यात्मप्रकाश के शत्रुओं, प्रकाश किरणों के अपहर्ता पणिनामकदस्यु ! (वमन् इत्) उनको छोड़ दो। इसलिए गर्वपूर्ण वचनों का परित्याग करो॥८॥

व्याख्या – सरमा पुनः कहती है हे पणय सोमशिता-सोम से तीक्ष्ण किये गए सोमपान से मत्ताः शिञ्निशाने कर्म करने से क्तप्रत्यय करने पर तृतीयाकर्मणीतिपूर्वपदप्रकृतिस्वर होने पर। उस प्रकार सरलगति से अथवा प्रशांत वायु के मध्य में कुछ गति प्रेरक वायु आकार इन रश्मियों, जलों के आच्छद्क को विभक्त छिन्न भिन्न कर देती हैं हे पणियों वाणिजों की भांति जल को छिपाने वाले मेघों यह तुम्हारा वचन और वमन जैसा होगा तुम्हे स्वीकार करना पड़ेगा।

सरलार्थः – सरमा कहती –सोमपान से प्रमत्त होकर अङ्गिरस और नवगण के साथ यहाँ आकर इन सभी गायों को आपसे छुड़ाकर लेकर जायेंगे। हे पणि उस समय में तुम्हें ऐसी दर्पोक्ति छोड़नी पड़ेगी। (तब आप कुछ भी करने में असमर्थ होंगे यह भाव है।)

व्याकरण

- **सोमशिताः** – यहाँ शिञ् निशाने इस धातु से कर्म में क्तप्रत्यय करने पर। तृतीया कर्मणि इस सूत्र से यहाँ पूर्वपदप्रकृतिस्वर।
- **आगमन् यहाँ पर गम का छन्दसि लुङ्लङ्लिटः** – इस सूत्र से सार्वकालिक लुङ्। यहाँ लृत आदि होने से च्लि को अङ्।
- गोनाम् यहाँ पर गो को छन्द में नुडागम।

पाठगत प्रश्न 26.3

1. पणियों की सम्पत्ति कैसे रक्षित है?
2. पणियों के सम्पत्ति किनके द्वारा परिपूर्ण है?
3. क्यों अङ्गिरस और नवगण प्रमत्त है?
4. अङ्गिरस और नवगण क्या सिद्ध करेंगे?
5. सोमशिताः इस शब्द का क्या अर्थ है?

26.1.4 मूलपाठ की व्याख्या : श्लोक 9-11

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम॥९॥

पदपाठ – एव। च। त्वम्। सरमे। आऽजगन्थ। प्रऽबाधिता। सहसा। दैव्येन। स्वसारम्। त्वा। कृणवै। मा। पुनः। गाः। अप। ते। गवाम्। सुऽभगे। भजाम॥९॥

अन्वय – (हे) सरमे, दैव्येन सहसा प्रबाधिता एव त्वं च आजगन्थ, त्वा स्वसारं कृणवै। पुनः मा गाः। (हे) सुभगे गवां ते अप भजाम॥९॥

अन्वयार्थ – हे (सरमे) हे इन्द्रदूती, देवशुनि। (दैव्येन सहसा) इन्द्रादि देवों के बल से (प्रबाधिता एव त्वं) प्रेरित और विवश की गई तुम यहाँ (च आजगन्थ) आई हो। च यह पादपूर्ण (त्वा स्वसारं कृणवै) हम तुम्हे अपनी बहन, बहन के समान सहयोग करते हैं। (पुनः मा गाः) तुम हमारे यहाँ आ जाओ। (हे सुभगे) हे सौभाग्यशाली, शोभा ऐश्वर्ययुक्त, सुन्दरी सरमे (गवां ते अप भजाम) गायों का एक गायों का भाग हम तुम्हें देते हैं, अथवा हम गायों का तुम्हारे साथ विभाजन करते है॥९॥

व्याख्या – व्याख्या–उसके द्वारा ऐसा कहने पर पणि ने कहा हे सरमे तुम देवसंबन्धि के सहसा बल से बाधिता जैसे, वैसे वलपुर प्राप्त होकर स्थित गायों के द्वारा उससे पीड़िता तुम यहाँ आयी

टिप्पणियाँ

हो तो आगतवत्यसि च शब्द अर्थ में निपातैर्यद्यदिहन्तेतिङोनिघाताभाव गमेर्लिटथलरूप होने पर सहसुप यहाँ पर सहेतियोगविभाग से समास तिङिचोदात्तवर्तीति गति के निघात और नित्स्वर हो तो तुम्हे अपनी बहन के रूप में स्वीकार्य करते हैं समूह अपेक्षा एकवचन में तुम पुनः हमारे पास आ जाना इन्द्रादियों के पास आ जाना तो हे सुभगे सरमे तुम अपने गायों के समूह को पर्वत से निकालकर तुम और हम दोनों सेवा का उपभोग करेंगे।

सरलार्थ – पणिगण प्रत्युत्तर में कहते है – हे सरमा, देवों ने डरकर तुम्हे यहाँ भेजा है, इसलिए तुम यहाँ आई हो। तुम्हे हम अपनी बहन समझते हैं। तुम अब वापस मत जाना जब तक चाहो यहाँ ही निवास करो। सुन्दरी हमारे गोधन के भाग को भी स्वीकार करो।

व्याकरण

- आजगन्थ यहाँ पर आ–पूर्वक गम्–धातु से लिट् थल् प्रक्रिया में जगन्थ रूप। आपूर्वक गम् का सह सुपा इससे सह इसके योग विभाग से समास। यहाँ तिङि चोदात्तवतीति गति को र्निघात और नित्स्वर।
- स्वसारम् यहा पर स्वसृशब्द का द्वितीया एकवचनान्त का रूप है।

नाहं वेंद भ्रातृत्वं नो स्वंसृत्वम इन्दों विदुराङ्गिरसश्च घोराः।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायम अपातं इतपणयो वरीयः॥१०॥

पदपाठ – न अहम्। वेद। भ्रातृत्वम्। नो। इति। स्वसृऽत्वम्। इन्द्रः। विदुः। अङ्गिरसः। च। घोराः। गोऽकामाः। मे। अच्छदयन्। यत्। आयम्। अप। अतः। इत। पणयः। वरीयः॥१०॥

अन्वय – अहं भ्रातृत्वं न वेद। नो स्वसृत्वम्। इन्द्रः घोराः अङ्गिरसश्च विदुः। यत् (अहम्) आयम् (ते) मे गोकामाः अच्छदयन्। अतः (हे) पणयः वरीयः अप इत॥१०॥

अन्वयार्थ – (अहं भ्रातृत्वं न वेद) हे पणि, मैं भाई को नहीं जानती हूँ। (नो स्वसृत्वम्) और न ही बहन। अथवा न मैं तुम्हारे भ्रातृत्व को स्वीकार करती हूँ और न ही अपने को तुम्हारी बहन मानती हूँ। अब तो (इन्द्रः घोराः अङ्गिरसश्च विदुः) इन्द्र, शत्रूओं को भयङ्कर ताड़ित करने वाले को और अङ्गिरस को जानो। (यत् आयम्) जिससे मैं तुम्हारे स्थान आयी हूँ। अथवा (गोकामाः) गाय प्रकाश धेनू की कामना करती हूँ, ज्योति गायों के अभिलाषि इन्द्र आदि ने(मे अच्छदयन्) मुझे अपने रक्षा कवच से ढ़क कर यहाँ भेजा है, (अतः) इसलिए तुम (पणयः अप इत) इस स्थान से सुदूर जाओ। उसी में तुम्हारा (वरीयः) कल्याण होगा॥१०॥

व्याख्या – वह सरमा उनको प्रत्युत्तर में कहती है हे पणि मै भ्रातृत्व को नहीं जानती हूँ और न ही स्वसृत्व को जानती हूँ। उसको जानने वाले कहते है कि इन्द्र घोर शत्रुओं को और भयंकर अंगिरस तुम्हारे को दण्ड प्रदान करेंगे और इस स्थान से मैं इन्द्रादि को प्राप्त होउगीं अयपयगतौ लङ् का रूपतब मेरी गायों की कामना करने के लिए तुम्हारे द्वारा अपहरण की गई गायों की कामना करने वाले इन्द्रादि तुम्हारे इस स्थान पर आयेंगे। छद अपवारणे इस कारण से हे पणयों

अति दूर गायों को छोड़कर अन्य स्थान को चले जाओ। अथवा बहुत दूर देश को जाओ। इत् इण्गतौ लोटरूप वरीयः उरुशब्दादीय सुन करने पर प्रियस्थिर इत्यादिनावरादेश होने पर।।१०।।

सरलार्थ – सरमा कहती है –मैं भाई और बहन की बातों को नहीं समझ सकती। इन्द्र तथा पराक्रमी अङ्गिर वंशीया जानते है की गायें पाने के लिए रक्षापूर्वक उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है। मैं उनका आश्रय पाकर ही यहाँ आई हूँ। इसलिए कहती हूँ की हे पणियों यहाँ से बहुत दूर चले जाओ।

व्याकरण

- आयम् यहाँ पर अय गतौ इस धातु से लङ् छन्द में रूप है।
- इण् गतौ इस धातु से लोट् प्रथमपुरूषद्विवचन प्रक्रिया कार्य में इतः रूप है।

दूरमित पणयो वरीय उद् गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूह्ळाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः॥११॥

पदपाठ – दूरम्। इत। पणयः। वरीयः। उत्। गावः। यन्तु। मिनतिः। ऋतेन। बृहस्पतिः। याः। अविन्दत्। निऽगूह्ळाः। सोमः। ग्रावाणः। ऋषयः। च। विप्राः॥११॥

अन्वय – (हे) पणयः (यूयं) वरीयः दूरम् इत। गावः ऋतेन मिनतीः उत् यन्तु। निगूळ्हाः याः (गाः) बृहस्पतिः अविन्दत् सोमः ग्रावाणः विप्राः ऋषयः च (अविन्दन्)।।११।।

अन्वयार्थ – हे (पणि) हे पणि नाम का असुर, जीवन के सामान्य-प्रकाशरहित-इन्द्रिय-क्रियाओं के शासक दस्यों ! तुम (वरीयः दूरम् इत) दूर अत्यधिक दूर स्थान के प्रति चले जाओ, अथवा यहाँ से बहुत दूर भाग जाओ, यदि शुभ चाहते हो तो। (गावः) अन्तर्ज्योतिष रश्मि (ऋतेन) सत्य से (मिनतीः) गुहाद्वार को तोड़कर अज्ञानान्धकार का विनाश करेंगे (उत् यन्तु) अवचेतन निम्नतम गुहा अथवा पाताल से अथवा ऊर्ध्व को जाओ। अथवा (मिनतीः) तुम्हारे द्वारा अवरुद्ध, बन्दीकृत और बाध्यमान(गावः) (गावः) (ऋतेन) सत्य की तेज शक्ति से, सत्यवाणी को उच्चारण करके (उत् यन्तु) चेतन पाताल से बाहर आओ। (निगूळ्हाः याः) जो प्रच्छन्न गाय(बृहस्पतिः) सर्जनशील अन्तर्वाणी अधिपति देव बृहस्पति(अविन्दत्) अन्वेषण करते है (सोमः) आनन्दामृतत्व के अधिपति सोमदेव, (ग्रावाणः) सोमरस निष्पीडक शक्ति, (विप्राः ऋषयः च) और ज्ञान प्रदीप्त द्रष्टा अन्वेषण करते हुए अन्त में प्राप्त होंगे।।११।।

व्याख्या – हे पणि तुम यहाँ से बहुत दूर देश को चले जाओ। तुम्हारे द्वारा अपहृत गायें ऋत सत्त्व होने से सदा बंधन में नहीं रहती द्वार को तोडकर बाहर की और दौड़ेगी। अथवा मिनती व्यत्यय कर्मणिशता। तुम्हारे द्वारा बाध्यमान वे गायें ऋतु स्तुति से इन्द्र की सहायता से बृहस्पति आदि पर्वत के औषधियों का ज्ञान रखने वाले गाय आदि को बृहस्पति अन्वेषण करते हुए प्राप्त करेंगे। तथा पत्थर पर सोम का घर्षण करने वाले विप्र मेधावि ऋषि अंगिरस प्राप्त करेंगे। विद्लृ लाभे तुदादि से छन्द में लुङ् लङ् लट: इससे भविष्यदर्थ में लङ् शे मुचादीनाम इससे नुमागम।।११।।

टिप्पणियाँ

सरलार्थ – हे पणि यहाँ से दूर देश को चले जाओ। गायें कष्ट पा रही हैं। तुम्हारे द्वारा अपहरण की गई गायों किस गुप्तस्थान में हैं ये वे इन्द्र, बृहस्पति, सोम से अभिषेक करने वाले ग्रावाण, ऋषि और अङ्गिरस जानते हैं। (अर्थात् ये सभी यहाँ आयेंगे इसलिए आप यहाँ से दूरदेश को पलायन कर जाओ।)

व्याकरण

- **अविन्दत्** – यहाँ तुदादिगण की विद्लृ लाभे इस धातु से छन्दसि लुङ् लङ् लिट: इस सूत्र से भविष्य अर्थ में लङ् को अडागम करने पर शेमुचादीनाम इससे नुडागम प्रक्रियाकार्य में अविन्दत् यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 26.4

1. पणिगण किसको बहन के स्वरूप में मानते है?
2. आजगन्थ इसका क्या अर्थ है?
3. सरमा को पणिगण के पास किसने भेजा?
4. अपहृत गायें किस गुप्तस्थान पर है ये कौन जानता है?
5. इन्द्रादि से अपनी आत्मा की रक्षा के लिए सरमा ने पणियों का क्या उपदेश दिया?

26.3 सरमा पणि संवाद सूक्त का सार

वैदिक साहित्य में ऋग्वेद चारों वेदों में ही अत्यन्त प्रसिद्ध है। वहाँ ऋग्वेद के दशम मण्डल का एक सौ आठवाँ सूक्त सरमा पणि संवाद सूक्त है। वैदिक मन्त्र क्लिष्ट रूप से विद्यमान हैं। यहाँ सरमा पणि के मध्य में गो बिषय में हुई कथा को आश्रित करके अत्यन्त सरल रूप से यह संवाद सूक्त निर्मित है। यह घटना भी बहुत ही लोक प्रसिद्ध है।

पणि कोई क्रुर राक्षस है। पणि देवताओं की सभी गायों को चुरा लिया। सभी देव गायों की खोज में तत्पर होते है। एक बार बृहस्पति ने इन्द्र की सभा में जाकर के कहा की पणि नाम के कोई असुर ने गायों को चुरा लिया है। और रसानाम की नदी के तट पर पर्वत की गुहा में अत्यन्त गुप्त रूप से गायों को रखा है। वृत्तान्त को जानकर सरमा नाम की कोई रमणी दूत रूप से पणि के पास भेजी। अत्यन्त कष्ट से सरमा पणि के पास गई। उसके बाद पणि ने भी प्रश्न किया की किसलिए यह सुन्दरी स्वर्ग लोक से यहाँ पर आई। सरमा ने उत्तर दिया की देवों ने गायों के विषय में सभी वृत्तान्त जान लिया है। इसलिए हे पणि यहाँ से जाओ और गायें सौप दो। पणि ने गर्व के साथ कहा की मेरी रक्षा के लिए अनेक कर्मचारी नियुक्त हैं। इसलिए यदि गाय स्वीकार करने के लिए देव आये तो उनकी ही पराजय होगी। यदि आपने इन्द्रलोक छोड़ दिया है तो हमारे यहाँ बहन के रूप में रह सकती हो। यह सब सुनकर सरमा कहती है की हे पणि मेरी चिन्ता मत करो, अपनी जीवन की रक्षा के लिए गाय देकर यहाँ से शीघ्र चले जाओ। परन्तु पणि ने गायों का प्रत्यार्पण करना उचित नहीं समझा। उसके बाद इन्द्र के साथ पणि का युद्ध सम्पन्न हुआ।

और उस युद्ध में पणि को मारकर सभी गाय लेकर इन्द्र इन्द्रलोक को गया। संवाद माध्यम से यह वृत्तान्त अच्छी प्रकार से प्रकट होता है। इसलिए ही संवाद का सरमा पणि संवाद सूक्त यह नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पाठ का सार

ऋग्वेद का दशम मण्डल का एक सौ आठवाँ सूक्त सरमा पणि संवाद सूक्त है। पणि कोई क्रुर राक्षस है। पणि देवताओं की सभी गायों को चुरा लिया। सभी गायों की खोज में तत्पर होते है। एक बार बृहस्पति इन्द्र की सभा में आकर बताते है की पणि नाम का कोई असुर ने गायों को चुरा लिया है। और फिर रसानाम की नदी के समीप में किसी पर्वत की गुफा में अत्यन्त गुप्तरूप से गायों को स्थापित किया। वृत्तान्त को जानकर सरमा नाम की कोई रमणी देव दूती रूप में पणि के पास भेजी गई। अत्यन्त कष्ट से सरमा पणि के समीप गई। उसके बाद पणि ने भी प्रश्न किया की किसलिए स्वर्गलोक से यह सुन्दरी यहाँ पर आयी। सरमा ने उत्तर दिया की देवों ने गायों के विषय में सभी वृत्तान्त जान लिया है। इसलिए हे पणि गायों को सौपकर यहाँ से चले जाओ। पणि ने गर्व के साथ कहा की मेरी रक्षा के लिए अनेक कर्मचारी नियुक्त है। इसलिए यदि गायें स्वीकार करने के लिए देव आयेंगे तो उनकी ही पराजय होगी। यदि आपको इन्द्रलोक से पीड़ा दी गई है तो आप हमारी बहन के रूप में यहाँ पर रह सकती हो। इन सब को सुनकर सरमा ने कहा की हे दुष्ट मेरी चिन्ता मत करो, अपने जीवन की रक्षा के लिए गायों को देकर यहाँ से शीघ्र चले जाओ। परन्तु पणि ने गायों को सौपना उचित नहीं समझा। उसके बाद इन्द के साथ पणि का युद्ध सम्पन्न हुआ। और उस युद्ध में पणि को मारकर सभी गायों को स्वीकार करके इन्द्र इन्द्रलोक को गये। संवाद माध्यम से यह वृत्तान्त अच्छी प्रकार से प्रकट होता है। इसलिए ही संवाद का सरमा पणि संवाद सूक्त इस नाम से सुप्रसिद्ध है।

पाठांत प्रश्न

1. सरमा पणि संवाद सूक्त का सार संक्षेप से लिखो।
2. किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् ... इस मंत्र की व्याख्या करो।
3. इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि ... इस मंत्र की व्याख्या करो।
4. की दृङिन्द्रः सरमे का दृशीका ... इस मंत्र की व्याख्या करो।
5. नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स ... इस मंत्र की व्याख्या करो।
6. इमा गावः सरमे ये ऐच्छः ... इस मंत्र की व्याख्या करो।
7. अयं निधि सरमे अद्रिबुध्नो ... इस मंत्र की व्याख्या करो।
8. एवा च त्वं सरसम् ... इस मंत्र की व्याख्या करो।
9. नाहं वेदं भ्रातृत्वं नो स्वसृजम् ... इस मंत्र की व्याख्या करो।

10. दूरमित पणयों वरीय उद् ... इस मंत्र की व्याख्या करो।
11. सरमा का चरित्र लिखो।
12. सरमा के द्वारा उपस्थापित इन्द्र स्वरूप को लिखो।
13. पणि परिचय को प्रकट करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

26.1

1. पणि ने सरमा के प्रति कहा।
2. भेजा यह अर्थ है।
3. इन्द्र की।
4. गाय देना स्वीकार किया।
5. कितना यह अर्थ है।

26.2

1. इन्द्र को।
2. हिंसार्थक।
3. युद्ध के विना।
4. सुन्दर यह अर्थ।
5. पणियों का।
6. पणियों के लिए।

26.3

1. पर्वत के द्वारा।
2. गायों, घोड़ों और अन्यधन के द्वारा परिपूर्ण।
3. सोमरसपान से।
4. गायों को छोड़ दो।
5. सोमपान से प्रमत्त यह अर्थ है।

26.4

1. सरमा को।
2. आयी यह अर्थ है।
3. इन्द्र आदि के लिए।
4. इन्द्र, वृहस्पति, सोम से अभिषिक्त ग्रावाण, ऋषियों और अङ्गिर ने ज्ञान लिया है।
5. यहाँ से दूरदेश को भाग जाओ।

॥ छब्बिसवाँ पाठ समाप्त ॥

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम
वेदाध्ययन (३४५)

औचित्य

भारतीय दर्शन का संस्कृत साहित्य का और प्रादेशिक भाषीय साहित्य का सम्पूर्ण वाङ्मय वृक्षतुल्य है। उसका विस्तार महान है। यह बद्ध मूल वृक्ष है इसलिए ही महान है, सनातन है, चिरञ्जीवी भी है। इस वृक्ष का मूल अपरिवर्तनीय है। परन्तु नये पल्लव, नूतन फूल और नूतन फल नित्य उत्पन्न होता है। क्या उस मूल को ये स्वाभाविक जिज्ञासा को देश-विदेश में मनुष्य करते हैं। जो कोई भी वहाँ पर प्रयत्न करता है वह सफलता को ही प्राप्त करता है। वह दीर्घ काल के लिए होता है, और कृतकृत्य होता है। उसका मूल क्या? उसका बोद्ध क्या है? उसकी शाखा क्या? अथवा फल और फूल क्या होता है? उसकी छाया क्या? उसका सौरभ क्या है? उपभोक्ता कौन है? वे कितने प्रकार के हैं, इस प्रकार का यह वैचित्र्य विषय का विषय है। परन्तु उस वृक्ष का मूल क्या? इसके सम्पूर्ण विषय का उपन्यास करना यह सम्भव नहीं है। फिर भी छात्र यदि यहाँ से कुछ भी हासिल कर सकते है तो हमारा प्रयत्न सफल होगा ऐसा हम मानते हैं।

भारतीय समाज का मनोरंजन जीवन दैनन्दिन व्यवहार धर्माचरण आध्यात्मिक इन सबका सम्पूर्ण मूल गौरवशाली वेद ही है। भारतीय चिन्तन में वैदिक वाङ्मय का वैशिष्ट्य सभी को अच्छी प्रकार से जानना चाहिए। वैदिक वाङ्मय का विभूति वास्तविक है। यह वाङ्मय को प्राचीन, सम्पूर्ण पृथिवी व्यापि, इसका परिमाण विशाल है, इसका वैभव अतिशय रूप से, इसका सौन्दर्य गुण अतुलनीय है। यह विशाल मौलिक और पुरातन वाङ्मय है। इसलिए ही वहाँ हमारा अभिनिवेश प्रवृत्ति जिज्ञासा और श्रद्धा रहती है। केवल इतना ही नहीं। अन्य भी निमित्त वैदिक वाङ्मय का अध्ययन में विद्यार्थियों के लिए विशिष्ट अभिरुचि को उत्पन्न करता है। वेद के सम्यक ज्ञान के अभाव में अनेक धर्म सम्प्रदाय मत और आचार-विचार प्रवृत हुए, जिसका प्रतिपादित दृष्टी शास्त्र विरुद्ध के लिए है। समाज धर्म विषय में अत्यन्त श्रद्धालु होता है। श्रद्धा के निवारण के लिए भी वेद का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। विज्ञान का अध्ययन उदर पूर्ति के लिए। जीवन यात्रा के निर्वाह के लिए। परन्तु जीव कहाँ से आता है, कहाँ जाता है, उसके सुख दु:ख आदि का कारण क्या है? इहलोक परलोक है अथवा नहीं। पुनर्जन्म है अथवा नहीं। यदि है तो मरने पर कुछ करना चाहिए अथवा नहीं यह सम्पूर्ण विषय विज्ञान के अधीन है। यह धर्म के अधीन है। उस सम्पूर्ण धर्म का मूल वेद है। इसलिए जीविका के लिए विज्ञान को सुख दु:ख निर्णय के लिए इह परलोक यात्रा के द्वारा वेद का सुन्दर विभाग होता है। इसलिए वेदाध्ययन सभी के लिए सरल करना ही चाहिए।

अधिकारी

यह पाठ्य विषय सम्पूर्ण रूप से संस्कृत भाषा से हिन्दी भाषा में अनुवादित है। इसलिए इस पाठ का अधिकारी कौन होगा यह प्रश्न निश्चित रूप से उठेगा।

यहाँ पर वह छात्र अधिकारी है जो -

- काव्य व्याकरण कोष और वेद का विविध रूपों से अध्ययन किया हो।
- सरल संस्कृत, सरल हिन्दी, संस्कृत साहित्य का सरल गद्यांश को और पद्यांश को पढ़ और समझ सके।

- पाणिनीय व्याकरण को जानता है।
- भावों को संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में लिखकर प्रकट कर सके।

प्रयोजन (सामान्य)

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वेदाध्ययन का पाठ्य रूप से योजना के कुछ उद्देश्य यहाँ नीचे दिए जाते है।

- भारतीय जीवन का सर्वस्व वेद है। उसका ज्ञान हो।
- वेद से निर्गत दर्शनो का वैज्ञानिक तत्त्वों का कला साहित्य आदि का ज्ञान हो।
- वेद के अध्ययन से पुण्यवान् सरल स्वभाव वाला परोपकारी मनुष्य होता है। इसलिए वेदाध्ययन किस प्रकार करना चाहिए।
- वेद के बहिर भूत नास्तिक दर्शन अपूर्ण है। उनका पूर्णरूप से वेद को पढ़कर छात्र को प्रयत्न करना चाहिए।
- वेद का जिज्ञासुओं के जिज्ञासा के समाधान के लिए अध्येता समर्थ हो।
- संस्कृत और संस्कृति की रक्षा के लिए समर्थ प्रयत्न, श्रद्धाशील छात्र हो।
- अति प्राचीन भारतीय ज्ञान सम्पति को वैज्ञानिकता सभी मनुष्यों की उपकारिता और महिमा के लिए सम्पूर्ण जगत में छात्र का विस्तार हो।
- वेद ज्ञान की वृद्धि होगी जिस वेद के सरल अंशों को पढ़कर छात्र उन अंशों के अर्थों को जानेंगे। वे स्वयं ही मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति करने में समर्थ होंगे।
- वेदाध्ययन करके छात्र महाविद्यालय स्तर पर और विश्वविद्यालय स्तर पर चल रहे पाठ्यक्रम में अध्ययन के लिए अवसर को प्राप्त करने में समर्थ होंगे।

प्रयोजन (विशिष्ट)

वेदाध्ययन के प्रवेश के लिए सामर्थ्य

- सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के प्रारूप को जानकर उन अंशो को पढ़ सकते हों।

वैदिक सूक्तों के अध्ययन में पाठक समर्थ हो।

- इस विषय को पढकर वेदों में प्रवेश करें।
- वेदों के गौरव को जानने में।
- पढ़ी हुई सामग्री के आश्रित प्रश्नों के उत्तर देने में।

सूक्त व्याख्यान में सामर्थ्य

- वैदिक भाषा में ज्ञान को प्राप्त करके अन्य सूक्तों के व्याख्यान और अध्ययन करने में छात्र प्रवृत होते हैं।
- वैदिक व्याकरण के ज्ञान से वैदिक भाषा की भित्ति को जानेंगे। उन सूत्रों के व्याख्यान में समर्थ होंगे।
- सूक्तों के तात्पर्य को जानेंगे। उससे वैदिक चिन्ता का व्याख्या करने में समर्थ होंगे।

सूक्त प्रयोग का और व्याकरण प्रयोग का सामर्थ्य

- सूक्तों के अध्ययन से आनन्द को प्राप्त कर सकें। सूक्त में कहे हुए विषयों का अपने जीवन में प्रयोग करना चाहिए।
- वैदिक व्याकरण ज्ञान से वैदिक भाषा अध्ययन में समर्थ होकर व्याकरण का प्रयोग करना चाहिए।

वैदिक स्वर विश्लेषण में सामर्थ्य

- स्वर भेद से शब्द के अर्थ में भेद होता है। इसलिए वैदिक स्वर ज्ञान का नितान्त आवश्यक है, वेदाध्ययन के लिए।
- स्वर का ज्ञान प्राप्त कर के छात्र उसके अनुसार वैदिक शब्दों का अर्थ समझ सकते हैं।

पाठ्यसामग्री

पाठ्यक्रम के साथ निम्नलिखित सामग्री समायोजित होगी -

- दो मुद्रित पुस्तकें।
- एक शिक्षक अङ्कित-मूल्याङ्कन प्रपत्र दिया जायेगा। इसके साथ छात्रों के द्वारा एक परियोजना कार्य भी (Project) करना है।
- वेदाध्ययन के शिक्षण प्रायोगिक रूप से भी होगा। परन्तु प्रायोगिक परीक्षा कोई भी नहीं है।
- पाठ निर्माण करने में संपर्क कक्षाओं में अध्यापन काल में छात्रों के जीवन कौशल का अच्छी प्रकार से विकास हो ऐसा ध्यान होना चाहिए। इससे उनमें अपने आप युक्ति समन्वित चिन्तन शक्ति का विकास होगा।
- मुक्त विद्यालय में प्रवेश के बाद इस पाठ्यक्रम को विद्यार्थी एक वर्ष से अधिक से अधिक पांच वर्षों में पूर्ण कर सकते है।

अङ्क मूल्यांकन विधि और परीक्षा योजना

- पत्र के (१००) सौ अङ्क हैं। परीक्षा का समय तीन घंटे का होगा। इस पत्र का लिखित स्वरूप में ही है (Theory)। प्रायोगिक रूप से (Practical) कुछ भी नहीं है। रचनात्मक (Formative) योगात्मक (Summative) दो प्रकार से मूल्यांकन होगा।
- **रचनात्मक मूल्याकन** - बीस अङ्कों का (२०) शिक्षक अङ्कित कार्य का (TMA) एक पत्र है। इसका मूल्यांकन अध्ययन केन्द्र में (Study Centre) हो। इस कार्य के अङ्क का अङ्क पत्रिका में (Marks sheet) अलग से उल्लेख होगा।
- **योगात्मक मूल्याकन** - वर्ष में दो बार (मार्च मास में और अक्टूबर मास में) बाह्य परीक्षा होगी। वहाँ परीक्षा में समुच्चित मूल्यांकन होगा।
- प्रश्नपत्र में ज्ञान (Knowledge), अवगम (Understanding) अभिव्यक्ति (Application skill) और अवलम्ब युक्त अनुपात से प्रश्न पूछे जायेंगे।
- **परीक्षाओं में अतिलघुत्तरात्मक** - लघूत्तरात्मक-निबन्धात्मक-प्रश्नों का भी समावेश होगा।
- सूत्र का अर्थ, सूत्र की व्याख्या और रूपसाधन ये तीन मुख्य विषय होगें। अन्य स्थानों पर प्रसक्त अनुप्रसक्त भी कुछ विषय को जानना चाहिए।
- उत्तीर्णता का परिमाप (condition) - तैतीस प्रतिशत (३३%) अङ्क उत्तीर्णता के लिए (मानदण्ड) है।
- संस्थान की परीक्षा में उत्तर लेखन भाषा - संस्कृत (अनिवार्य) या हिन्दी।

अध्ययन योजना

- निर्देश भाषा (Medium of instruction) - संस्कृत।
- स्वाध्याय काल अवधि (Self-study hours) - २४० घंटे
- कम से कम तीस (३०) सम्पर्क कक्षा (Personal Contact Programme - PCP) अध्ययन केन्द्र में होगी।
- भारांश - सैद्धान्तिक (Theory) शत प्रतिशत। प्रायोगिक (Practical) - नहीं है।

अङ्क विभाजन

आगे की सारणी में देखना चाहिए

पाठ्यविषय का उद्देश्य (पाठ्यविषय के बिन्दु)

उच्चतर माध्यमिक कक्षा की वेदाध्ययन पुस्तक में निम्न विषय हैं। जिनका विवरण नीचे दिया गया है।

सम्पूर्ण पाठ्यविषय के तीन भाग किये गए हैं। प्रत्येक भाग में कुछ पाठ, स्वाध्याय के लिए कितने घंटे, सैद्धान्तिक परीक्षा में कितने अंश, प्रायोगिक परीक्षा में कितने अंश, और प्रत्येक अध्याय के अङ्क विभाजनं विषय यहाँ दिए गए है।

अध्याय- १ वैदिक साहित्य का इतिहास (पाठ १-७)

अध्याय का औचित्य

जैसे मूल के बिना वृक्ष का नहीं सोच सकते है वैसे ही वेद के विना भारतीय वाङ्मय को नहीं सोच सकते हैं। इसलिए मूलभूत वेद के अध्ययन में प्रवृत्त होने से पूर्व वेद का सही परिचय अत्यन्त ही आवश्यक है।

इस विभाग में वैदिक वाङ्मय की वैलक्षण्य प्रकट करते हैं। वेद के संहिता साहित्य, ब्राह्मण साहित्य और वेदाङ्ग साहित्य के विषय इसके अंतर्गत हैं। वेद के आरण्यक और उपनिषद् दो भाग है। उस विषय में पर्याप्त आलोचना यहाँ दी गई है।

अध्याय- २ वैदिक स्वर प्रक्रिया (पाठ ८-१६)

अध्याय का औचित्य

व्याकरण ज्ञान के बिना वेदों का अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं समझ सकते हैं। इसलिए इस विभाग में पाणिनीय व्याकरण का वैदिक भाग उपस्थित किया है। विशेष रूप से स्वर भेद से अर्थ भेद होता है। इसलिए स्वर को जानने वाला ही वेद को समझ सकता है। इस विभाग में वैदिक स्वर ही प्रमुख विषय है। वहाँ पर भी कुछ मुख्य ही सूत्र दिए है। यहाँ सूत्र की व्याख्या कैसे होती है, उससे वैदिक स्वर कैसे होते हैं, ये विषय प्रमुख रूप से उपस्थापित किये गये हैं।

अध्याय- ३ वैदिक सूक्तों का अध्ययन (पाठ- १७-२८)

अध्याय का औचित्य

वैदिक सूक्त भारतीय ज्ञान के उत्सव स्वरूप है। यहाँ कुछ सूक्तों के अध्ययन के लिए सामग्री है। सूक्तों का अध्ययन कैसे होता है, कौन-कौन से विषय वेदाध्ययन काल में होते हैं, सूक्तों का व्याकरण क्या है, सूक्त का तात्पर्य क्या है ये विषय यहाँ पर दिये गये हैं। कुछ संवाद सूक्त भी यहाँ है यह भी एक विशेषता है।

पाठ्य विषय का उद्देश्य (पाठ्य विषय के बिन्दु)

उच्चतर माध्यमिक कक्षा का वेदाध्ययन पुस्तक में निम्न विषय है -

क्र.सं.		मुख्यबिन्दु	स्वाध्याय के लिए समय	भारांश (अङ्का)
१	अध्याय - १	**वैदिक साहित्य का इतिहास**	५०	२४
	पाठ - १	वैदिक साहित्य का इतिहास- वैदिक वाङ्मय की वैलक्षण्य, वेद प्रमाण विमर्श		
	पाठ - २	वैदिक साहित्य का इतिहास- संहिता साहित्य (ऋग्वेद का)		
	पाठ - ३	वैदिक साहित्य का इतिहास- संहिता साहित्य (सामवेद और यजुर्वेद का)		
	पाठ - ४	वैदिक साहित्य का इतिहास- संहिता साहित्य अथर्ववेद का। ब्राह्मण साहित्य का।		
	पाठ - ५	वैदिक साहित्य का इतिहास- ब्राह्मण साहित्य-ब्राह्मण ग्रन्थों का महत्त्व, ब्राह्मण काल का धर्म, और समाज, चार वर्ण, विविध ब्राह्मण		
	पाठ - ६	वैदिक साहित्य का इतिहास-आरण्यक, इसका सामान्य परिचय, ऐतरेयारण्यक, शाङ्खायनारण्यक, बृहदारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक। उपनिषदों का सामान्य परिचय		
	पाठ - ७	वेदाङ्ग साहित्य		
२	अध्याय - २	**वैदिक स्वर प्रक्रिया**	९०	३६
	पाठ - ८	वैदिक स्वर प्रक्रिया- साधारण स्वर प्रकरण -१ (सिद्धान्त कौमुदी से कुछ सूत्र)		
	पाठ - ९	वैदिक स्वर प्रक्रिया- साधारण स्वर प्रकरण -२ (सिद्धान्त कौमुदी से कुछ सूत्र)		
		वैदिक स्वर शेष		
	पाठ - १०	वैदिक स्वर शेष- धातु स्वर, और प्रातिपदिक स्वर		
	पाठ - ११	वैदिक स्वर शेष- फिट्-स्वर		
	पाठ - १२	वैदिक स्वर शेष- प्रत्यय स्वर		
	पाठ - १३	वैदिक स्वर शेष- समास स्वर		
	पाठ - १४	वैदिक स्वर शेष- तिङन्त स्वर		

३	अध्याय - ३	वैदिक सूक्त अध्ययन	१००	४०
	पाठ - १५	वैदिक सूक्त का अध्ययन- अग्निसूक्त (ऋ.वे.१.१)		
	पाठ - १६	वैदिक सूक्त का अध्ययन- इन्द्रसूक्त(ऋ.वे.२.६)		
	पाठ - १७	वैदिक सूक्त का अध्ययन- हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋ.वे.१०.१२१)		
	पाठ - १८	वैदिक सूक्त का अध्ययन- पुरुषसूक्त (ऋ.वे.१०.९०)		
	पाठ - १९	वैदिक सूक्त का अध्ययन- देवीसूक्त (ऋ.वे.१०.१२५), श्रद्धासूक्त (ऋ.वे. १०.१५१)		
	पाठ - २०	वैदिक सूक्त का अध्ययन- विष्णुसूक्त (ऋ.वे.१.१५४), मित्रावरुण सूक्त (ऋ.वे. ५.६२)		
	पाठ - २१	वैदिक सूक्त का अध्ययन- अक्षसूक्त (ऋ.वे.१०.३४)		
	पाठ - २२	वैदिक सूक्त का अध्ययन- पर्जन्य सूक्त (ऋ.वे.५.८३), मनुमत्स्य कथा (शु.यजु. मा.श.ब्रा.१.८.१)		
	पाठ - २३	वैदिक सूक्त का अध्ययन- शिवसङ्कल्प सूक्त (यजु.वे. अध्याय ३४, मन्त्र १-६), प्रजापति (शु.यजु.वे. अध्याय ३२, मन्त्र १-५)		
	पाठ - २४	वैदिक सूक्त का अध्ययन- रुद्राध्याय (शु.यजु.वे १५.१६)		
	पाठ - २५	वैदिक सूक्त का अध्ययन- पृथ्वी सूक्त (अ.वे.१२.१)		
	पाठ - २६	वैदिक सूक्त का अध्ययन- सरमा पणि संवाद सूक्त (ऋ.वे.९.८०)		

प्रश्नपत्र का प्रारूप
(Question Paper Format)

विषय - वेदाध्ययन (३४५) (Vedadhyayan) | **स्तर - उच्चतर माध्यमिक कक्षा**

परीक्षा काल अवधि (Time) - तीन घंटे (3 hrs) | **पूर्णांक (Full Marks) - १००**

लक्ष्य के अनुसार अंक विभाजन

विषय	अंक	प्रतिशतयोग
ज्ञान (Knowledge)	२५	२५%
अवबोध (Understanding)	४५	४५%
अनुप्रयोग कौशल (Application Skill)	३०	३०%
महायोग	**१००**	

प्रश्न प्रकार से अंकों का विभाजन

प्रश्न प्रकार	प्रश्न संख्या	अंक	योग
दीर्घ उत्तर प्रश्न (LA)	५	६	३०
लघुत्तर प्रश्न (SA)	१०	४	४०
सुलघुत्तर प्रश्न (VSA)	१०	२	२०
बहुविकल्पी प्रश्न (MCQ)	१०	१	१०
महायोग	**३५**		**१००**

पाठ्य विषय विभाग के अनुसार भारांश

विषय घटक	अंक	स्वाध्याय के घंटे
वैदिक साहित्य का इतिहास	२४	५०
वैदिक स्वर प्रक्रिया	३६	९०
वैदिक सूक्त का अध्ययन	४०	१००
महायोग	**१००**	**२४०**

प्रश्नपत्र का काठिन्य स्तर

प्रश्न स्तर	अंक
कठिन (Difficult)	२५
मध्यम (Medium)	५०
सरल (Easy)	२५

आदर्श प्रश्नपत्र
(Sample Question Paper)

इस प्रश्न में ..... प्रश्न है। ..... और मुद्रित है।

Roll No. अनुक्रमाङ्क	४	५	०	१	५	९	१	८	३	०	०	१

Code No- गढ संख्या	55/SS/A/S
SET स्तबक:	A

वेदाध्ययन
Vedadhyayan
(३४५)

Day and Date of Examination ..... परीक्षा दिन और दिनाङ्क

Signature of two Invigilators निरीक्षक में हस्ताक्षर

१. .....

२. .....

सामान्य निर्देश

1. अनुक्रमाङ्क प्रश्नपत्र के प्रथम पृष्ठ पर अवश्य लिखे।
2. निरक्षण करें की प्रश्न पत्र की क्रम संख्या प्रश्नो की संख्या प्रथमपुट के प्रारम्भ में दी हुई संख्या के समान है या नहीं। प्रश्नक्रम सही है अथवा नहीं।
3. वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के (क), (ख), (ग), (घ) इन विकल्पों में से युक्त उत्तर को चुनकर उत्तरपत्र पर लिखे।
4. सभी प्रश्नों के उत्तर निर्धारित समय में ही लिखें।
5. उत्तर पत्र में आत्म परिचयात्मक लेखन अथवा निर्दिष्ट स्थान को छोडकर अन्य कहीं पर भी अनुक्रमाङ्क लिखना मना है।
6. अपने उत्तर पत्र में प्रश्न पत्र की गूढसंख्या अवश्य लिखें।

वेदाध्ययन (Vedadhyayan)
(३४५)

परीक्षा समय अवधि (Time) समय तीन घंटे (3 Hrs) **पूर्णांक (Full Marks) - १००**

निर्देश-

1. इस प्रश्नपत्र में [A] भाग १०, [B] भाग १०, [C] भाग १०, [D] ५ इस प्रकार ३५ प्रश्न हैं।
2. प्रश्न के दक्षिण में ही समीप संख्याओं में (अङ्क०प्रश्न=पूर्णांक) इस प्रकार अङ्कों का निर्देश किया है।
3. सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

[A]

नीचे दिये गए प्रश्नों के उचित विकल्प चुनें। **१×१०=१०**

1. वेद का मुख क्या है?

   (क) व्याकरण (ख) निरुक्त (ग) शिक्षा (घ) कल्प।

2. ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयों ज्ञेयश्च यह किसने कहा?

   (क) यास्क (ख) पतञ्जलि (ग) पाणिनि (घ) आपस्तम्ब।

3. वेद त्रयी में किस वेद की गणना नहीं होती है?

   (क) ऋग्वेद का (ख) अथर्ववेद का (ग) सामवेद का (घ) यजुर्वेद का।

4. यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था सा ऋक् ऐसा कहते हैं?

   (क) नैयायिक (ख) वैयाकरण (ग) मीमासंक (घ) वैशेषिक।

5. समास का अन्त क्या होता है?

   (क) उदात्त (ख) अनुदात्त (ग) स्वरित (घ) कोई भी नहीं

6. फिट् यह किसकी संज्ञा है?

   (क) प्रत्यय की (ख) धातु की (ग) प्रातिपदिक की (घ) तद्धित की

7. रुद्र किसका अन्य नाम है?

   (क) विष्णु का (ख) शिव का (ग) इन्द का (घ) वरुण का

8. पृथ्वी सूक्त किस वेद में है?

(क) ऋग्वेद में (ख) सामवेद में (ग) यजुर्वेद में (घ) अर्थववेद में

9. पृथ्वी सूक्त का ऋषि कौन है।

(क) अत्रि (ख) मधुच्छदा (ग) विश्वमित्र (घ) अर्थवा

10. अग्निः पूर्वेभिः ... यह मन्त्र किस सूक्त में है।

(क) अग्निसूक्त में (ख) इन्द्रसूक्त में (ग) यमसूक्त में (घ) अक्षसूक्त में

[B]

नीचे दिये गए प्रश्नों के यथा निर्देश उत्तर लिखें। **२×१०=२०**

1. आजकल सामवेद की कितनी शाखा प्राप्त होती है और वे कौन सी है? १+१=२
2. शाङ्ख्यायन आरण्यक किस वेद के अंतर्गत आता है? बृहदारण्यक किस वेद के साथ सम्बद्ध है? १+१=२
3. मुख्य उपनिषद कितने है? और वे कौन से है? १+१=२
4. हि च इत्यत्र हि यह क्या है? हिशब्दयुक्त तिङन्तकैसे नहीं होता है? १+१=२
5. लोपे विभाषा इस सूत्र का अर्थ लिखो। पचति आहोस्वित् पठति यह किस सूत्र का उदाहरण? १+१=२
6. समास का अन्त क्या होता है? तुल्यशब्द आद्युदात्त है अथवा अन्तोदात्त है? १+१=२
7. विष्णु सूक्त के देवता कौन है? इस सूक्त के ऋषि कौन है? १+१=२
8. पर्जन्यसूक्त के देवता कौन है? इस सूक्त के ऋषि कौन है? १+१=२
9. मनुमत्स्य कथा किस वेद में है? मनु के ऊपर कहाँ पर मछली गिरी? १+१=२
10. शिवसंकल्प सूक्त किस वेद में है? इस सूक्त में कितने मन्त्र है? १+१=२

[C]

नीचे दिये गए प्रश्नों के विस्तार से उत्तर के द्वारा समाधान करें। **४×१०=४०**

1. टीका लिखो। छान्दोग्य उपनिषद् अथवा तैत्तिरीयारण्यक की?
2. शुक्लयजुर्वेद की शाखा का विवरण दो।
3. फिषोऽन्तः उदात्तः अथवा छन्दसि च इस सूत्र की व्याख्या करो।
4. घृतादीनां च अथवा ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविषयस्य इस सूत्र की व्याख्या करो।
5. आद्युदात्तश्च अथवा अनुदात्तौ सुप्तिपौ इस सूत्र की व्याख्या करो।

6. वा भुवनम् अथवा पूर्वे भूतपूर्वे इस सूत्र की व्याख्या करो।

7. इन्द्रसूक्त का सारांश संक्षेपे से लिखो। अथवा इन्द्रस्वरूप को प्रकट करो।

8. हिरण्यगर्भ का स्वरूपसंक्षेप से लिखो।

9 पुरुष एवेदं सर्वम् .. इस मन्त्र को पूर्ण करके अन्वय सरलार्थ लिखो। १+१+२=४

10. श्रद्धयाग्निः समिध्यते.. इस मन्त्र को पूर्ण करके अन्वय सरलार्थ को लिखो। १+१+२=४

[D]

अधोप्रदत्त पाँचों प्रश्नों के विस्तारपूर्वक उत्तर के द्वारा समाधान करें। **६×५=३०**

1. वेदाङ्गरूप से शिक्षा की भूमिका का विवरण करो।

2. ञ्नित्यादिर्नित्यम् अथवा वृषादीनां च इस सूत्र की व्याख्या करो।

3. संज्ञायामुपमानम् अथवा युस्मदस्मदोर्ङसि इस सूत्र की व्याख्या करो।

4. अग्नि का स्वरूप लिखो।

5. पुरुषसूक्त का सारांश संक्षेप से लिखो। अथवा पुरुषस्वरूप का वर्णन करो।

आदर्श प्रश्नपत्र की उत्तरमाला

[A]

दसों का युक्त विकल्प। **१×१०=१०**

१. (क)	२. (ख)	३. (ख)	४. (ग)	५. (क)
६. (ग)	७. (ख)	८. (घ)	९. (घ)	१०. (क)

[B]

दसों का यथा निर्देश उत्तर। **२×१०=२०**

1. आजकल सामवेद की तीन शाखा उपलब्ध होती है - कौथुमीय, राणायनीय, और जैमिनीय। १+१=२
2. शाङ्ख्यायनारण्यक ऋग्वेदके अन्तर्गत है। बृहदारण्यक यजुर्वेद के साथ सम्बद्ध है। १+१=२
3. मुख्य उपनिषद ग्यारह हैं और वे ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-ऐतरेय-तैत्तिरीय-छान्दोग्य-बृहदारण्यक-'वेताश्वतर उपनिषद'। १+१=२
4. हि च यहाँ पर हि यह अव्ययपद है। हि च इस सूत्र से हिशब्द युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है। १+१=२
5. किम का लोप होने पर क्रियाप्रश्न में अनुपसर्ग अप्रतिषिद्ध तिङन्त को विकल्प से अनुदात्तनहीं होता है यह इस सूत्र का अर्थ है।लोपे विभाषा इस सूत्र का यह उदाहरण है। १+१=२
6. समास का अन्त उदात्त होता है। तुल्यशब्द आद्युदात्त होता है। १+१=२
7. विष्णुसूक्त का देवता विष्णु। इस सूक्त का देवता दीर्घतमा औचथ्य है। १+१=२
8. पर्जन्य सूक्त का देवता पर्जन्य।इस सूक्त के ऋषि अत्रि हैं। १+१=२
9. मनुमत्स्य कथा शुक्लयजुर्वेद में है। मनु के हाथ पर मछली गिरी। १+१=२
10. शिवसंकल्प सूक्त शुक्लयजुर्वेद में है। इस सूक्त में छः मन्त्र हैं। १+१=२

[C]

दस का कुछ विस्तार के साथ उत्तर के द्वारा समाधान। **४×१०=४०**

1. बिन्दु- ६.१० / ६.७ देखना चाहिए
2. बिन्दु- ३.६ देखना चाहिए
3. बिन्दु- ११.१ / ११.२ देखना चाहिए
4. बिन्दु- ११.३ / ११.६ देखना चाहिए

5. बिन्दु- १२.१ / १२.२ देखना चाहिए

6. बिन्दु- १३.३ / १३.४ देखना चाहिए

7. इन्द्रसूक्त में

8. हिरण्यगर्भ सूक्त में

9. पुरुषसूक्त का द्वितीय मन्त्र में

10. श्रद्धासूक्त का प्रथम मन्त्र में

[D]

पांच का बहुत ही विस्तार के साथ समाधान। **६×५=३०**

1. बिन्दु- ७.४ देखना चाहिए

2. बिन्दु- १०.९ / १०.१२ देखना चाहिए

3. बिन्दु- १०.१३ / १०.१५ देखना चाहिए

4. अग्निसूक्त में

5. पुरुषसूक्त में